श्री महावीर ग्रंथमाला—१४ वां पुष्प

राजस्थान के जैन संत

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

★

लेखक

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

एम. ए. पी–एच. डी. शास्त्री

★

भूमिका

डॉ० सत्येन्द्र, एम. ए. डी. लिट्

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक

गेंदीलाल साह एडवोकेट

मंत्री

श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी

जयपुर

१. प्राप्ति-स्थान—

साहित्य शोध विभाग

श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी

महावीर भवन,

सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर ३

२. मैनेजर श्रीमहावीर जी

श्रीमहावीर जी (राजस्थान)

संस्करण प्रथम

१०००

अक्टूबर १९६७ वि० नि० सं० २४९३ मूल्य १०.००

मुद्रक

★ महेन्द्र प्रिन्टर्स ★

घी वालों का रास्ता, दाई की गली

जयपुर -३ (राज०)

पूज्य मुनि श्री १०८ विद्यानन्दजी महाराज का

पावन सम्मति-प्रसाद

—:★:—

जैन वाङ्मय भारतीय साहित्यवापीका पद्मपुष्प है। मोक्षधर्म का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करने से उसे 'पुष्कर पलाशनिर्लेप' कहना वस्तु-सत्य है। भारत के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में अकेला जैन साहित्य जितनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है उतनी मात्रा में इतर नहीं। लेखनकला की विशिष्ट विधाओं का समायोजन देखकर उन लिपिकारों, चित्रकारों तथा मूल-प्रणेता मनीषियों के प्रति हृदय एक अकृतक आह्लादका अनुभव करता है। लिपिरक्षित होने से ही आज हम उसका रसास्वादन करते हैं, प्रकाशित कर बहुजनहिताय बहुजनसुखाय उपयोगबद्ध कर पा रहे हैं, उनकी पवित्र तपश्चर्या स्वाध्याय मार्ग के लिए प्रशस्त एवं स्वस्तिकारिणी है।

प्रस्तुत संग्रह राजस्थान के जैन सन्तों के कृतित्व तथा व्यक्तित्व बोधको उद्घाटित करता है। जैन भारती के जाने-माने तथा अज्ञात, अल्पज्ञात सुधीजनों का परिचय पाठ इसे कहा जाना चाहिए। हिन्दी में साहित्य धारा के इतिहास अभी अल्प हैं और जैनवाङ्मयबोधक तो अल्पतर ही हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी इस आर्हत्-साहित्य के गवेषणात्मक प्रयास में प्रायः शिथिलता अथ च उपेक्षा दिखायी है। मेरे विचार से यह अनुपेक्षणीय की उपेक्षा और गणनीय की अवगणना है। साहित्यकार की कलम जब उठती है तो कृष्णमषी से कांचन कमल खिल उठते हैं। वे कमल मनुष्य मात्र के ऊषरमरु-समान मनः प्रदेशों में पद्मरेणुकिंजल्कित कासारों की अमन्द हिल्लोल उत्पन्न करते हैं। शुद्ध साहित्य का यही लक्षण है। वह पात्रों के आलम्बन में निबद्ध रहकर भी सर्वजनीन हितेप्सुता का ही प्रतिपादन करता है। इसी हितेप्सुता का अमृतपाथेय साहित्य को चिरजीवी बनाता है। आने वाली परम्पराएं धर्म, संस्कृति, गौरवपूर्ण ऐतिह्य के रूप में उसको संरक्षण प्रदान करती हैं; उसे साथ लेकर आगे बढ़ती हैं। साहित्य का यह आप्यायन गुण और अधिक बढ जाता है यदि उसका निर्माता सम्यक् मनीषी होने के साथ सम्यक् चारित्रधुरीण भी हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत सन्त साहित्य अपने कृति और कृतिकार रूप उभय पक्षों में समादरास्पद है।

राजस्थान के इन कृतिकारों ने गेयछन्दों की अनेकरूपता को प्रश्रय देकर भावाभिव्यक्ति के माध्यम को स्फीत-प्राञ्जल किया है। रास, गीत, सवैया, ढाल, बारहमासा, राग-रागिनी एवं नानाविध दोहा, चौपाई, छन्दों के भाव-कुशल प्रमाण संग्रह में यत्र तत्र विकीर्ण देखे जा सकते हैं जो न केवल पद्यवीथि के निपुणता व्यापक हैं अपितु लोकजीवन के साथ मैत्री के चिन्हों को भी स्पष्ट करते चलते हैं। किसी समय उनकी कृतियां लोकमुख-भारती के रूप में अवश्य समादृत रही होंगी क्योंकि इन रचनाओं के मूल में धर्म प्रभावना की पदचाप सहधर्मिणी है। आराध्य चरित्रों के वर्णन तथा कृतित्व के भूयिष्ठ आयतन से यह अनुमान लगाना सहज है कि ये कृतिकार बहु-मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी भी थे।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल गत अनेक वर्षों से एतादृश शोधसाहित्य कार्य में संलग्न हैं। पुरातन में प्रच्छन्न उपादेयताओं के जीर्णोद्धार का यह कार्य रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं सामयिक है। इसमें व्यापक रूप से मनीषियों के समाहित प्रयत्न अपेक्षणीय हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन 'अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी' की ओर से किया जा रहा है। इसमें योगदान करते हुए सत्साहित्य की ओर प्रवृत्ति-शील क्षेत्र का 'साहित्य शोध विभाग' आशीर्वादार्ह है।

मेरठ
२/१०/'६७

प्रकाशकीय

"राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पुस्तक को पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक में राजस्थान में होने वाले जैन सन्तों का [संवत् १४५० से १७५० तक] विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो राजस्थान सैकड़ों जैन सन्तों की पावन भूमि रहा है लेकिन १५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक यहां भट्टारकों का अत्यधिक जोर रहा और समाज के प्रत्येक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कार्यों में उनका निर्देशन प्राप्त होता रहा। इन सन्तों ने साहित्य निर्माण एवं उसकी सुरक्षा में जो महत्वपूर्ण योग दिया था उसका अभी तक कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता था इसलिये इन सन्तों के जीवन एवं साहित्य निर्माण पर किसी एक पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के द्वारा लिखित इस पुस्तक से यह कमी दूर हो सकेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग का १४ वां प्रकाशन है। गत दो वर्षों में क्षेत्र की ओर से प्रस्तुत पुस्तक सहित निम्न पांच पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है।

(१) हिन्दी पद संग्रह, (२) चम्पाशतक, (३) जिणदत्त चरित, (४) राजस्थान के जैन ग्रन्थ भंडार(अंग्रेजी में) और (५) राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व। इन पुस्तकों के प्रकाशन का देश के प्रमुख पत्रों एवं साहित्यकारों ने स्वागत किया है। इनके प्रकाशन से जैन साहित्य पर रिसर्च करने वाले विद्यार्थियों को विशेष लाभ होगा तथा जन साधारण को जैन साहित्य की विशालता, प्राचीनता एवं उपयोगिता का पता भी लग सकेगा।

राजस्थान के जैन शस्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियों का जो कार्य क्षत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रारम्भ किया गया था उसका भी काफी तेजी से कार्य चल रहा है। ग्रंथ सूची के चार भाग पहिले ही प्रकाशित हो चुके हैं और पांचवां भाग जिसमें २० हजार हस्तलिखित ग्रंथों का सामान्य परिचय रहेगा शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है। इसके अतिरिक्त और भी साहित्यिक कार्य चल रहे हैं जो जैन साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

इस पुस्तक पर पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दजी महाराज ने अपने आशीर्वादात्मक सम्मति लिखने की जो महती कृपा की है इसके लिये क्षेत्र कमेटी महाराज की पूर्ण आभारी है।

पुस्तक की भूमिका डॉ० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ने लिखने की कृपा की है जिसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं। आशा है डॉ० साहब का भविष्य में इसी तरह का योग प्राप्त होता रहेगा।

गेंदीलाल साह एडवोकेट
मंत्री

भूमिका

डा० कासलीवाल की यह एक और नयी देन हमारे समक्ष है। डा० कासलीवाल का प्रयत्न यही रहा है कि अज्ञात कोनों में से प्राचीन से प्राचीन सामग्री एवं परम्पराओं का अन्वेषण कर प्रकाश में लायें। यह ग्रन्थ भी इनकी इसी प्रवृत्ति का सुफल है।

संतों की एक दीर्घ परम्परा हमें मिलती है। इस परम्परा की विकास शृङ्खला को बताते हुए डा० राम खेलावन पांडे ने यह लिखा है—

"संत-साधनधारा सिद्धों-नाथों-निरंजन-पंथियों से प्राण पाती हुई, नामदेव, त्रिलोचन, पीपा और धन्ना से प्रेरणा लेती हुई कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दर, पलटू आदि अनेक संतों में प्रकट हुई।"[1]

इस परम्परा में पारिभाषिक 'संत' सम्प्रदाय का उल्लेख है। इसमें हमें किसी जैन संत का उल्लेख नहीं मिलता।

पर डा० पांडे ने आगे जहां यह बताया है कि—

"कबीर मंशूर में आद्याशक्ति और निरंजन पर जीत की कथा विस्तार पूर्वक दी हुई है, अतः सिद्ध होता है कि कुछ शाक्त और निरंजन पंथी कबीर-पंथ में दीक्षित हुए।.... ....

निरंजन पंथ का इतिहास यह संकेत देता है कि इसके विभिन्न दल क्रमशः गोरख-पंथ, कबीर-पंथ, दादू-पंथ में अन्तर्भूत होते रहे और सम्प्रदाय में इसकी शाखाएं भिन्न बनी रहीं। कबीर मंशूर में मूल निरंजन पंथ को कबीर पंथ की बारह शाखाओं में गिना गया है[2] यही पाद टिप्पणी सं० ३ में पांडे ने एक सार गर्भित संकेत किया है :—

"निरंजन का तिब्बती रूप (905 Pamed) नानक-निर्ग्रन्थ है। इसके आधार पर निरंजन-पंथ का सम्बन्ध जैन मतवाद से जोड़ा जा सकता है, काल

---

१. मध्यकालीन संत साहित्य—पृष्ठ–१७

२. वही पृ० ५७

कृत कारणों से जिसमें कई परिवर्तन हो गये।"—इस संकेत से अनुसंधान की एक उपेक्षित दिशा का पता चलता है। यह बात तो प्रायः आज मानली गयी है कि जैन धर्म की परम्परा बौद्ध धर्म से प्राचीन है पर जहां बौद्ध धर्म की पृष्ठ भूमि का भारतीय साहित्य की दृष्टि से गंभीर अध्ययन किया गया है वहां जैन धर्म की पृष्ठ भूमि पर उतना गहरा ध्यान नहीं दिया गया। यह संभव है कि 'निरंजन' में कोई जैन प्रभाव सन्निहित हो, और वह उसके तथा अन्य माध्यमों से 'संतमत' में भी उतरा हो।

पर यथार्थ यह है कि जैन धर्म के योगदान को अध्ययन करने के साधन भी अभी कुछ समय पूर्व तक कम ही उपलब्ध थे। आज जो साहित्य प्रकाश में आ रहा है, वह कुछ दिन पूर्व कहां उपलब्ध था। जैन भाण्डागारों में जो अमूल्य ग्रन्थ सम्पत्ति भरी पड़ी है उसका किसे ज्ञान था। जैसलमेर के ग्रंथागार का पता तो बहुत था पर कर्नल केमुल टाड को भी बड़ी कठिनाई से वह देखने को मिला था। नागौर का दूसरा प्रसिद्ध जैन ग्रंथागार तो बहुत प्रयत्नों के उपरान्त भी टाड के उपयोग के लिए नहीं खोला जा सका था। पर आज कितने ही जैन भाण्डागारों की मुद्रित सूचियां उपलब्ध हैं। कई संस्थाएं जैन साहित्य के प्रकाशन में लगी हुई हैं। डा० कासलीवाल ने भी ऐसे ही कुछ अलभ्य और ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का शुभ प्रयत्न किया है। जैन भण्डारों की सूचियां, 'प्रद्युम्न चरित,' 'जिणदत्त चरित' आदि को प्रकाश में लाकर उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास की अज्ञात कड़ियों को जोड़ने का प्रयास किया है। जैन संतों का यह परिचयात्मक ग्रंथ भी कुछ ऐसे ही महत्त्व का है।

डा० कासलीवाल ने बताया है कि 'संत' शब्द के कई अर्थ होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'संत' शब्द एक ओर तो एक विशिष्ट संप्रदाय के लिया आता है, जिसके प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं। दूसरी ओर 'संत' शब्द मात्र गुणवाचक, और एक ऐसे व्यक्ति के लिए उपयोग में आ सकता है जो सज्जन और साधु हो। तीसरे अर्थ में 'संत' विशिष्ट धार्मिक अर्थ में प्रत्येक सम्प्रदाय में ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए आ सकता है, जो सांसारिकता और इंद्रिय विषयों के राग से ऊपर उठ गये हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय एवं धर्म में ऐसे संत मिल सकते हैं। ये संत सदा जनता के श्रद्धा भाजन रहे हैं अतः ये दिव्य लोकवार्ताओं के पात्र भी बन गये हैं। अंग्रेजी शब्द Saint-सेन्ट संत का पर्यायवाची माना जा सकता है।

डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ में संवत् १४५० से १७५० तक के राजस्थान के जैन संतों पर प्रकाश डाला है। इस अभिप्राय से उन्होंने यह निरूपण किया है कि—"इन ३०० वर्षों में भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं सार्वसाधु के रूप में

जनता द्वारा पूजित थे...... ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः अनुकूल रखते थे। ये अपने संघ के प्रमुख होते थे.......संघ में मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिकाएं भी रहा करती थी।........इन ३०० वर्षों में इन भट्टारकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा.......इसलिए ये भट्टारक एवं उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी संत थे।"

इसी व्याख्या को ध्यान में रखकर हमें जैन संतों की परम्परा का अवगाहन करना अपेक्षित है। इन तीन सौ वर्षों में जैन संतों की भी एक दीर्घ परम्परा के दर्शन हमें यहां होते हैं। जैन धर्म में एक स्थिर श्रेणी-व्यवस्था में इन संतों का अपना एक स्थान विशेष है और वहां इनका श्रेणी नाम भी कुछ और है—इस ग्रन्थ के द्वारा डा० कासलीवाल ने एक बड़ा उपकार यह किया है कि उन विशिष्ट वर्गों को हिन्दी की दृष्टि से एक विशेष वर्ग में लाकर नये रूप में खड़ा कर दिया है—अब संतों का अध्ययन करते समय हमें जैन संतों पर भी दृष्टि डालनी होगी।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि जैनदर्शन की शब्दावली अपना विशिष्ट रूप रखती है, फिर भी संत शब्द के सामान्य अर्थ के द्योतक लक्षण और गुण सभी सम्प्रदायों और देशों में समान हैं, जैन संतों के काव्य में जो अभिव्यक्ति हुई है, उससे इसकी पुष्टी ही होती है। अध्ययन और अनुसंधान का पक्ष यह है कि 'संतत्व' का सामान्य रूप जैन संतों में क्या है ? और वह विशिष्ट पक्ष क्या है जिससे अभिमंडित होने से वह 'संतत्व' जैन हो जाता है।

स्पष्ट है कि जैन संतों का कोई विशेष सम्प्रदाय उस रूप में एक पृथक पंथ नहीं है जिस प्रकार हिन्दी में कबीर से प्रवर्तित संत पंथ या संत सम्प्रदाय एक प्रथक अस्तित्व रखता है और फिर जितने संत सम्प्रदाय खड़े हुए उन्होंने सभी ने 'कबीर' की परम्परा में ही एक वैशिष्ट्य पैदा किया। फलतः जैन संतों का कृतित्व एक विशिष्ट स्वतंत्र तात्विक भूमि देगा। यों जैन धर्म में भी कुछ अलग अलग पंथ हैं, छोटे भी बड़े भी, उनके संत भी हैं। उनके धर्मानुकूल इन संतों की रचनाओं में भी आंतरिक वैशिष्ट्य मिलेगा। डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ में केवल राजस्थान के ही जैन संतों का परिचय दिया है—यह अन्य क्षेत्रों के लिए भी प्रेरणा प्रद होगा। फलतः डा० कासलीवाल का यह ग्रन्थ हिन्दी में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मैं डा० कासलीवाल के इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करता हूं।

जयपुर २८-९-६७ डा० सत्येन्द्र

प्रस्तावना

-●-

भारतीय इतिहास में राजस्थान का महत्वपूर्ण स्थान है। एक और यहां की भूमि का कण कण वीरता एवं शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहा तो दूसरी ओर भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के गौरवस्थल भी यहां पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। यदि राजस्थान के वीर योद्धाओं ने जननी जन्म-भूमि की रक्षार्थ हंसते हंसते प्राणों को न्यौछावर किया तो यहां होने वाले आचार्यों, भट्टारकों, मुनियों एवं साधुओं तथा विद्वानों ने साहित्य की महत्ती सेवा की और अपनी कृतियों एवं काव्यों द्वारा जनता में देशभक्ति, नैतिकता एवं सांस्कृतिक जागरूकता का प्रचार किया। यहां के रणथम्भोर, कुम्भलगढ़, चित्तौड़, भरतपुर, मांडोर जैसे दुर्ग यदि वीरता देशभक्ति, एवं त्याग के प्रतीक हैं तो जैसलमेर, नागौर, बीकानेर, अजमेर, आमेर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, जयपुर आदि कितने ही नगर राजस्थानी ग्रंथकारों, सन्तों एवं साहित्योपासकों के पवित्र स्थल हैं जिन्होंने अनेक संकटों एवं झंझावातों के मध्य भी साहित्य की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखा। वास्तव में राजस्थान की भूमि पावन है तथा उसका प्रत्येक कण वन्दनीय है।

राजस्थान की इस पावन भूमि पर अनेकों सन्त हुए जिन्होंने अपनी कृतियों के द्वारा भारतीय साहित्य की अजस्र धारा वहायी तथा अपने आध्यात्मिक प्रवचनों, गीतिकाव्यों एवं मुक्तक छन्दों द्वारा देश में जन जीवन के नैतिक धरातल को कभी गिरने नहीं दिया। राजस्थान में ये सन्त विविध रूप में हमारे सामने आये और विभिन्न धर्मों की मान्यता के अनुसार उनका स्वरूप भी एकसा नहीं रह सका।

'सन्त' शब्द के अब तक विभिन्न अर्थ लिये जाते रहे हैं वैसे सन्त शब्द का व्यवहार जितना गत २५, ३० वर्षों में हुआ है उतना पहिले कभी नहीं हुआ। पहिले जिस साहित्य को भक्ति साहित्य एवं अध्यात्म साहित्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था उसे अब सन्त साहित्य मान लिया गया है। कबीर, मीरां, सूरदास तुलसीदास, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि सभी भक्त कवियों का साहित्य सन्त के साहित्य की परिभाषा में माना जाता है। स्वयं कबीरदास ने सन्त शब्द की जो व्याख्या की है वह निम्न प्रकार है।

> निरवैरी निहकामता सोई सेती नेह।
> विषियां सूं न्यारा रहे, संतनि को अङ्ग एह॥

अर्थात् प्राणि मात्र जिसका मित्र है, जो निष्काम है, विषयों से दूर रहते हैं वे ही सन्त हैं।

तुलसीदास जी ने सन्त शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं करते हुए निम्न शब्दों में सन्त और असन्त का भेद स्पष्ट किया है।

वन्दों सन्त असज्जन चरणा, दुख प्रद उभय बीच कछु वरणा।

हिन्दी के एक कवि विट्ठलदास ने सन्तों के बारे में निम्न शब्द प्रयुक्त किये है।

सन्तनि को सिकरी किन काम।
आवत जात पहनियां टूटी विसरि गयो हरि नाम ।।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तर भारत की सन्त परम्परा" में सन्त शब्द की विवेचना करते हुये लिखा है—"इस प्रकार सन्त शब्द का मौलिक अर्थ" शुद्ध अस्तित्व मात्र का ही बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण उस नित्य वस्तु का परमतत्व के लिये अपेक्षित होगा जिसका नाश कभी नहीं होता, जो सदा एक रस तथा अविकृत रूप में विद्यमान रहा करता है और जिसे सन्त के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। इस शब्द के "सत" रूप का ब्रह्म वा परमात्मा के लिये किया गया प्रयोग बहुधा वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है"।[1]

जैन साहित्य में सन्त शब्द का बहुत कम उल्लेख हुआ है। साधु एवं श्रमण आचार्य, मुनि, भट्टारक, यति आदि के प्रयोग की ही प्रधानता रही है। स्वयं भगवान महावीर को महाश्रमण कहा गया है। साधुओं की यहां पांच श्रेणियां है जिन्हें पंच परमेष्ठि कहा जाता है ये परमेष्ठी अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व-साधु हैं इनमें अर्हन्त एवं सिद्ध सर्वोच्च परमेष्ठी हैं।

अर्हन्त सकल परमात्मा को कहते हैं। अर्हत्पद प्राप्त करने के लिये तीर्थंकरत्व नाम कर्म का उदय होना अनिवार्य है। वे दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय इन चार कर्मों का नाश कर चुके होते हैं तथा शेष चार कर्म वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र के नाश होने तक संसार में जीवित रहते हैं। उनके समवशरण की रचना होती है और वहीं उनकी दिव्य ध्वनि [प्रवचन] खिरती है।

सिद्ध मुक्तात्मा को कहते हैं। वे पूरे आठ कर्मों का क्षय कर चुके होते हैं। मोक्ष में विराजमान जीव सिद्ध कहलाते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने सिद्ध परमेष्ठी का निम्न स्वरूप लिखा है।

---

१. देखिये 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' पृष्ठ संख्या ४

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं ॥

सिद्ध निराकार होते हैं। उनके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण, शरीर के इन पांच भेदों में से उनके कोई सा भी शरीर नहीं होता। योगीन्द्र ने इन्हें निष्कल कहा है। अर्हन्त एवं सिद्ध दोनों ही सर्वोच्च परमेष्ठी हैं इन्हें महा सन्त भी कहा जा सकता है।

आचार्य उपाध्याय एवं सर्वसाधु शेष परमेष्ठी है। सर्वसाधु वे हैं जो आचार्य समन्तभद्र की निम्न व्याख्या के अन्तर्गत आते हैं।

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ॥

जो चिरकाल में जिन दीक्षा में प्रवृत्त हो चुके हैं तथा २८ मूल गुणों[1] का पालन करने वाले हैं।

वे साधु उपाध्याय[2] कहलाते हैं जिनके पास मोक्षार्थी जाकर शास्त्राध्ययन करते हों तथा जो संघ में शिक्षक का कार्य करते हों। लेकिन वही साधु उपाध्याय बन सकता है जिसने साधु के चरित्र को पूर्ण रूप से पालन किया हो।

तिलोपण्णत्ति में उपाध्याय का निम्न लक्षण लिखा है।

अण्णाण घोरतिमिरे दुरंततीरह्मि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा उवज्झया वरमदिं देंतु ।

---

१. हिंसा अनृत तस्करी अब्रह्म परिग्रह पाप ।
मन वच तन तैं त्यागवो, पंच महाव्रत थाप ॥
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान ।
प्रतिष्ठापनायुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध ।
षट आवशि मंजन तजन, शयन भूमि को शोध ॥
वस्त्र त्याग कचलोंच अरु, लघु भोजन इक वार ।
दांतन मुख में ना करें, ठाडे लेंहि आहार ॥

२. चौदह पूरब को धरे, ग्यारह अङ्ग सुजान ।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ै पढ़ावैं ज्ञान ॥

इसी तरह आचार्य नेमिचन्द्र ने द्रव्य संग्रह में उपाध्याय में पाये जाने वाले निम्न गुणों को गिनाया है।

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवणसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥

आचार्य वे साधु कहलाते हैं जो संघ के प्रमुख हैं। जो स्वयं व्रतों का आचरण करते है और दूसरों से करवाते है वे ही आचार्य कहलाते है। वे ३६ मूलगुणों[3] के धारी होते हैं। समन्तभद्र, भट्टाकंलक, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि सभी आचार्य थे।

इस प्रकार आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु ये तीनों ही मानव को सुमार्ग पर ले जाने वाले हैं। अपने प्रवचनों से उसमें वे जागृति पैदा करते है जिससे वह अपने जीवन का अच्छी तरह विकास कर सके। वे साहित्य निर्माण करते हैं और जनता से उसके अनुसार चलने का आग्रह करते हैं। सम्पूर्ण जैन वाङ्मय आचार्यों द्वारा निर्मित है।

प्रस्तुत पुस्तक में संवत् १४५० से १७५० तक होने वाले राजस्थान के जैन सन्तों का जीवन एवं उनके साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इन ३०० वर्षों में भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु के रूप में जनता द्वारा पूजित थे। ये भट्टारक प्रारम्भ में नग्न होते थे। भट्टारक सकलकीर्त्ति को निर्ग्रन्थराजा कहा गया है। भ० सोमकीर्त्ति अपने आपको भट्टारक के स्थान पर आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। भट्टारक शुभचन्द्र को यतियों का राजा कहा जाता था। भ० वीरचन्द महाव्रतियों के नायक थे। उन्होंने १६ वर्ष तक नीरस आहार का सेवन किया था। आवां (राजस्थान) में भ० शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र की जो निषेधिकायें हैं वे तीनों ही नग्नावस्था की ही हैं। इस प्रकार ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः अनुकूल रखते थे। ये अपने संघ के प्रमुख होते थे। तथा उसकी देख रेख का सारा भार इन पर ही रहता था। इनके संघ में मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिका भी रहा करती थी। प्रतिष्ठा—महोत्सवों के संचालन में इनका प्रमुख हाथ होता था। इन ३०० वर्षों में इन भट्टारकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधु का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रहा और न उसने कोई समाज को दिशा निर्देशन का ही काम किया। इसलिये ये भट्टारक एवं उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी सन्त थे। मंडलाचार्य गुणचन्द्र के संघ में ६ आचार्य, १ मुनि, २ ब्रह्मचारी एवं १२ आर्थिकाएं थी।

---

३. द्वादश तप दश धर्मजुत पालैं पञ्चाचार।
षट आवश्यक गुप्ति त्रय, अचारज पद सार ॥

जैन साहित्य में सन्त शब्द का अधिक प्रयोग नहीं हुआ है। योगीन्दु ने सर्व प्रथम सन्त शब्द का निम्न प्रकार प्रयोग किया है।

> णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद सहाउ।
> जो एहउ सो सन्तु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१।१७॥

यहां सन्त शब्द साधु के लिये ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से हम एक गृहस्थ को जिसकी प्रवृत्तियां जगत से अलिप्त रहने की होती हैं, तथा जो अपने जीवन को लोकहित की दृष्टि से चलाता है तथा जिसकी गतिविधियों से किसी अन्य प्राणी को भी कष्ट नहीं होता, सन्त कहा जा सकता है लेकिन सन्त शब्द का शुद्ध स्वरूप हमें साधुओं में ही देखने को मिलता है जिनका जीवन ही परहितमय है तथा जो जगत के प्राणियों को अपने पावन जीवन द्वारा सन्मार्ग की ओर लगाते हैं। भट्टारक भी इसीलिये सन्त कहे जाते हैं कि उनका जीवन ही राष्ट्र को आध्यात्मिक खुराक देने के लिये समर्पित हो चुका होता है तथा वे देश को साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न बनाते है। वे स्थान स्थान पर विहार करके जन मानस को पावन बनाते है। ये सन्त चाहे भट्टारक वेश में हो या फिर ब्रह्मचारी के वेश में। ब्रह्म जिनदास केवल ब्रह्मचारी थे लेकिन उनका जीवन का चिन्तन एवं मनन अत्यधिक उत्कर्षमय था।

भारतीय संस्कृति, साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में इन सन्तों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिस प्रकार हम कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि को संतों के नाम से पुकारते हैं उसी दृष्टि से ये भट्टारक एवं उनके शिष्य भी सन्त थे और उनसे भी अधिक उनके जीवन की यह विशेषता थी कि वे घर गृहस्थी को छोड़कर आत्म विकास के साथ साथ जगत के प्राणियों को भी हित का ध्यान रखते थे। उन्हें अपने शरीर की जरा भी चिन्ता नहीं थी। उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। वे प्रशंसा-निंदा, लाभ-अलाभ, तृण एवं कंचन में समान थे। वे अपने जीवन में सांसारिक पदार्थों से न स्नेह रखते थे और न लोभ तथा आसक्ति। उनके जीवन में विकार, पाप, भय एवं आशा, लालसा भी नहीं होती थी।

ये भट्टारक पूर्णतः संयमी होते थे। भ० विजयकीर्त्ति के संयम को डिगाने के लिये कामदेव ने भी भारी प्रयत्न किये लेकिन अन्त में उसे ही हार माननी पड़ी। विजयकीर्त्ति अपने संयम की परीक्षा में सफल हुए। इनका आहार एवं विहार पूर्णतः श्रमण परम्परा के अन्तर्गत होता था। १५, १६ वीं शताब्दी तो इनके उत्कर्ष की शताब्दी थी। मुगल बादशाहों तक ने उनके चरित्र एवं विद्वत्ता की प्रशंसा की थी। उन्हें देश के सभी स्थानों में एवं सभी धर्मावलम्बियों से अत्यधिक सम्मान मिलता

था। बाद में तो वे जैनों के आध्यात्मिक राजा कहलाने लगे किन्तु यही उनके पतन का प्रारम्भिक कदम था।

जैन सन्तों ने भारतीय साहित्य को अमूल्य कृतियां भेंट की है। उन्होंने सदैव ही लोक भाषा में साहित्य निर्माण किया। प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषाओं में रचनायें इनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न इन्होंने ८ वीं शताब्दी से पूर्व ही लेना प्रारम्भ कर दिया था। मुनि रामसिंह का दोहा पाहुड हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य कृति है जिसकी तुलना में भाषा साहित्य की बहुत कम कृतियां आ सकेंगी। महाकवि तुलसीदास जी को तो १७ वीं शताब्दी में भी हिन्दी भाषा में रामचरित मानस लिखने में झिझक हो रही थी किन्तु इन जैन सन्तों ने उनके ८०० वर्ष पहिले ही साहस के साथ प्राचीन हिन्दी में रचनायें लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

जैन सन्तों ने साहित्य के विभिन्न अंगों को पल्लवित किया। वे केवल चरित काव्यों के निर्माण में ही नहीं उलझे किन्तु पुराण, काव्य, वेलि, रास, पंचासिका, शतक, पच्चीसी, बावनी, विवाहलो, आख्यान आदि काव्य के पचासों रूपों को इन्होंने अपना समर्थन दिया और उनमें अपनी रचनायें निर्मित करके उन्हें पल्लवित होने का सुअवसर दिया। यही कारण है कि काव्य के विभिन्न अंगों में इन सन्तों द्वारा निर्मित रचनायें अच्छी संख्या में मिलती हैं।

आध्यात्मिक एवं उपदेशी रचनायें लिखना इन सन्तों को सदा ही प्रिय रहा है। अपने अनुभव के आधार पर जगत की दशा का जो सुन्दर चित्रण इन्होंने अपनी कृतियों में किया है वह प्रत्येक मानव को सत्पथ पर ले जाने वाला है। इन्होंने मानव से जगत से भागने के लिये नहीं कहा किन्तु उसमें रहते हुए ही अपने जीवन को सुमुन्नत बनाने का उपदेश दिया। शान्त एवं आध्यात्मिक रस के अतिरिक्त इन्होंने वीर, शृंगार, एवं अन्य रसों में भी खूब साहित्य सृजन किया।

महाकवि वीर द्वारा रचित 'जम्बूस्वामीचरित' (१०७६) एवं भ० रत्नकीर्त्ति द्वारा वीरविलासफाग इसी कोटि की रचनायें हैं। रसों के अतिरिक्त छन्दों में जितनी विविधताऐं इन सन्तों की रचनाओं में मिलती हैं उतनी अन्यत्र नहीं। इन सन्तों की हिन्दी, राजस्थानी, एवं गुजराती भाषा की रचनायें विविध छन्दों से आप्लावित हैं।

लेखक का विश्वास है कि भारतीय साहित्य की जितनी अधिक सेवा एवं सुरक्षा इन जैन सन्तों ने की है उतनी अधिक सेवा किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के साधु वर्ग द्वारा नहीं हो सकी है। राजस्थान के इन सन्तों ने स्वयं ने तो विविध

भाषाओं में सैकड़ों हजारों कृतियों का सृजन किया ही किन्तु अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, साधुओं, कवियों एवं लेखकों की रचनाओं का भी बड़े प्रेम, श्रद्धा एवं उत्साह से संग्रह किया। एक एक ग्रन्थ की कितनी ही प्रतियां लिखवा कर ग्रन्थ भण्डारों में विराजमान की और जनता को उन्हें पढ़ने एवं स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया। राजस्थान के आज सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार उनकी साहित्यिक सेवा के ज्वलंत उदाहरण हैं। जैन सन्त साहित्य संग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एवं सम्प्रदाय के चक्कर में नहीं पड़े किन्तु जहां से उन्हें अच्छा एवं कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ वहीं से उसका संग्रह करके शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत किया गया। साहित्य संग्रह की दृष्टि से इन्होंने स्थान स्थान पर ग्रंथ भण्डार स्थापित किये। इन्हीं सन्तों की साहित्यिक सेवा के परिणाम स्वरूप राजस्थान के जैन ग्रंथ भण्डारों में १ लाख से अधिक हस्तलिखित ग्रंथ अब भी उपलब्ध होते हैं।[1] ग्रंथ संग्रह के अतिरिक्त इन्होंने जैनेतर विद्वानों द्वारा लिखित काव्यों एवं अन्य ग्रंथों पर टीका लिख कर उनके पठन पाठन में सहायता पहुंचायी। राजस्थान के जैन ग्रंथ भण्डारों में अकेले जैसलमेर के ही ऐसे ग्रंथ संग्रहालय हैं जिनकी तुलना भारत के किसी भी प्राचीनतम एवं बड़े से बड़े ग्रंथ संग्रहालय से की जा सकती है। उनमें संग्रहीत अधिकांश प्रतियां ताडपत्र पर लिखी हुई हैं और वे सभी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं।

श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्र सूरि ने संवत् १४९७ में वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैकड़ों अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचा लिया। अकेले जैसलमेर के इन भण्डारों को देखकर कर्नल टाड, डा० वूहलर, डा० जैकोवी जैसे पाश्चात्य विद्वान एवं भाण्डारकर, दलाल जैसे भारतीय विद्वान आश्चर्य चकित रह गये थे उन्होने अपनी दांतों तले अंगुली दवा ली। यदि ये पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् नागौर, अजमेर, आमेर एवं जयपुर के शास्त्र भण्डारों को देख लेते तो संभवतः वे इनकी साहित्यिक धरोहर को देखकर नाच उठते और फिर जैन साहित्य एवं जैन संतो की सेवाओं पर न जाने कितनी श्रद्धांजलियां अर्पित करते। कितने ही ग्रंथ संग्रहालय तो अब तो ऐसे हो सकते हैं जिनकी किसी भी विद्वान् द्वारा छानवीन नहीं की गई हो। लेखक को राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों पर शोध निबन्ध लिखने एवं श्री महावीर क्षेत्र द्वारा राजस्थान के शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची बनाने के अवसर पर १०० से भी अधिक भण्डारों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। यदि मुस्लिम युग में धर्मान्ध शासकों द्वारा इन शास्त्र भंडारों का विनाश नहीं किया जाता एव हमारी लापरवाही से सैकड़ों हजारों ग्रंथ चूहों, दीमक एवं सीलन

---

१. ग्रंथ भण्डारों का विस्तृत परिचय के लिये लेखक की "जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान" पुस्तक देखिये।

से नष्ट नहीं होते तो पता नहीं आज कितनी अधिक संख्या में इन भंडारों में ग्रंथ उपलब्ध होते। फिर भी जो कुछ अवशिष्ट है वे ही इन सन्तों की साहित्यिक निष्ठा को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान की भूमि को सम्वत् १४५० से १७५० तक पावन करने वाले सन्तों का परिचय दिया गया है। लेकिन इस प्रदेश में तो प्राचीनतम काल से ही सन्त होते रहे हैं जिन्होंने अपनी सेवाओं द्वारा इस प्रदेश की जनता को जाग्रत किया है। डा० ज्योतिप्रसाद जी[1] के अनुसार "दिगम्बराम्नाय सम्मत षट् खंडगमादि मूल आगमों की सर्व प्रसिद्ध एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण धवल, जयधवल, महाधवल नाम की विशाल टीकाओं के रचयिता प्रातः स्मरणीय स्वामी वीरसेन को जन्म देने का सौभाग्य भी राजस्थान की भूमि को ही प्राप्त है। ये आचार्य प्रवर श्री वीरसेन भट्टारक की सम्मानित पदवी के धारक थे। इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार से पता चलता है कि आगम सिद्धान्त के तत्वज्ञ श्री एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौड़) में विराजते थे और उन्ही के चरणों के सानिध्य इन्होंने सिद्धान्तादि का अध्ययन किया था।"

जम्बूद्वीपपण्णत्ति के रचयिता आ० पद्मनन्दि राजस्थानी सन्त थे। प्रज्ञप्ति में २३९८ प्राकृत गाथाओं में तीन लोकों का वर्णन किया गया है। प्रज्ञप्ति की रचना बांरा (कोटा) नगर में हुई थी। इसका रचनाकाल संवत् ८०५ है। उन दिनों मेवाड़ पर राजा शक्ति या सत्ति का शासन था और बांरा नगर मेवाड़ के अधीन था। ग्रंथकार ने अपने आपको वीरनन्दि का प्रशिष्य एवं बलनन्दि के शिष्य लिखा है। १० वीं शताब्दी में होने वाले हरिभद्र सूरि राजस्थान के दूसरे सन्त थे जो प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के जबरदस्त विद्वान् थे। इनका सम्बन्ध चित्तौड़ से था। आगम ग्रंथों पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, प्रज्ञापना सूत्र आदि आगम ग्रंथों पर संस्कृत में विस्तृत टीकाऐं लिखी और उनके स्वाध्याय में वृद्धि की। न्याय शास्त्र के ये प्रकाण्ड विद्वान् थे इसीलिये इन्होंने अनेकान्त जयपताका, अनेकान्तवादप्रवेश जैसे दार्शनिक ग्रंथों की रचना की। समराइच्चकहा प्राकृत भाषा की सुन्दर कथाकृति है जो इन्हीं के द्वारा गद्य पद्य दोनों में लिखी हुई है। इसमें ९ प्रकरण हैं जिनमें परस्पर विरोधी दो पुरुषों के साथ साथ चलने वाले ९ जन्मान्तरों का वर्णन किया गया है। इसका प्राकृतिक वर्णन एवं भाषा चित्रण दोनों ही सुन्दर है। धूर्ताख्यान भी इनकी अच्छी रचना है। हरिभद्र के 'योगविन्दु' एवं 'योगदृष्टि' समुच्चय भी दर्शन शास्त्र की अच्छी रचनायें मानी जाती है।

---

१. देखिये वीरवाणी का राजस्थान जैन साहित्य सेवी विशेषांक पृ० सं० ९

महेश्वरसूरि भी राजस्थानी श्वे. सन्त थे। इनकी प्राकृत भाषा की 'ज्ञान पंचमी कहा' तथा अपभ्रंश की 'संयममंजरी कहा' प्रसिद्ध रचनायें है। दोनों ही कृतियों में कितनी ही सुन्दर कथाएँ हैं जो जैन दृष्टिकोण से लिखी गई हैं।

संवत् १७५० के पश्चात् इन सन्तों का साहित्य निर्माण की ओर ध्यान कम होता गया और ये अपना अधिकांश समय प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजन में, विधि विधान तथा व्रतोद्यापन सम्पन्न कराने में लगाने लगे। इनके अतिरिक्त ये बाह्य क्रियाओं के पालन करने में इतने अधिक जोर देने लगे कि जन साधारण का इनके प्रति भक्ति, श्रद्धा एवं आदर का भाव कम होने लगा। इन सन्तों की आमेर, अजमेर, नागौर, डूंगरपुर, ऋषभदेव आदि स्थानों में गादियां अवश्य थी और एक के पश्चात् दूसरे भट्टारक भी होते रहे लेकिन जो प्रभाव भ० सकलकीर्ति, जिनचन्द्र, शुभचन्द्र आदि का कभी रहा था उसे ये सन्त रख नहीं सके। १८ वीं एवं १९ वीं शताब्दी में श्रावक समाज में विद्वानों की जो बाढ सी आयी थी और जिसका नेतृत्व महापंडित टोडरमल जी ने किया था उससे भी इन भटारकों के प्रभाव में कमी होती गई क्योंकि इन दो शताब्दी में होने वाले प्रायः सभी विद्वान् इन भट्टारकों के विरुद्ध थे। दिगम्बर समाज में "तेरहपंथ" के नाम से जिस नये पंथ ने जन्म लिया था वह भी इन सन्तों द्वारा समर्थित बाह्याचार के विरुद्ध था लेकिन इन सब विरोधों के होने पर भी दिगम्बर समाज में सन्तों के रूप में भट्टारक परम्परा चलती रही। यद्यपि इन सन्तों ने साहित्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया लेकिन प्राचीन साहित्य की जो कुछ सुरक्षा हो सकी है उसमें इनका प्रमुख हाथ रहा। नागौर, अजमेर, आमेर एवं जयपुर के भण्डारों में जिस विशाल साहित्य का संग्रह है वह सब इन सन्तों द्वारा की गई साहित्य सुरक्षा का ही तो सुफल है इसलिये किसी भी दृष्टि से इनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता।

आमेर गादी से सम्बन्धित भ० देवेन्द्रकीर्त्ति, महेन्द्रकीर्त्ति, क्षेमेन्द्रकीर्त्ति, सुरेन्द्रकीर्त्ति एवं नरेन्द्रकीर्त्ति, नागौर गादी पर होने वाले भ० रत्नकीर्त्ति (सं० १७४५) एवं विजयकीर्त्ति (१८०२) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भ० विजयकीर्त्ति अपने समय के अच्छे विद्वान् थे और अब तक उनकी कितनी ही कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं इनमें कर्णामृतपुराण, श्रेणिकचरित, जम्बूस्वामीचरित आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

साहित्य सुरक्षा के अतिरिक्त इन सन्तों ने प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार एवं नवीन मन्दिरों के निर्माण में विशेष योग दिया। १८ वीं एवं १९ वीं शताब्दी में सैकड़ों बिम्बप्रतिष्ठायें सम्पन्न हुई और इन्होंने उनमें विशेष रूप से भाग लेकर उन्हें सफल बनाने का पूरा प्रयास किया। ये ही उन आयोजनों के विशेष अतिथि

थे। संवत् १७४६ में चांदखेड़ी में भारी प्रतिष्ठा हुई थी उसका वर्णन एक पट्टावली में दिया हुआ है जिससे पता चलता है कि समाज के एक वर्ग के विरोध के उपरांत भी ऐसे समारोहों में इन्हें ही विशेष अतिथि बनाकर आमन्त्रित किया जाता था। जोबनेर (संवत् १७५१) बांसखो (संवत् १७८३) मारोठ (सं० १७६४) बून्दी (सं० १७८१) सवाई माधोपुर (सं० १८२६) अजमेर (सं० १८५२) जयपुर (सं० १८६१ एवं १८६७) आदि स्थानों में जो सांस्कृतिक प्रतिष्ठा आयोजन सम्पन्न हुए थे उन सबमें इन सन्तों का विशेष हाथ था।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में

जैन सन्तों पर एक पुस्तक तैयार करने का पर्याप्त समय से विचार चल रहा था क्योंकि जब कभी सन्त साहित्य पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक देखने में आती और उसमें जैन सन्तों के बारे में कोई भी उल्लेख नहीं देख कर हिन्दी विद्वानों के इनके साहित्य की उपेक्षा से दुःख भी होता किन्तु साथ में यह भी सोचता कि जब तक उनको कोई सामग्री ही उपलब्ध नहीं होती तब तक यह उपेक्षा इसी प्रकार चलती रहेगी। इसलिए सर्व प्रथम राजस्थान के जैन सन्तों के जीवन एवं उनकी साहित्य सेवा पर लिखने का निश्चय किया गया। किन्तु प्राचीनकाल से ही होने वाले इन सन्तों का एक ही पुस्तक में परिचय दिया जाना सम्भव नहीं था इसलिए संवत् १४५० से १७५० तक का समय ही अधिक उपयुक्त समझा गया क्योंकि यही समय इन सन्तों (भट्टारकों) का स्वर्ण काल रहा था इन ३०० वर्षों में जो प्रभावना, त्याग एवं साहित्य सेवा की धुन इन सन्तों की रही वह सबको आश्चर्यान्वित करने वाली है।

पुस्तक में ५४ जैन सन्तों के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला है। इनमें कुछ सन्तों का तो पाठकों को संभवतः प्रथम बार परिचय प्राप्त होगा। इन सन्तों ने अपने जीवन विकास के साथ साथ जन जागृति के लिए किस किस प्रकार के साहित्य का निर्माण किया वह सब पुस्तक में प्रयुक्त सामग्री से भली प्रकार जाना जा सकता है। वास्तव में ये सच्चे अर्थों में सन्त थे। अपने स्वयं के जीवन को पवित्र करने के पश्चात् उन्होंने जगत को उसी मार्ग पर चलने का उपदेश दिया था। वे सच्चे अर्थ में साहित्य एवं धर्म प्रचारक थे। उन्होंने भक्ति काव्यों की ही रचना नहीं की किन्तु भक्ति के अतिरिक्त अध्यात्म, सदाचरण एवं महापुरुषों के जीवन के आधार पर भी कृतियां लिखने और उनके पठन पाठन का प्रचार किया। वे कभी एक स्थान पर जम कर नहीं रहे किन्तु देश के विभिन्न ग्राम नगरों में विहार करके जन जागृति का शखनाद फूंका। पुस्तक के अन्त में कुछ लघु रचनायें एवं कुछ रचनाओं के प्रमुख स्थलों को अविकल रूप से दिया गया है। जिससे विद्वान् एवं पाठक इन रचनाओं का सहज भाव से आनन्द ले सकें।

आभार

सर्व प्रथम मैं वर्त्तमान जैन सन्त पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दि जी महाराज का अत्यधिक आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक पर आशीर्वाद के रूप में अपना अभिमत लिखने की कृपा की है।

यह कृति श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग का प्रकाशन है इसके लिये मैं क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यों तथा विशेषतः सभापति डा० राजमलजी कासलीवाल एवं मंत्री श्री गैंदीलालजी साह एडवोकेट का आभारी हूं जिनके सद् प्रयत्नों से क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य के खोज एवं उसके प्रकाशन जैसा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हो रहा है। वास्तव में क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस दिशा में अपना नेतृत्व प्रदान किया है। पुस्तक की भूमिका आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय ने लिखने की महती कृपा की है। डाक्टर साहब का मुझे काफी समय से पर्याप्त स्नेह एवं साहित्यिक कार्यों में निर्देशन मिलता रहता है इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं। मैं मेरे सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का भी पूर्ण आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक को तैयार करने में अपना पूर्ण सहयोग दिया है। मैं श्री प्रेमचन्द रांवका का भी आभारी हूं जिन्होंने इसकी अनुक्रमणिकायें तैयार की हैं।

दिनांक १–९–६७ डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

* विषय सूची *

कतिपय लघु कृतियां एवं उद्धरण

शताब्दि क्रमानुसार सन्तों की नामावलि

—: :✽: :—

१५ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक सकलकीर्त्ति	१४४३—१४९९
ब्रह्म जिनदास	१४४५—१५१५
मुनि महनन्दि	
महोपाध्याय जयसागर	१४५०—१५१०
हीरानन्द सूरि	१४८४

१६ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक भुवनकीर्त्ति	१५०८
भट्टारक जिनचन्द्र	१५०७
आचार्य सोमकीर्त्ति	१५२६—४०
भट्टारक ज्ञानभूषण	१५३१—६०
ब्रह्म बूचराज	१५३०—१६००
आचार्य जिनसेन	१५५८
भट्टारक प्रभाचन्द्र	१५७१
ब्रह्म गुणकीर्त्ति	—
भट्टारक विजयकीर्त्ति	१५५२—१५७०
संत कवि यशोधर	१५२०—९०
मुनि सुन्दरसूरि	१५०१
ब्रह्म जीवंधर	—
ब्रह्म धर्म रुचि	—

विद्याभूषण	१६००
वाचक मतिशेखर	१५१४
वाचक विनयसमुद्र	१५३८
भट्टारक शुभचन्द्र (प्रथम)	१५४०—१६१३

१७ वीं शताब्दि

ब्रह्म जयसागर	१५८०—१६५५
वीरचन्द्र	—
सुमतिकीर्त्ति	१६२०
ब्रह्म रायमल्ल	१६१५—१६३६
भट्टारक रत्नकीर्त्ति	१६४३—१६५६
भट्टारक कुमुदचन्द्र	१६५६
अभयचन्द्र	१६४०
आचार्य चन्द्रकीर्त्ति	१६००—१६६०
भट्टारक अभयनन्दि	१६३०
ब्रह्म जयराज	१६३२
सुमतिसागर	१६००—१६६५
ब्रह्म गणेश	—
संयमसागर	—
त्रिभुवनकीर्त्ति	१६०६
भट्टारक रत्नचन्द्र (प्रथम)	१६७६
ब्रह्म अजित	१६४६
आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति	१६४६
कल्याणकीर्त्ति	१६९२
भट्टारक महीचन्द्र	—
ब्रह्म कपूरचन्द	१६९७
हर्षकीर्त्ति	—
भट्टारक सकलभूषण	१६२७

मुनि राजचन्द्र	१६८४
ज्ञानकीर्त्ति	१६५६
महोपाध्याय समयसुन्दर	१६२०—१७००

१८ वीं शताब्दि

भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय)	१७४५
ब्रह्म धर्मसागर	—
विद्यासागर	—
भट्टारक रत्नचन्द्र (द्वितीय)	१७५७
भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति	१६९१—१७२२
भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति	१७२२
भट्टारक जगत्कीर्त्ति	१७३३

—:: §:§ ::—

भट्टारक सकलकीर्त्ति

'भट्टारक सकलकीर्ति' १५ वीं शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त थे। राजस्थान एवं गुजरात में 'जैन साहित्य एवं संस्कृति' का जो जबरदस्त प्रचार एवं प्रसार हो सका था—उसमें इनका प्रमुख योगदान था। इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य को नष्ट होने से बचाया और देश में उसके प्रति एक अद्‌भुत आकर्षण पैदा किया। उनके हृदय में आत्म साधना के साथ साथ साहित्य-सेवा की उत्कट अभिलाषा थी इसलिए युवावस्था के प्रारम्भ में ही जगत के वैभव को ठुकरा कर सन्यास धारण कर लिया। पहिले इन्होंने अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त किया और फिर बीसों नव निर्मित रचनाओं के द्वारा समाज एवं देश को एक नया ज्ञान प्रकाश दिया। वे जब तक जीवित रहे, तब तक देश में और विशेषतः बागड़ प्रदेश एवं गुजरात के कुछ भागों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण का शंखनाद फूंकते रहे।

'सकलकीर्त्ति' अनोखे सन्त थे। अपने धर्म के प्रति उनमें गहरी आस्था थी। जब उन्होंने लोगों में फैले अज्ञानान्धकार को देखा तो उनसे चुप नहीं रहा गया और जीवन पर्यन्त देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करके तत्कालीन समाज में एक नव जागरण का सूत्रपात किया। स्थान स्थान पर उन्होंने ग्रंथ संग्रहालय स्थापित किए जिनमें उनके शिष्य एवं प्रशिष्य साहित्य लेखन एवं प्रचार का कार्य करते रहते थे। उन्होंने अपने शिष्यों को साहित्य-निर्माण की ओर प्रेरित किया। वे महान् व्यक्तित्व के धनी थे। जहां भी उनका विहार होता वहीं एक अनोखा दृश्य उपस्थित हो जाता था। साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा के लिए लोगों की की टोलियां बन जातीं और उन के साथ रहकर इनका प्रचार किया करतीं।

जीवन परिचय

'सन्त सकलकीर्त्ति' का जन्म संवत् १४४३ (सन् १३८६) में हुआ था।[1] डा० प्रेमसागर जी ने 'हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि' में सकलकीर्त्ति का संवत् १४४४ में ईडर गद्दी पर बैठने का जो उल्लेख किया है वह सकलकीर्त्ति रास के अनुसार सही प्रतीत नहीं होता। इनके पिता का नाम करमसिंह एवं माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति

---

१. हरषी सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर।
चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ॥

हूंवड़ थी[1]। होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार गर्भाधारण के पश्चात् इनकी माता ने एक सुन्दर स्वप्न देखा और उसका फल पूछने पर करमसिंह ने इस प्रकार कहा—

"तजि वयण सुणिसार, सार कुमर तुम्ह होइसिइए।
निर्मल गंगानीर, चंदन नंदन तुम्ह तणुए ॥६॥
जलनिधि गहिर गंभीर खीरोपम सोहा मणुए।
ते जिहि तरण प्रकाश जग उद्योतन जस किरणि ॥१०॥

बालक का नाम 'पूनसिंह' अथवा 'पूर्णसिंह' रखा गया। एक पट्टावलि में इनका नाम 'पदर्थ' भी दिया हुआ है। द्वितीया के चन्द्रमा के समान वह बालक दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। उसका वर्ण राजहंस के समान शुभ्र था तथा शरीर बत्तीस लक्षणों से युक्त था। पांच वर्ष के होने पर पूर्णसिंह को पढ़ने बैठा दिया गया। बालक कुशाग्र बुद्धि का था इसलिए शीघ्र ही उसने सभी ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया। विद्यार्थी अवस्था में भी इनका अर्हद् भक्ति की ओर अधिक ध्यान रहता था तथा क्षमा, सत्य, शौच एवं ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को जीवन में उतारने का प्रयास करते रहते थे। गार्हस्थ जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने उनका १४ वर्ष की अवस्था में ही विवाह कर दिया लेकिन विवाह बंधन में बांधने के पश्चात् भी उनका मन संसार में नहीं लगा और वे उदासीन रहने लगे। पुत्र की गति-विधियां देखकर माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया और कहा कि उनके पास जो अपार सम्पत्ति है, महल-मकान है, नौकर-चाकर हैं, उसके वैराग्य धारण करने के पश्चात्—वह किस काम आवेगा ? यौवनावस्था सांसरिक सुखों के भोग के लिए होती है ! संयम का तो पीछे भी पालन किया जा सकता है। पुत्र एवं माता-पिता के मध्य बहुत दिनों तक वाद-विवाद चलता रहा।[2] वे उन्हें साधु-जीवन की

---

१. न्याति मांहि मुहुतवंत हूंवड़ हरषि वखाणिइए।
करमसिह वितपन्न उदयवंत इम जाणीइए॥ ३ ॥
शोभित तरस अरधांगि, मूलि सरीस्य सुंदरीय ।
सील स्यंगारित अङ्गि पेखु प्रत्यक्षे पुरंदरीय ॥ ४ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

२. देखवि चंचल चित्त मात पिता कहि वछ सुणि ।
अह्म मंदिर बहु वित्त आविसिइ कारण कवण ॥ २० ॥
लहुआ लीलावंत सुख भोगवि संसार तणाए।
पछइ दिवस बहूत अछिइ संयम तप तणाए ॥ २१ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

कठिनाइयों की ओर संकेत करते तथा कभी कभी अपनी वृद्धावस्था का भी रोना-रोते लेकिन पूर्णसिंह के कुछ समझ में नहीं आता और वे बारबार साधु-जीवन धारण करने की उनसे स्वीकृति मांगते रहते।[1]

अन्त में पुत्र की विजय हुई और पूर्णसिंह ने २६ वें वर्ष में अपार सम्पत्ति को तिलाञ्जलि देकर साधु-जीवन अपना लिया। वे आत्मकल्याण के साथ साथ जगत्कल्याण की ओर चल पड़े। 'भट्टारक सकलकीर्त्ति नु रास' के अनुसार उनकी इस समय केवल १८ वर्ष की आयु थी। उस समय भ० पद्मनन्दि का मुख्य केन्द्र नैणवां (राजस्थान) था और वे आगम ग्रन्थों के पारगामी विद्वान माने जाते थे इसलिए ये भी नैणवां चले गये और उनके शिष्य बन कर अध्ययन करने लगे। यह उनके साधु जीवन की प्रथम पद यात्रा थी। वहां ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं संस्कृत के ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया, उनके मर्म को समझा और भविष्य में सत्-साहित्य का प्रचार-प्रसार ही अपना एक उद्देश्य बना लिया। ३४ वें वर्ष में उन्होंने आचार्य पदवी ग्रहण की और अपना नाम सकलकीर्त्ति रख लिया।

नैणवां से पुनः बागड़ प्रदेश में आने के पश्चात ये सर्व प्रथम जन-साधारण में साहित्यिक चेतना जाग्रत करने के निमित्त स्थान स्थान पर विहार करने लगे। एक बार वे खोड़ण नगर आये और नगर के बाहर उद्यान में ध्यान लगाकर बैठ गए। उधर नगर से आई हुई एक श्राविका ने जब नग्न साधु को ध्यानस्थ बैठे देखा तो घर जा कर उसने अपनी सास से जिन शब्दों में निवेदन किया--उसका एक पट्टावलि में निम्न प्रकार वर्णन मिलता है:—

"एक श्राविका पांणी गया हतां तो पांणी भरीने ते मारग आव्या ने श्राविका स्वामी सांमो जो ही रहवा तेने मन में विचार कर्यो ते मारी सासुजी बात कहेता इता तो वा साधु दीसे छे, ते श्राविका उतावेलि जाई ने पोनी सासुजी ने बात कही जी। सासूजी एक वात कहू ते सांचलो जी' ते सासू कही सु कहे छे बहू। सासूजी एक साधु जीनो प्रसाद छे तेहां साधूजी बैठां छै जी ते कने एक काठ का बरतन छे जी। एक मोरना पीछीका छे जी तथा साधु बैठा छा जी! तारे सासू ये मन में वीचार करिने रह्या नी। अहो बहु! रिषि मुनि आव्या हो से।

---

१. वयणि तीज सुणेवि, पून पिता प्रति इम कहिए।
निज मन सुविस करेवि, धीरने तरण तप गहए॥ २२॥
ज्योवन गिइ गमार, पछइ पालइ सीयल घणा।
ते कहु कवण विचार विण अवसर जे वरसीयिए॥ २३॥
सकलकीर्त्तिरास

एवो कहिने सासू उठी। ते पछे साधुजी ने पासे आव्याजी। ते त्रीण प्रदक्षीणा देने वेठा मुनि उलह्या मन में हरख्या ते पछे नमोस्तु नमोस्तु करिने श्री गुरुवन्दना भक्ति की थी। पछे श्री स्वामीजी ने मनव्रत लीवो हत्तो ते तो पोताना पुन्य थकी श्रावीका आली श्री स्वामी जी धर्मवृधी दीधी।"

विहार : 'सकलकीर्त्ति' का वास्तविक साधु जीवन सवत् १४७७ से प्रारम्भ होकर संवत् १४९९ तक रहा। इन २२ वर्षों में इन्होंने मुख्य रूप से राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि राज्यों एवं गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपस्थ प्रदेशों में खूब विहार किया। उस समय जन साधारण के जीवन में धर्म के प्रति काफी शिथिलता आगई थी। साधु संतों के विहार का अभाव था। जन-साधारण की न तो स्वाध्याय के प्रति रुचि रही थी और न उन्हें सरल भाषा में साहित्य ही उपलब्ध होता था। इसलिए सर्व प्रथम सकलकीर्त्ति ने उन प्रदेशों में विहार किया और सारी समाज को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने कितनी ही यात्रा-संघों का नेतृत्व किया। सर्व प्रथम 'संघपति सींह' के साथ गिरिनार यात्रा आरम्भ की। फिर वे चंपानेर की ओर यात्रा करने निकले। वहां से आने के पश्चात् हूंवड़ जातीय रतना के साथ मांगीतुंगी की यात्रा को प्रस्थान किया। इसके पश्चात् उन्होंने अन्य तीर्थों की वन्दना की। जिससे राजस्थान एवं गुजरात में एक चेतना की लहर दौड़ गयी।

प्रतिष्ठाओं का आयोजन

तीर्थयात्राओं के समाप्त होने के पश्चात् 'सकलकीर्त्ति' ने नव मन्दिर निर्माण एवं प्रतिष्ठायें करवाने का कार्य हाथ में लिया। उन्होंने अपने जीवन में १४ विम्ब प्रतिष्ठाओं का सञ्चालन किया। इस कार्य में योग देने वालों में संघपति नरपाल एवं उनकी पत्नी बहुरानी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। गलियाकोट में संघपति मूलराज ने इन्हीं के उपदेश से चतुर्विशति जिन विम्ब की स्थापना की थी। नागद्रह जाति के श्रावक संघपति ठाकुरसिंह ने भी कितनी ही विम्ब प्रतिष्ठाओं में योग दिया। आबू नगर में उन्होंने एक प्रतिष्ठा महोत्सव का सञ्चालन किया था जिसमें तीन चौबीसी की एक विशाल प्रतिमा परिकर सहित स्थापित की गई।[1]

सन्त सकलकीर्त्ति द्वारा संवत् १४९०, १४९२, १४९७ आदि संवतों में प्रतिष्ठापित मूर्त्तियां उदयपुर, डूंगरपुर एवं सागवाड़ा आदि स्थानों के जैन मन्दिर में मिलती है। प्रतिष्ठा महोत्सवों के इन आयोजनों से तत्कालीन समाज में जन-जाग्रति की जो भावना उत्पन्न हुई थी, उसने उन प्रदेशों में जैन धर्म एवं संस्कृति को जीवित रखने में अपना पूरा योग दिया।

---

१. पवर प्रासाद आब्बू सहिरे त स परिकरि जिनवर त्रिणी चउवीस।
त स कीधो प्रतिष्ठा तेह तणोए, गुरि मेलवि चउविध संध्य सरीस॥

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य :

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जिन २ परम्पराओं की नींव रखी, उनका बाद में खूब विकास हुआ। अध्ययन गंभीर था—इसलिए कोई भी विद्वान् इनके सामने नहीं टिक सकता था। प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। ब्रह्म जिनदास एव भ० भुवनकीर्ति जैसे विद्वानों का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पाण्डित्य का सूचक है। इनकी वाणी में जादू था इसलिए जहां भी इनका विहार हो जाता था—वहीं इनके सैंकडों भक्त बन जाते थे। ये स्वयं तो योग्यतम विद्वान थे ही, किन्तु इन्होंने अपने शिष्यों को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया। ब्रह्म जिनदास ने अपने जम्बू स्वामी चरित्र[1] में इनको महाकवि, निर्ग्रन्थ राजा एवं शुद्ध चरित्रधारी[1] तथा हरिवंश पुराण[2] में तपोनिधि एवं निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ आदि उपाधियों से सम्बोधित किया है।

भट्टारक सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला की प्रशस्ति में कहा है कि सकलकीर्त्ति जन–जन का चित्त स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। ये पुण्य मूर्तिस्वरूप थे तथा पुराण ग्रन्थों के रचयिता थे।[3]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने 'सकलकीर्ति' को पुराण एवं काव्यों का प्रसिद्ध नेता कहा है। इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्रायः सभी भट्टारक सन्तों ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एवं विद्वता की भारी प्रशंसा की है। ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने–आपको सम्बोधित करते थे। 'धन्यकुमार चरित्र' ग्रन्थ की पुष्पिका में इन्होंने अपने–आपका 'मुनि सकलकीर्ति' नाम से परिचय दिया है।

ये स्वयं रहते भी नग्न अवस्था में ही थे और इसीलिए ये निर्ग्रन्थकार अथवा 'निर्ग्रन्थराज' के नाम से भी अपने शिष्यों द्वारा सम्बोधित किये गए हैं। इन्होंने बागड़ प्रदेश में जहां भट्टारकों का कोई प्रभाव नहीं था—संवत् १४९२ में गलियाकोट

---

१. ततो भवत्तस्य जगत्प्रसिद्धेः पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्त्तिः।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ॥
जम्बूस्वामीचरित्र

२. तत्पट्टपंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी।
महाकवित्वादिकलाप्रवीणः तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्त्तिः ॥
हरिवंश पुराण

३. तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी।
भट्टारकश्रीसकलादिकीर्त्तिः प्रसिद्धनामा जनि पुण्यमूर्त्तिः ॥२१६॥
—उपदेश रत्नमाला सकलभूषण

में एक भट्टारक गादी की स्थापना की और अपने-आपको सरस्वती गच्छ एवं वलात्कारगण की परम्परा में भट्टारक घोपित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी थे तथा अपने जीवन में इन्होंने कितने ही व्रतों का पालन किया था।

सकलकीर्त्ति ने जनता को जो कुछ चारित्र सम्बन्धी उपदेश दिया, पहिले उसे अपने जीवन में उतारा। २२ वर्ष के एक छोटे से समय में ३५ से अधिक ग्रन्थों की रचना, विविध ग्रामों एवं नगरों में विहार, भारत के राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशों के तीर्थो की पद यात्रा एवं विविध व्रतों का पालन केवल सकलकीर्त्ति जैसे महा विद्वान् एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले साधु से ही सम्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार ये श्रद्धा. ज्ञान एवं चारित्र से विभूपित उत्कृष्ट एवं आकर्पक व्यक्तित्व वाले साधु थे।

शिष्य-परम्परा

भट्टारक सकलकीर्त्ति के कुल कितने शिष्य थे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन एक पट्टावली के अनुसार इनके स्वर्गवास के पश्चात् इनके शिष्य धर्मकीर्त्ति ने नोतनपुर में भट्टारक गद्दी स्थापित की। फिर विमलेन्द्र कीर्त्ति भट्टारक हुये और १२ वर्ष तक इस पद पर रहे। इनके पश्चात् आँतरी गांव में सव श्रावकों ने मिलकर संघवी सोमरास श्रावक को भट्टारक दीक्षा दी तथा उनका नाम भुवनकीर्त्ति रखा गया। लेकिन अन्य पट्टावलियों में एवं इस परम्परा होने वाले सन्तों के ग्रन्थों को प्रशस्तियों में भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त और किसी भट्टारक का उल्लेख नहीं मिलता। स्वयं भ. भुवनकीर्त्ति, ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, शुभचंद आदि सभी सन्तों ने भुवनकीर्त्ति को ही इनका प्रमुख शिष्य होना माना है। यह हो सकता है कि भुवनकीर्त्ति ने अपने आपको सकलकीर्त्ति से सीधा सम्बन्ध वतलाने के लिये उक्त दोनों सन्तों के नामों के उल्लेख करने की परम्परा को नहीं डालना चाहा हो। भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त सकलकीर्त्ति के प्रमुख शिष्यों में ब्रह्म जिनदास का नाम उल्लेखनीय है जो संघ के सभी महाव्रती एवं ब्रह्मचारियों के प्रमुख थे। ये भी अपने गुरू के समान ही संस्कृत एवं राजस्थानी के प्रचंड विद्वान थे और साहित्य में विशेप रुचि रखते थे। 'सकलकीर्त्तिनुरास' में भुवनकीर्त्ति एवं ब्रह्म जिनदास के अतिरिक्त ललितकीर्त्ति के नाम का और उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उनके संघ में आर्यिका एवं क्षुल्लिकायें थी ऐसा भी लिखा है।[1]

---

१. आदि शिष्य आचारिजहि गुरि दीखीया भूतलि भुवनकीर्त्ति।
जयवन्त श्री जगतगुरु गुरि दीखीया ललितकीर्त्ति ॥
महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागार प्रमुख अपार।
अजिका क्षुल्लिका सयलसंघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ॥

मृत्यु

एक पट्टावलि के अनुसार भ. सकलकीर्त्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। संवत् १४९९ में महसाना नगर में उनका स्वर्गवास हुआ। पं० परमानन्दजी शास्त्री ने भी 'प्रशस्ति संग्रह' में इनकी मृत्यु संवत् १४९९ में महसाना (गुजरात) में होना लिखा है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन एवं डा० प्रेमसागर भी इसी संवत् को सही मानते हैं। लेकिन डा० ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन ८१ वर्ष का स्वीकार करते हैं जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियों के अनुसार वह सही नहीं जान पड़ता। 'सकलकीर्त्तिरास' में उनकी विस्तृत जीवन गाथा है। उसमें स्पष्ट रूप से संवत १४४३ को जन्म संवत् माना गया है।

संवत् १४७१ से प्रारम्भ एक पट्टावलि में भ. सकलकीर्त्ति को भ. पद्मनन्दिका चतुर्थ शिष्य माना गया है और उनके जीवन के सम्बन्ध में निम्न प्रकाश डाला गया है—

१. ४ चोथो चेलो आचार्य श्री सकलकीर्त्ति वर्ष २६ छवीसमी ताहा श्री पदर्थ पाटणनाहता तीणी दीक्षा लीधी गांव श्री नीणवा मध्ये। पछे गुरु कने वर्ष ३४ चोतीस थया।

× × × ×

२. पछे वर्ष ५६ छपनीसांणे स्वर्गे पोतासाहो ते वारे पुठी स्वामी सकलकीर्ति ने पाटे धर्मकीर्त्ति स्वामी नोतनपुर संघे थाप्पा।

३. एहवा धर्म करणी करावता बागडराय ने देस कुंभलगढ़ नव सहस्त्र मध्य संघली देसी प्रदेसी व्याहार कर्म करता धर्मपदेस देता नवा ग्रन्थ सुध करता वर्ष २२ व्याहार कर्म करिने धर्म संघली प्रर्वत्या।

उक्त तथ्यों के आधार पर यह निर्णय सही है कि भ. सकलकीर्त्ति का जन्म संवत १४४३ में हुआ था।

श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' में सकलकीर्त्ति का समय संवत् १४५० से संवत् १५१० तक का दिया है। उन्होंने यह समय किस आधार पर दिया है इसका कोई उल्लेख नहीं किया। इसलिये सकलकीर्त्ति का समय संवत् १४४३ से १४९९ तक का ही सही जान पड़ता है।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था

भ० सकलकीर्त्ति के समय देश की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज में सामाजिक एवं धार्मिक चेतना का अभाव था। शिक्षा की बहुत कमी थी।

साधुओं का अभाव था। भट्टारकों के नग्न रहने की प्रथा थी। स्वयं भट्टारक सकलकीर्त्ति भी नग्न रहते थे। लोगों में धार्मिक श्रद्धा बहुत थी। तीर्थयात्रा बड़े २ संघों में होती थी। उनका नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। तीर्थ यात्राएं बहुत लम्बी होती थी तथा वहां से सकुशल लौटने पर बड़े २ उत्सव एवं समारोह किये जाते थे। भट्टारकों ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं एवं अन्य धार्मिक समारोह करने की अच्छी प्रथा डाल दी थी। इनके संघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक आदि सभी होते थे। साधुओं में ज्ञान प्राप्ति की काफी अभिलाषा होती थी तथा संघ के सभी साधुओं को पढाया जाता था। ग्रन्थ रचना करने का भी खूब प्रचार हो गया था। भट्टारक गण भी खूब ग्रन्थ रचना करते थे। वे प्रायः अपने ग्रन्थ श्रावकों के आग्रह से निबद्ध करते रहते थे। व्रत उपवास की समाप्ति पर श्रावकों द्वारा इन ग्रन्थों की प्रतियां विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों को भेंट स्वरूप दे दी जाती थी। भट्टारकों के साथ हस्त-लिखित ग्रन्थों के वस्ते के वस्ते होते थे। समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी और न उनके पढ़ने लिखने का साधन था। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रन्थों की स्वाध्यायार्थ प्रतिलिपि कराई जाती थी और उन्हें साधु सन्तों को पढ़ने के लिए दे दिया जाता था।

साहित्य सेवा

साहित्य सेवा में सकलकीर्त्ति का जबरदस्त योग रहा। कभी २ तो ऐसा मालूम होने लगता है जैसे उन्होंने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया हो। संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे सहज रूप में ही काव्य रचना करते थे इसलिये उनके मुख से जो भी वाक्य निकलता था वही काव्य रूप में परिवर्तित हो जाता था। साहित्य रचना की परम्परा सकलकीर्त्ति ने ऐसी डाली कि राजस्थान के बागड एवं गुजरात प्रदेश में होने वाले अनेक साधु सन्तों ने साहित्य की खूब सेवा की तथा स्वाध्याय के प्रति जन साधारण की भावना को जाग्रत किया। इन्होंने अपने अन्तिम २२ वर्ष के जीवन में २७ से अधिक संस्कृत रचनायें एवं ८ राजस्थानी रचनायें निबद्ध की थी। 'सकलकीर्त्तिनु रास' में इनकी मुख्य २ रचनाओं के जो नाम गिनाये हैं वे निम्नप्रकार हैं—

चारि नियोग रचना करीय, गुरु कवित तणु हवि सुणहु विचार।
१. यती-आचार २. श्रावकाचार ३. पुराण ४. आगमसार कवित अपार ॥
५. आदिपुराण ६. उत्तरपुराण ७. शांति ८. पास ९. वर्द्धमान
१०. मलि चरित्र।
आदि ११. यशोधर १२. धन्यकुमार १३. सुकुमाल १४. सुदर्शन चरित्र
पवित्र ॥

१५. पंचपरमेष्ठी गंध कुटीय १६. अष्टानिका १७. गणधर भेय ।
१८. सोलहकारण पूजा विधि गुरिए सवि प्रगट प्रकासिया तेय ।।
१९. सुक्तिमुक्तावलि २०. कर्मविपाक गुरि रचीय डाईण परि
विविध परिग्रंथ ।
भरह संगीत पिंगल निपुण गुरु गुरउ श्री सकलकीर्त्ति निग्रंथ ।।

लेकिन राजस्थान में ग्रंथ भंडारों की जो अभी खोज हुई है उनमें हमें अभी-तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो सकी हैं।

संस्कृत की रचनायें

१. मूलाचारप्रदीप
२. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
३. आदिपुराण
४. उत्तरपुराण
५. शांतिनाथ चरित्र
६. वर्द्धमान चरित्र
६. मल्लिनाथ चरित्र
८. यशोधर चरित्र
९. धन्यकुमार चरित्र
१०. सुकुमाल चरित्र
११. सुदर्शन चरित्र
१२. सद्भाषितावलि
१३. पार्श्वनाथ चरित्र
१४. सिद्धान्तसार दीपक
१५. व्रतकथाकोश
१६. नेमिजिन चरित्र
१७. कर्मविपाक
१८. तत्वार्थसार दीपक
१९. आगमसार
२०. परमात्मराज स्तोत्र
२१. पुराण संग्रह
२२. सारचतुर्विंशतिका
२३. श्रीपाल चरित्र
२४. जम्बूस्वामी चरित्र
२५. द्वादशानुप्रेक्षा

पूजा ग्रंथ

२६. अष्टाह्निकापूजा
२७. सोलहकारणपूजा
२८. गणधरवलयपूजा

राजस्थानी कृतियां

१. आराधना प्रतिबोधसार
२. नेमीश्वर गीत
३. मुक्तावलि गीत
४. णमोकारफल गीत
५. सोलह कारण रास
६. सारसीखामणिरास
७. शान्तिनाथ फागु

उक्त कृतियों के अतिरिक्त अभी और भी रचनाएं हो सकती हैं जिनकी अभी खोज होना बाकी है। भ० सकलकीर्त्ति की संस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा में भी कोई बड़ी रचना मिलनी चाहिए; क्योंकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र० जिनदास ने इन्हीं की प्रेरणा एवं उपदेश से राजस्थानी भाषा में ५० से भी अधिक रचनाएँ निबद्ध की थी। अकेले इन्हीं के साहित्य पर एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। अब यहां भ० सकलकीर्त्ति द्वारा विरचित कुछ ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है।

१. आदिपुराण—इस पुराण में भगवान आदिनाथ, भरत, बाहुबलि, सुलोचना, जयकीर्त्ति आदि महापुरुषों के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुराण सर्गों में विभक्त है और इसमें २० सर्ग हैं। पुराण की श्लोक सं० ४६२८ श्लोक प्रमाण है। वर्णन शैली सुन्दर एवं सरस है। रचना का दूसरा नाम 'वृषभ नाथ चरित्र भी है।

२. उत्तरपुराण—इसमें २३ तीर्थंकरों के जीवन का वर्णन है एवं साथ में चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका—महापुरुषों के जीवन का भी वर्णन है। इसमें १५ अधिकार हैं। उत्तर पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

३. कर्मविपाक—यह कृति संस्कृत गद्य में है। इसमें आठ कर्मों के तथा उनके १४८ भेदों का वर्णन है। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध एवं अनुभाग बंध

की अपेक्षा से कर्मों के बंधका वर्णन है। वर्णन सुन्दर एवं बोधगम्य है। यह ग्रन्थ ५४७ श्लोक संख्या प्रमाण है रचना अभीतक अप्रकाशित है।

४. तत्वार्थसार दीपक—सकलकीर्त्ति ने अपनी इस कृति को अध्यात्म महाग्रन्थ कहा है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध संवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सात तत्वों का वर्णन १२ अध्यायों में निम्न प्रकार विभक्त है।

प्रथम सात अध्याय तक जीव एवं उसकी विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन है शेष ८ से १२ वें अध्याय में अजीव, आस्रव, बन्ध संवर, निर्जरा, मोक्ष का क्रमशः वर्णन है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

५. धन्यकुमार चरित्र—यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें सेठ धन्यकुमार के पावन जीवन का यशोगान किया गया है। पूरी कथा सात अधिकारों में समाप्त होती है। धन्यकुमार का सम्पूर्ण जीवन अनेक कुतुहलों एवं विशेषताओं से ओतप्रोत है। एक बार कथा प्रारम्भ करने के पश्चात् पूरी पढे विना उसे छोड़ने को मन नहीं कहता। भाषा सरल एवं सुन्दर है।

६. नेमिजिन चरित्र—नेमिजिन चरित्र का दूसरा नाम हरिवंशपुराण भी है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे जिन्होंने कृष्ण युग में अवतार लिया था। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। अहिंसा में दृढ विश्वास होने के कारण तोरण द्वार पर पहुँचकर एक स्थान पर एकत्रित जीवों को वध के लिये लाया हुआ जानकर विवाह के स्थान पर दीक्षा ग्रहण करली थी तथा राजुल जैसी अनुपम सुन्दर राजकुमारी को त्यागने में जरा भी विचार नहीं किया। इस प्रकार इसमें भगवान नेमिनाथ एवं श्री कृष्ण के जीवन एवं उनके पूर्व भवों में वर्णन हैं। कृति की भाषा काव्यमय एवं प्रवाहयुक्त है। इसकी संवत् १५७१ में लिखित एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में संग्रहीत है।

७. मल्लिनाथ चरित्र—२० वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन पर यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य है जिसमें ७ सर्ग हैं

८. पार्श्वनाथ चरित्र—इसमें २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह एक २३ सर्ग वाला सुन्दर काव्य है। मंगलाचरण, के पश्चात् कुन्दकुन्द, अकलंक, समंतभद्र, जिनसेन आदि आचार्यों को स्मरण किया गया है।

वायुभूति एवं मरुभूति ये दोनों सगे भाई थे लेकिन शुभ एवं अशुभ कर्मों के चक्कर से प्रत्येक भव में एक का किस तरह उत्थान होता रहता है और दूसरे का घोर पतन—इस कथा को इस काव्य में अति सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है। वायुभूति अन्त में पार्श्वनाथ बनकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं तथा जगद्पूज्य बन जाते हैं। भाषा सीधी, सरल एवं अलंकारमयी है।

९. **सुदर्शन चरित्र**—इस प्रबन्ध काव्य में सेठ सुदर्शन के जीवन का वर्णन किया गया है जो आठ परिच्छेदों में पूर्ण होता है। काव्य की भाषा सुन्दर एवं प्रभावयुक्त है।

१०. **सुकुमाल चरित्र**—यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य हैं जिसमें मुनि सकुमाल के जीवन का पूर्व भव सहित वर्णन किया गया है। पूर्व भव में हुआ वैर भाव किस प्रकार अगले जीवन में भी चलता रहता है इसका वर्णन इस काव्य में सुन्दर रीति से हुआ है। इसमें सुकुमाल के वैभवपूर्ण जीवन एवं मुनि अवस्था की घोर तपस्या का अति सुन्दर एवं रोमान्चकारी वर्णन मिलता है। पूरे काव्य में ९ सर्ग हैं।

११. **मूलाचार प्रदीप**—यह आचारशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमें जैन साधु के जीवन में कौन २ सी क्रियाओं की साधना आवश्यक है-इन क्रियाओं का स्वरूप एवं उनके भेद प्रभेदों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमें १२ अधिकार हैं जिनमें २८ मूलगुण,[1] पंचाचार,[2] दशलक्षणधर्म,[3] बारह अनुप्रेक्षा[4] एवं बारह तप[5] आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

१२. **सिद्धान्तसार दीपक**—यह करणानुयोग का ग्रन्थ है-इसमें उर्द्ध लोक, मध्यलोक एवं पाताल लोक एवं उनमें रहने वाले देवों मनुष्यों और तिर्यंचों और नारकियों का विस्तृत वर्णन है। इसमें जैन सिद्धान्तानुसार सारे विश्व का भूगौलिक एवं खगौलिक वर्णन आ जाता है। इसका रचना काल सं० १४८१ है रचना स्थान है—बडाली नगर। प्रेरक थे इसके ब्र० जिनदास।

---

२८ मूलगुण—पंच महाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, पंचेन्द्रिय निरोध, षटावश्यक, केशलोंच, अचेलक, अस्नान, दंतअधोवन।

पंचाचार—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप एवं वीर्य।

दशलक्षण धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य एवं ब्रह्मचर्य।

बारह अनुप्रेक्षा—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधदुर्लभ एवं धर्म।

बारह तप—अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान।

जैन सिद्धान्त की जानकारी के लिए यह बड़ा उपयोगी है। ग्रन्थ १६ सर्गों में है।

१३. वर्द्धमान चरित्र—इस काव्य में अन्तिम तीर्थकर महावीर वर्द्धमान के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। प्रथम ६ सर्गों में महावीर के पूर्व भवों का एवं शेष १३ अधिकारों में गर्भ कल्याणक से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विभिन्न लोकोत्तर घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। भाषा सरल किन्तु काव्य मय है। वर्णन शैली अच्छी है। कवि जिस किसी वर्णन को जब प्रारम्भ करता है तो वह फिर उसी में मस्त हो जाता है। रचना संभवतः अभी तक अप्रकाशित है।

१४. यशोधर चरित्र—राजा यशोधर का जीवन जैन समाज में बहुत प्रिय रहा है। इसलिये इस पर विभिन्न भाषाओं में कितनी ही कृतियां मिलती हैं। सकल कीर्त्ति की यह कृति संस्कृत भाषा की सुन्दर रचना है। इसमें आठ सर्ग हैं। इसे हम एक प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं।

१५. सद्भाषितावलि—यह एक छोटासा सुभाषित ग्रन्थ है जिसमें धर्म, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, इन्द्रियजय, स्त्री सहवास, कामसेवन, निर्ग्रन्थ सेवा, तप, त्याग, राग, द्वेष, लोभ, आदि विभिन्न विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भाषा सरल एवं मधुर है। पद्यों की संख्या ३८९ है। यहां उदाहरणार्थ तीन पद दिये जा रहे हैं—

सर्वेषु जीवेषु दया कुरुत्वं, सत्यं वचो ब्रूहि धनं परेषां।
चाब्रह्मसेवा त्यज सर्वकालं, परिग्रहं मुंच कुयोनिबीजं॥

× × × ×

यमदमशमजातं सर्वकल्याणबीजं।
सुगति-गमन-हेतुं तीर्थनाथैः प्रणीतं।

भवजलनिधिपोतं सारपाथेयमुच्चै--
स्त्यज सकलविकारं धर्म आराधयत्वं॥

(३) मायां करोति यो मूढ़ इन्द्रयादिकसेवनं।
गुप्तपापं स्वयं तस्य व्यक्तं भवति कुष्ठवत॥

१६. श्रीपाल चरित्र—यह सकलकीर्त्ति का एक काव्य ग्रन्थ है जिसमें ७ परिच्छेद हैं। कोटीभट श्रीपाल का जीवन अनेक विशेषताओं से भरा पड़ा है। राजा से कुष्टी होना, समुद्र में गिरना, सूली पर चढना आदि कितनी हीं घटनाए उसके जीवन में एक के वाद दूसरी आती हैं जिससे उनका सारा जीवन नाटकीय

बन जाता है। सकलकीर्त्ति ने इसे बड़े सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया है। इस चरित्र की रचना कर्मफल सिद्धान्त को पुरुपार्थ से अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने के लिये की गई है। मानव का ही क्या विश्व के सभी जीवधारियों का सारा व्यवहार उसके द्वारा उपार्जित पाप पुण्य पर आधारित है। उसके सामने पुरुषार्थ कुछ भी नहीं कर सकता। काव्य पठनीय है।

१७. **शान्तिनाथ चरित्र**—शान्तिनाथ १६ वें तीर्थंकर थे। तीर्थंकर के साथ २ वे कामदेव एवं चक्रवर्ती भी थे। उनके जीवन की विशेषताएं वतलाने के लिये इस काव्य की रचना की गयी है। काव्य में १६ अधिकार हैं तथा ३४७५ श्लोक संख्या प्रमाण है। इस काव्य को महाकाव्य की संज्ञा मिल सकती है। भाषा अलंकारिक एवं वर्णन प्रभावमय है। प्रारम्भ में कवि ने शृंगार-रस से ओत प्रोत काव्य की रचना क्यों नहीं करनी चाहिए—इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। काव्य सुन्दर एवं पठनीय है।

१८. **प्रश्नोत्तर श्रावकाचार**—इस कृति में श्रावकों के आचार-धर्म का वर्णन है। श्रावकाचार २४ परिच्छेदों में विभक्त है, जिसमें आचार शास्त्र पर विस्तृत विवेचन किया गया है। भट्टारक सकलकीर्त्ति स्वयं मुनि भी थे–इसलिए उनसे श्रद्धालु भक्त आचार-धर्म के विषय में विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत करते होंगे–इसलिए उन सबके समाधान के लिए कवि ने इस ग्रन्थ निर्माण ही किया गया। भाषा एवं शैली की दृष्टि से रचना सुन्दर एवं सुरक्षित है। कृति में रचनाकाल एवं रचनास्थान नहीं दिया गया है।

१९. **पुराणसार संग्रहः**—प्रस्तुत पुराण संग्रह में ६ तीर्थंकरों के चरित्रों का संग्रह है और ये तीर्थंकर हैं–आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर-वर्द्धमान। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से 'पुराणसार संग्रह' प्रकाशित हो चुका है। प्रत्येक तीर्थंकर का चरित अलग २ सर्गों में विभक्त हैं जो निम्न प्रकार हैं

आदिनाथ चरित	५ सर्ग
चन्द्रप्रभ चरित	१ सर्ग
शान्तिनाथ चरित	६ सर्ग
नेमिनाथ चरित	५ सर्ग
पार्श्वनाथ चरित	५ सर्ग
महावीर चरित	५ सर्ग

२०. **व्रतकथाकोषः**—'व्रतकथाकोष' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें विभिन्न व्रतों पर आधारित

कथाओं का संग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नहीं होने से अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका कि भट्टारक सकलकीर्ति ने कितनी व्रत कथाएं लिखी थीं।

२१. **परमात्मराज स्तोत्रः**—यह एक लघु स्तोत्र है, जिसमें १६ पद्य हैं। स्तोत्र सुन्दर एवं भावपूर्ण है। इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

उक्त संस्कृत कृतियों के अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अष्टाह्निका पूजा, सोलहकारणपूजा, गणधरवलय पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एवं सारचतुर्विंशतिका आदि और कृतियां हैं जो राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। ये सभी कृतियां जैन समाज में लोकप्रिय रही हैं तथा उनका पठन-पाठन भी खूब रहा है।

भ० सकलकीर्त्ति की उक्त संस्कृत रचनाओं में कवि का पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता है। उनके काव्यों में उसी तरह की शैली, अलंकार, रस एवं छन्दों की परियोजना उपलब्ध होती हैं जो अन्य भारतीय संस्कृत काव्यों में मिलती है। उनके चरित काव्यों के पढ़ने से अच्छा रसास्वादन मिलता है। चरित काव्यों के नायक त्रेसठशलाका के लोकोत्तर महापुरुष हैं जो अतिशय पुण्यवान् हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन अत्यधिक पावन है। सभी काव्य शान्त रसपर्यवसानी हैं।

काव्य ज्ञान के समान भ० सकलकीर्त्ति जैन सिद्धान्त के महान् वेत्ता थे। उनका मूलाचार प्रदीप, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, सिद्धान्तसार दीपक एवं तत्वार्थ-सार दीपक तथा कर्मविपाक जैसी रचनाएँ उनके अगाध ज्ञान के परिचायक हैं। इनमें जैन सिद्धान्त, आचार शास्त्र एवं तत्वचर्चा के उन गूढ़ रहस्यों का निचोड़ है जो एक महान् विद्वान् अपनी रचनाओं में भर सकता है।

इसी तरह 'सद्भाषितावलि' उनके सर्वांग ज्ञान का प्रतीक है-जिसमें सकल कीर्ति ने जगत के प्राणियों को सुन्दर शिक्षायें भी प्रदान की हैं, जिससे वे अपना आत्म-कल्याण भी करने की ओर अग्रसर हो सकें। वास्तव में वे सभी विषयों के पारगामी विद्वान् थे-ऐसे सन्त विद्वान् को पाकर कौन देश गौरवान्वित नहीं होगा।

राजस्थानी रचनाएं

सकलकीर्त्ति ने हिन्दी में बहुत ही कम रचना निबद्ध की है। इसका प्रमुख कारण संभवतः इनका संस्कृत भाषा की ओर अत्यधिक प्रेम था। इसके अतिरिक्त जो भी इनकी हिन्दी रचनाएं मिली है वे सभी लघु रचनाएं हैं जो केवल भाषा अध्ययन की दृष्टि से ही उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। सकलकीर्त्ति का अधिकांश

जीवन राजस्थान में व्यतीत हुआ था इसलिए इनकी रचनाओं में राजस्थानी भाषा की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

१. णमोकार फल गीत—यह इनकी प्रथम हिन्दी रचना है। इसमें णमोकार मंत्र का महात्म्य एवं उसके फल का वर्णन है। रचना कोई विशेष बड़ी नहीं है केवल १५ पद्यों में ही वर्णित विषय पूरा हो जाता है। कवि ने उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि णमोकार मंत्र का स्मरण करने से अनेक विघ्नों को टाला जा सकता है। जिन पुरुषों के इस मंत्र का स्मरण करने से विघ्न दूर हुये हैं उनके नाम भी गिनाये है। तथा उनमें धरणेंद्र, पद्मावती, अंजन-चोर, सेठ सुदर्शन एवं चारुदत्त उल्लेखनीय हैं। कवि कहता है—

सर्व जुगल तापसि हण्यो पार्श्वनाथ जिनेन्द्र।
णमोकार फल लहीहुउ पंथियडारे पद्मावती धरणेंद्र ॥
चोर अंजन सूली धर्यो, श्रेष्ठि दियो णमोकार।
देवलोक जाइ करी, पंथियडारे सुख भोगवे अपार।
चारुदत्त श्रेष्ठि दियो धाला ने णमोकार।
देव भवनि देवज हुहो, सुखन विलासई पार ॥
ग्रह डाकिनी शाकिणी फणी, व्याधि वह्नि जलराशि।
सकल बंधन तूटए पंथिय डारे विघन सवे जावे नाशि ॥

कवि अन्त में इस रचना को इस प्रकार समाप्त करता है:—

चउवीसी अमंत्र हुई, महापंथ अनादि
सकलकीरति गुरु इम कहे,
पंथियडारे कोइ न जाणइ
आदि जीवड लारे भव सागरि एह नाव।

२. आराधना प्रतिबोध सार यह इनकी दूसरी हिन्दी रचना है। प्राकृत भाषा में निबद्ध आराधना सार का कवि ने भाव मात्र लिखने का प्रयत्न किया है। इसमें सब मिलाकर ५५ पद्य हैं। प्रारम्भ में कवि ने णमोकार मंत्र की प्रशंसा की है तत्पश्चात संयम को जीवन में उतारने के लिए आग्रह किया है। संसार को क्षण भंगुर बताते हुए सम्राट भरत, बाहुबलि, पांडव, रामचन्द्र, सुग्रीव, सुकुमाल, श्रीपाल आदि महापुरुषों के जीवन से शिक्षा लेने का उपदेश दिया है। इस प्रकार आगे तीर्थ क्षेत्रों का उल्लेख करते हुए मनुष्य को अणुव्रत आदि पालने के लिए कहा गया है। इन

सबका संक्षिप्त वर्णन है। रचना सुन्दर एवं सुपाठ्य है। रचना के कुछ सुन्दर पद्यों का रसास्वादन करने के लिए यहां दिया जाता है—

तप प्रायश्चित व्रत करि शोघ, मन वचन काया निरोधि।
तु क्रोध माया मद छांडि, आपणपु सयलइ मांडि।।
गया जिणवर जगि चउवीस, नहिं रहि आवार चकीस।
गया वलिभद्र, न वर वीर, नव नारायण गया धीर।।
गया भरतेस देइ दांन, जिन शासन थापिय मांन।
गयो बाहुवलि जगमाल, जिणें हइ न राख्यु साल।।
गया रामचन्द्र रणि रंगि, जिण सांचु जस अभंग।
गयो कुंभकरण जगिसार, जिणें लियो तु महाव्रत भार।।

× × × ×

जे जात्रा करि जग मांहि, संभारै ते मन मांहि।
गिरनारी गयु तु धीर, संभारिह वडावीर।।
पावा गिरि पुन्य भंडार, संभारैहवडां सार।
तारण तीरथ होइ, संभारह वड़ा जोइ।।
हवेइ पांचमो व्रत प्रतिपालि, तू परिग्रह दूरिय टालि।
हो धन कंचन मांह मोलिह, सतोवीइं मांह समेलिह।।
हवई चहुँगति फेरो टालि, मन जाति चहुं दिशि बार।
हो नरगि दुःखन विसार, तेह केता कहूं अविचार।।

× × × ×

अन्त में कवि ने रचना को इस प्रकार समाप्त किया है—

जे भणई सुणइं नर नारि, ते जाइं भवनेइ पारि।
श्री सकलकीर्ति कह्युं विचार, आराधना प्रतिबोधसार।।

३. सारसीखामणिरास—सारसीखामणिरास राजस्थानी भाषा की लघु किन्तु सुन्दर कृति है। इसमें प्राणी मात्र के लिये शिक्षाप्रद संदेश दिये गये हैं। रास में ४ ढालें तथा तीन वस्तुवंध छन्द हैं। इसकी एक प्रति नैणवां (राजस्थान) के दिगम्बर मंदिर बघेरवालों के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत एक गुटके में लिपिबद्ध है। गुटका की प्रतिलिपि संवत् १६४४ वैशाख सुदी १५ को समाप्त हुईथी। इसी गुटके में सोमकीर्त्ति,

ब्रह्म यशोधर आदि कितने ही प्राचीन सन्तों के पाठों का संग्रह है। लिपि स्थान रणथम्भोर है जो उस समय भारत के प्रसिद्ध दुर्गों में से एक माना जाता था। रास पांच पत्रों में पूर्ण होता है। सर्व प्रथम कवि ने कहा कि "यह सुंदर देह बिना बुद्धि के बेकार है इसलिये सदैव सत्साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। जीवन को संयमित बनाना चाहिए तथा अन्ध विश्वासों में कभी नहीं पड़ना चाहिए।" जीव दया की महत्ता को कवि ने निम्न शब्दों में वर्णन की है।

जीव दया दृढ पालीइए, मन कोमल कीजि।
आप सरीखा जीव सवे, मन मांहि धरीजइ ॥

असत्य वचन कभी नहीं बोलना चाहिए और न कर्कश तथा मर्मभेदी शब्द जिनसे दूसरों के हृदय में ठेस पहुंचे। किसी को पुण्य कार्य करते हुए नहीं रोकना चाहिए तथा दूसरों के अवगुणों को ढक कर गुणों को प्रकट करना चाहिए।

झूठा वचन न बोलीइए, ए करकस परिहए।
मरम म बोलु किहि तथा, ए चाडी मन करू॥
धर्म करता न वारीइए, नवि परनंदीजि।
परगुण ढांकी आप तणा, गुण नवि बोलीजइ ॥

सदैव त्याग को जीवन में अपनाना चाहिए। आहारदान, औषधदान, साहित्यदान, एवं अभयदान आदि के रूप में कुछ न कुछ देते रहना चाहिए। जीवन इसी से निखरता है एवं उसमें परोपकार करते रहने की भावना उत्पन्न होती है।

चौथी ढाल में कवि ने अपनी सभी शिक्षाओं का सार दिया है जो निम्न प्रकार है—

योवन रे कुटुंब हरिवि, लक्ष्मी चंचल जाणीइए।
जीव हरे सरण न कोइ, धर्म विना सोई आजीइए ॥
संसार रे काल अनादि, जीव आगि घणु फिरयुए।
एकलू रे आवि जाइ, करम आगे गलि थरयुए ॥
काय थी रे जु जु होइ कुटुंब, परिवारि वेगलु ए।
खिमा रे खडग धरेवि, क्रोध विरी संघारीइए ॥
आर्द्दव रे पालीइ सार, मान पापी परू टालीइए।
सरलू रे चित्त करेवि, माया सवि दूरि करइए ॥
संतोष रे आयुध लेवि, लोभ विरी सिंघारीइए।
वेराग रे पालीइ सार, राग टालू सकलकीर्त्ति कहिए।
जे भणि ए रासज सार, सीखामणि पढते लहिए ॥

रचना काल—सकलकीर्त्ति ने इस रास की रचना कब की थी इसका कोई उल्लेख नहीं किया है लेकिन कवि का साहित्यिक जीवन मुख्यतः जैसा कि ऊपर लिखा गया है वीस वर्ष तक (सं० १४७९ से सं १४९९) रहा था इसलिये उसी के मध्य इस रचना का निर्माण हुआ होगा। अतः इसे १५वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की कृति मानना चाहिए।

भाषा—रचना की भाषा जैसा कि पहिले कहा जा चुका है राजस्थानी है लेकिन कहीं २ गुजराती शब्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने अपनी इस रचना में मूल-क्रिया के अन्त में 'जि' एवं जइ शब्दों को जोड़कर उनका प्रयोग किया है जैसे पामजि, प्रणमीज, तरीजि, हारीजि, छूटीजि, कीजि, धरीजई, वोलीजइ, करीजइ कीजइ, लहीजइ आदि। चौथी ढाल में और इससे पहिले के छन्दों में भी क्रियाओं के आगे 'ए' लगाकर उनका प्रयोग किया है।

४. मुक्तावलि गीत

यह एक लघु गीत है जिसमें मुक्तावलि व्रत की कथा एवं उसके महात्म्य का वर्णन है। रचना की भाषा राजस्थानी है जिसमें गुजराती भाषा के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। रचना साधारण है तथा वह केवल १५ पद्यों में पूर्ण होती है। एक उदाहरण देखिए—

नाभिपुत्र जिनवर प्रणमीने, मुक्तावलि गाइये
मुगति पगनि जिनवर भासि, व्रत उपवास करीजे
सखी सुण मुक्तावली व्रत कीजे।
तप पणि अति निर्मल जानि कर्म मल धोईजे
सखी सुण मुक्तावलि व्रत कीजे।

× × × × ×

नर नारी मुगतावली करसे तेहने सुख्य आधार
श्री सकलकीरति भावे मुगति लहिये भाव भोगने सुविशाल ॥
सखी सुण मुगतावली व्रत कीजै ॥१२॥

५. सोलहकारण रास—यह कवि की एक कथात्मक कृति है जिसमें सोलहकारण व्रत के महात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। भाषा की दृष्टि से यह रास अच्छी रचना है। कृति के अन्त में सकलकीर्त्ति ने अपने आपको मुनि विशेषण से सम्बोधित किया है इससे ज्ञात होता है कि यह उनकी प्रारम्भिक कृति होगी। रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

एक चित्ति जे व्रत करइ, नर अहवा नारी।
तीर्थंकर पद सो लहइ, जो समकित धारी।

सकलकीर्त्ति मुनि रासु कियउए सोलहकारण।
पढहि गुणहि जो सांभलहि तिन्ह सिव सुह कारण ।।

६. शान्तिनाथ फागु–इस कृति को खोज निकालने का श्रेय श्री कुन्दनलाल जैन को है। इस फागु काव्य में शान्तिनाथ तीर्थंकर का संक्षिप्त जीवन वर्णित है। हिन्दी के साथ कहीं २ प्राकृत गाथा एवं संस्कृत श्लोक भी प्रयुक्त हुए हैं। फागु की भाषा सरस एवं मनोहारी है। एक उदाहरण देखिये

रासु—नृप सुत रमणि गजगति रमणी तरूणी सम क्रीडंतरे।
वहु गुण सागर अवधि दिवाकर सुभकर निसि दिन पुण्य रे।
छंडिय मय सुख पालिय जिन दिख सनमुख आतम ध्यान रे।
अणसणविधना मूकीअ असुना आज्ञा जिनवर लेवि रे।

मूल्यांकन

'भट्टारक सकलकीर्ति' संस्कृत के आचार्य थे। उन्होंने जो इस भाषा में विविध विषयक कृतियां लिखीं, उनसे उनके अगाध ज्ञान का सहज ही पता चलता है। यद्यपि सकलकीर्त्ति ने लिखने के लिए ही कोई कृति लिखी हो—ऐसी वात नहीं है, किन्तु उनको अपने मौलिक विचारों से भी आप्लावित किया है। यदि उन्होंने पुराण विषयक कृतियों में आचार्य परम्परा द्वारा प्रवाहित विचारों को ही स्थान दिया है तो चरित काव्यों में अपने पौष्टिक ज्ञान का भी परिचय दिया है। वास्तव में इन काव्यों में भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों का अच्छी तरह दर्शन किया जा सकता है। जैन दर्शन की दार्शनिक, सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त आचार एवं चरित निर्माण, व्यापार, न्यायव्यवस्था, औद्योगिक प्रवृत्तियां, भोजन पान व्यवस्था, वस्त्र–परिधान प्रकृतिचर्चा, मनोरंजन आदि सामान्य विषयों की भी जहां कहीं चर्चा हुई है और कवि ने अपने विचारों के अनुसार उनके वर्णन का भी ध्यान रखा है। भगवान के स्तवन के रूप में जव कुछ अधिक नहीं लिखा जा सका तो उन्होंने पूजा के रूप में उनका यशोगान गाया—जो कवि की भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त होने का संकेत करता है। यहीं नहीं, उन्होंने इन पूजाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में 'अर्हत–भक्ति, के प्रति गहरी आस्था वनाये रखी और आगे आने वाली सन्तति के लिए 'अर्हत–भक्ति' का मार्ग खोल दिया।

सिद्धान्त, तत्वचर्चा एवं दर्शन के क्षेत्र में—सिद्धान्त सारदीपक, तत्वार्थसार, आगमसार, कर्मविपाक जैसी कृतियों के माध्यम से उन्होंने जनता को प्रभूत साहित्य

१. देखिये अनेकान्त वर्ष १९ किरण ४ पृष्ठ संख्या २८२

दिया। इन कृतियों में जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्धान्तों जैसे सात तत्व, नव पदार्थ, अष्टकर्म, पंच ज्ञान, गुणस्थान, मार्गणा आदि का अच्छा विवेचन हुआ है। उन्होंने साधुओं के लिए 'मूलाचार-प्रदीप' लिखा, तो गृहस्थों के लिए प्रश्नोत्तर के रूप में प्रश्नोत्तरोपासकाचार लिखकर जीवन को मर्यादित एवं अनुशासित करने का प्रयास किया। वास्तव में उन्होंने जिन २ मर्यादाओं का परिपालन जीवन में आवश्यक बताया वे उनके शिष्यों के जीवन में अच्छी तरह उतरी। क्योंकि वे स्वयं पहिले मुनि अवस्था में रहे थे। उसी रूप में उन्होंने अध्ययन किया और उसी रूप में कुछ वर्षो तक जन-जागरण के लिए स्थान-स्थान पर बिहार भी किया।

'व्रत कथा कोष' के माध्यम से इन्होंने श्रावकों के जीवन को नियमित एवं संयमित बनाने का प्रयास किया और उन्हें व्रत-पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी तरह स्वाध्याय के प्रति जन-जागृति पैदा करने के लिए उन्होंने पहिले तो आदिपुराण एवं उत्तरपुराण लिखा और फिर इन्हीं दो कृतियों को संक्षिप्त कर पुराणसारसंग्रह निबद्ध किया। किसी भी विषय को संक्षिप्त अथवा विस्तृत करने की कला उनको अच्छी तरह आती थी।

'भट्टारक सकलकीर्त्ति' ने यद्यपि हिन्दी में अधिक एवं बड़ी रचनाएँ नहीं लिखीं, लेकिन जो भी ७ कृतियां उनकी अब तक उपलब्ध हुई हैं, उनसे उनका साहित्यिक एवं भाषा शास्त्रीय ज्ञान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनका 'सारसीखामणिरास' एवं 'शान्तिनाथ फागु' हिन्दी की अच्छी कृतियां हैं। जिनमें विषय का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। नेमीश्वर गीत एवं मुक्तावलि गीत उनकी संगीत प्रधान रचना है। जिनका संगीत के माध्यम से जन साधारण को जाग्रत रखने का प्रमुख उद्देश्य था।

: ब्रह्म जिनदास :

'ब्रह्म जिनदास' १५ वीं शताब्दी के समर्थ विद्वान् थे। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा थी इसलिए इनका प्रत्येक वाक्य ही काव्य-रूप में निकलता था। ये 'भट्टारक सकलकीर्ति' के शिष्य एवं लघु भ्राता थे। ये योग्य गुरु के योग्य शिष्य थे।[1] साहित्य-सेवा ही इनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। यद्यपि संस्कृत एव राजस्थानी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था, लेकिन राजस्थानी से इन्हें विशेष अनुराग था। इसलिए इन्होंने ५० से भी अधिक रचनाएँ इसी भाषा में लिखीं। राजस्थानी को इन्होंने अपने साहित्यिक प्रचार का माध्यम बनाया। जनता को उसे पढ़ने, समझने एवं उसका प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। अपनी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ करवा कर इन्होंने राजस्थान एवं गुजरात के सैकड़ों ग्रन्थ-संग्रहालयों में विराजमान किया। यही कारण है कि आज भी इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ राजस्थान के प्रायः सभी भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। 'ब्रह्म-जिनदास' सदा अपने साहित्यिक धुन में मस्त रहते तथा अधिक से अधिक लिखकर अपने जीवन का पूर्ण सदुपयोग करते रहते थे।

'ब्रह्म जिनदास' की निश्चित जन्म-तिथि के सम्बन्ध मे इनकी रचनाओं के आधार पर कोई जानकारी नहीं मिलती। ये कब तक गृहस्थ रहे और कब साधु-जीवन धारण किया—इसकी सूचना भी अब तक खोज का विषय बनी हुई है। लेकिन ये 'भट्टारक सकलकीत्ति' के छोटे भाई थे, जिसका उल्लेख इन्होंने 'जम्बूस्वामी-चरित्र' को प्रशस्ति में निम्न प्रकार किया है;—

> भ्रातास्ति तस्य प्रथितः पृथिव्यां, सद् ब्रह्मचारी जिनदास नामा।
> तनोति तेन चरित्रं पवित्रं, जम्बूदिनामा मुनि सप्तमस्य ॥ २८ ॥

'हरिवंश पुराण' की प्रशस्ति में भी इन्होंने इसी तरह का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार है:—

> सद् ब्रह्मचारी गुरु पूर्वकोस्य, भ्राता गुणज्ञोस्ति विशुद्धचित्तः।
> जिनस भक्तो जिनदासनामा, कामारिजेता विदितो धरित्र्यां ॥ २९ ॥[2]

---

१. महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागर प्रमुख अपार।
आर्जिका क्षुल्लिका सयल संघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ॥

२. देखिये —प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ सं० ७१ (लेखक द्वारा सम्पादित)

'पं० परमानन्दजी शास्त्री' ने भी इन्हें भट्टारक सकलकीर्ति का कनिष्ठ भ्राता स्वीकार किया है। उनके अनुसार इनका जन्म सं० १४४३ के बाद होना चाहिए; क्योंकि इसी संवत् में भ० सकलकीर्ति का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम 'शोभा' एवं पिता का नाम 'कर्णसिंह' था। ये पाटण के रहने वाले तथा हूंबड़ जाति के श्रावक थे। घर के काफी समृद्ध थे। लेकिन भोग-विलास एवं धन-सम्पदा इन्हें साधु-जीवन धारण करने से न रोक सकी। और इन्होंने भी अपने भाई के मार्ग का अनुसरण किया। 'भ० सकलकीर्त्ति' ने इन्हीं के आग्रह से ही संवत् १४८१ में बड़ली नगर में 'मूलाचार प्रदीप' की रचना की थी।[1]

समय:—'ब्रह्म जिनदास' ने अपनी दो रचनाओं को छोड़कर शेष किसी भी रचना में समय नहीं दिया है। ये दो रचनाएँ 'रामराज्य रास' एवं 'हरिवंश पुराण' हैं। जिनमें संवत् क्रमशः १५०८ तथा १५२० दिया हुआ है। 'भट्टारक सकलकीर्त्ति' के कनिष्ट भ्राता होने के कारण इनका जन्म संवत् १४४५ से पूर्व तो सम्भव नहीं है। इसी तरह यदि हरिवंश पुराण को इनकी अन्तिम कृति मान ली जावे तो इनका समय संवत् १४४५ से संवत् १५२५ का माना जा सकता है।

शिष्य-परिवार:—ब्रह्मचारीजी की अगाध विद्वत्ता से सभी प्रभावित थे। वे स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और उन्हें संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में पारंगत किया करते थे। 'हरिवंश-पुराण' की एक प्रशस्ति[2] में उन्होंने मनोहर, मल्लिदास, गुणदास इन तीन शिष्यों के नामों का उल्लेख किया है। ये शिष्य स्वयं इनसे पढ़ते भी थे और दूसरों को भी पढ़ाते थे।[3] परमहंस रास में एक नेमिदास[4] का और उल्लेख किया है। उक्त शिष्यों के अतिरिक्त और भी अनेकों ने इनसे ज्ञान-दान लेकर अपने जीवन को उपकृत किया होगा।

---

१. संवत् चौदह सै इक्यासी भला, श्रावण मास वसन्त रे।
पूर्णिमा दिवसे पूरण कर्यो, मूलाचार महंत रे॥

२. ब्रह्म जिणदास भणे रुवड़ो, पढ़ता पुण्य अपार।
सिस्य मनोहर रुवड़ों मल्लिदास गुणदास॥

३. तिउ मुनिवर पाय प्रणमीनें कीयो दो-प रास सार।
ब्रह्म जिणदास भणे रुवड़ा, पढ़ता पुण्य अपार॥
शिष्य मनोहर रुयड़ा ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
पढ़ो पढ़ावो बहु भाव सों जिन होई सौख्य विकास॥

४. ब्रह्म जिनदास शिष्य निरमला नेमिदास सुविचार।
पढ़ई-पढ़ावो विस्तरो परमहंस भवतार ॥ ८ ॥

साहित्य-सेवा

'ब्रह्म जिनदास' का आत्म-साधना के अतिरिक्त अधिकांश समय साहित्य-सर्जन में व्यतीत होता था। सरस्वती का वरदहस्त इन पर था तथा अध्ययन इनका गहरा था। काव्य, चरित, पुराण, कथा, एवं रासो साहित्य से इन्हें बहुत रुचि थी और उसी के अनुसार वे काव्य रचना किया करते थे। इनके समय में 'रास-साहित्य' को सम्भवतः अच्छी प्रतिष्ठा थी। इसलिए जितनी अधिक संख्या में इन्होंने 'रासक-काव्य' लिखे हैं, उतनी संख्या में हिन्दी में शायद ही किसी ने लिखा हो। वास्तव में एक विद्वान् द्वारा इतने अधिक काव्य ग्रंथ लिखना साहित्यिक इतिहास की अनोखी घटना है। अपने ८० वर्ष के जीवन काल में ६० से अधिक कृतियां—'माँ भारती' को भेंट करना 'ब्र० जिनदास' की अपनी विशेषता है। आत्म-साधना के साथ ही इन्हें पठन-पाठन एवं साहित्य-प्रचार का कार्य भी करना पड़ता था। यही नहीं अपने गुरु 'सकलकीर्त्ति' एवं भुवनकीर्त्ति के साथ ये विहार भी करते थे। इतने पर भी इन्होंने जो साहित्य-सर्जना की—वह इनकी लगन एवं निष्ठा का परिचायक है। कवि की अब तक जितनी कृतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं उनके नाम इस प्रकार हैं:—

संस्कृत रचनाएं

(i) काव्य, पुराण एवं कथा-साहित्य :

१. जम्बूस्वामी चरित्र,
२. राम चरित्र (पद्म पुराण),
३. हरिवंश पुराण,
४. पुष्पांजलि व्रत कथा,

(ii) पूजा एवं विविध साहित्य :

१. जम्बूद्वीपपूजा,
२. सार्द्धद्वयद्वीपपूजा,
३. सप्तर्षि पूजा,
४. ज्येष्ठजिनवर पूजा,
५. सोलहकारण पूजा,
६. गुरु-पूजा,
७. अनन्तव्रत पूजा,
८. जलयात्रा विधि

राजस्थानी रचनाएं

इनकी अब तक ५० से भी अधिक इस भाषा की रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। इन रचनाओं को निम्न भागों में बांटा जा सकता है:—

१. पुराण साहित्य,
२. रासक साहित्य,
४. पूजा साहित्य,
५. स्फुट साहित्य,

३. गीत एवं स्तवन,

१. पुराण साहित्य :

१. आदिनाथ पुराण,
२. हरिवंश पुराण,

२. रासक साहित्य :

१. राम सीता रास,
२. यशोधर रास,
३. हनुमत रास,
४. नागकुमार रास,
५. परमहंस रास,
६. अजितनाथ रास,
७. होली रास,
८. धर्मपरीक्षा रास,
९. ज्येष्ठजिनवर रास,
१०. श्रेणिक रास,
११. समकित मिथ्यात्व रास,
१२. सुदर्शन रास,
१३. अम्बिका रास,
१४. नागश्री रास,
१५. श्रीपाल रास,
१६. जम्बूस्वामी रास,
१७. भद्रबाहु रास,
१८. कर्मविपाक रास,[1]
१९. सुकौशलस्वामी रास,[2]
२०. रोहिणी रास,[3]
२१. सोलहकारण रास,[4]
२२. दशलक्षण रास,
२३. अनन्तव्रत रास,
२४. वंकचूल रास,
२५. धन्यकुमार रास,[5]
२६. चारुदत्त प्रबन्ध रास,[6]
२७. पुष्पांजलि रास,
२८. धनपाल रास (दानकथा रास),
२९. भविष्यदत्त रास,
३०. जीवन्धर रास,[7]
३१. नेमीश्वर रास,
३२. करकण्डु रास,
३३. सुभौमचक्रवर्ती रास,[8]
३४. अठावीस मूलगुण रास,[9]

---

१. इस कृति की एक प्रति उदयपुर (राज०) के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।
२. इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर में संग्रहीत है।
३. इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर के संग्रह में है।
४. अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह में है।
५. इस रास की एक प्रति संभवनाथ दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह में है।
६. वही।
७. वही।
८. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ—पृष्ठ संख्या ३६७।
९. वही पृष्ठ संख्या ६०७।

३. गीत एवं स्तवन :

१. मिथ्यादुक्कड़ विनती,
२. बारहव्रत गीत,
३. जीवड़ा गीत,
४. जिरणन्द गीत,
५. आदिनाथ स्तवन,
६. आलोचना जयमाल,
७. स्फुट-विनती, गीत, चूनरी, धवल, गिरिनार धवल, आरती, निजामार्ग आदि।

४. पूजा साहित्य :

१. गुरु जयमाल,
२. शास्त्र पूजा,
३. सरस्वती पूजा,
४. गुरु पूजा,
५. जम्बूद्वीप पूजा,
६. निर्दोपसप्तमीव्रत पूजा,

५. स्फुट साहित्य :

१. रविव्रत कथा,
२. चौरासी जाति जयमाल,
३. भट्टारक विद्याधर कथा,
४. अष्टांग सम्यक्त्व कथा,
५. व्रत कथा कोश,
६. पञ्चपरमेष्ठि गुरण वर्णन,

अब यहां कवि की कुछ रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है—

१. जम्बूस्वामी चरित्र

यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित्र निबद्ध है। सम्पूर्ण काव्य ग्यारह सर्गों में विभक्त है। काव्य में वीर एवं शृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण है जिससे काव्य भाषा एवं शैली की दृष्टि से एक मोहक काव्य बन गया है। भाषा सरल एवं अर्थ मय है। काव्य में सुभाषितों का बाहुल्य है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जारहे हैं—

यत् किञ्चित् दुर्लभं वस्तु, जगत् यस्मिन् निरीक्षते।
तत्सर्वं धर्मतो नूनं, प्राप्यते क्षरणमात्रतः ॥८॥

× × ×

एकाकी जायते प्राणी, तथैकाकी विलीयते।
सुखदुःखमयैकाकी, भुंक्ते धर्मवशात् ध्रुवं ॥७२॥

× × ×

निंदा स्तुति समो धीमान्, जीविते मरणे तथा।
शृणोति शब्दं बधिरं, इव पश्यति……… ॥१७८॥

× × ×

मातंजातः सुपुत्रो हि, स्व भूषयति यत् कुलं।
शुभाचारादिना नूनं, वरं मन्ये धनैः किमु ॥७४॥

२. हरिवंश पुराण

यह कवि की संस्कृत भाषा में निबद्ध दूसरी बड़ी रचना है जिसमें ४० सर्ग हैं। श्रीकृष्ण एवं २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ हरिवंश में ही उत्पन्न हुये थे इसलिये उनका एवं प्रद्युम्न, पांडव, कौरवों का इस पुराण में वर्णन किया गया है। इसे जैन महाभारत कह सकते हैं। इसकी वर्णन शैली भी महाभारत के समान है किन्तु स्थान२ पर इसमें काव्यत्व के भी दर्शन होते हैं। महापुरुष श्री कृष्ण एवं भगवान नेमिनाथ का इसमें सम्पूर्ण जीवन वर्णित है और इन्हीं के जीवन प्रसंग में कौरव-पाण्डवों का अच्छा वर्णन मिलता है। राम कथा एवं श्री कृष्ण कथा को जैन आचार्यों ने जिस सुन्दरता एवं मानवीय आधार पर प्रस्तुत किया है उसे जैन पुराण एवं काव्यों में अच्छी तरह देखा जा सकता है। ब्रह्म जिनदास के हरिवंश पुराण का स्थान आचार्य जिनसेन द्वारा निबद्ध हरिवंश पुराण से वाद का है।

३. राम चरित्र

८३ सर्गों में विभक्त यह रचना जिनदास की सबसे बड़ी रचना है। इसकी श्लोक संख्या १५००० है। रविषेणाचार्य के पद्मपुराण के आधार पर की गई इस रचना का नाम पद्मपुराण (जैन रामायण) भी प्रसिद्ध है। इस काव्य में भगवान राम के पावन चरित्र का जिस सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है उससे कवि की विद्वत्ता एवं वर्णन चातुर्य्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। काव्य की भाषा सरल है एवं वह सुन्दर शैली में लिखा हुआ है।

हिन्दी रचनाएं

१. आदिनाथ पुराण

यह कवि की वड़ी रचनाओं में है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं वाहुवलि आदि महापुरुषों के जीवन का वर्णन है। साथ ही आदिनाथ के पूर्व भवों का, भोगभूमियों की सुख समृद्धि, कुलकरों की उत्पत्ति एवं उनके द्वारा विभिन्न समयों में आवश्यक निर्देशन, कर्मभूमियों का प्रारम्भ आदि का भी अच्छा वर्णन मिलता है। पुराण में गुजराती भाषा के शब्दों की वहुलता है। कवि ने ग्रंथ के प्रारम्भ में रचना संस्कृत के स्थान पर देश भाषा में क्यों की गई इसका सुन्दर उत्तर दिया है। उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार नारियल कठिन होने से वालक उसका स्वाद (विना छीले) नहीं जान सकता तथा दाख केला आदि का विना छीले ही अच्छी तरह से स्वाद लिया जा सकता है वही दशा देशी भाषा में निबद्ध काव्य की भी है—

भवियण भावें सुणो आज, रास कहो मनोहार।
आदिपुराण जोई करी, कवित करू मनोहार ॥१॥

वाल गोपाल जिम पढे गुणे, जांणे वहु भेद ।
जिन सासण गुण नीरमला, मिथ्यामत छेद ॥२॥
कठिन नारेल दीजे वालक हाथ, ते स्वाद न जांणे ।
छोल्यां केला द्राख दीजें, ते गुण वहु मांनें ॥३॥
तिम ए ग्रादपुराण सार, देस भाषा वखाणू ।
प्रगुणं गुण जिम विस्तरे, जिन सासन वखाणू ॥४॥

ब्रह्म जिनदास ने रचना में अपने गुरु सकलकीर्त्ति एवं मुनि भुवनकीर्त्ति का सादर उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीने, मुनी भवनकीरती अवतार ।
ब्रह्म जिनदास कहे नीर्मलो रास कीयो मे सार ॥

२. हरिवंश पुराण

इसका दूसरा नाम नेमिनाथ रास भी है। कवि ने पहिले जो संस्कृत में हरिवंश पुराण निवद्ध किया था उसी पुराण के कथानक को फिरसे उन्होंने राजस्थानी भाषा में और काव्य रूप में निवद्ध कर दिया। कवि के समय में जन साधारण की जो प्रान्तीय भाषाओं में रुचि वढ रही थी उसी के परिणाम-स्वरूप यह रचना हमारे सामने आयी। यह कवि की वड़ी रचनाओं में से है। इसकी एक प्रति संवत् १६५३ में लिखी हुई उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इस प्रति में ११½"×७½" आकार वाले २३० पत्र हैं। हरिवंश पुराण की रचना संवत् १५२० में समाप्त हुई थी और संभवतः यह उनकी अन्तिम रचना मालूम देती है।

संवत १५ (पन्द्रह) वीसोत्तरा विशाखा नक्षत्र विशाल ।
शुक्ल पक्ष चौदसि दिना रास कियो गुणमाल ॥

रचना सुन्दर है और इसकी भाषा को हम राजस्थानी भाषा कह सकते हैं। इसमें कवि ने परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है और इसमें निखरे हुये काव्य के दर्शन होते हैं। यद्यपि रचना का नाम पुराण दिया हुआ है लेकिन इसे महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है।

३. राम सीता रास

राम के जीवन पर राजस्थानी भाषा को संभवतः यह सबसे वड़ी रचना है जिसे दूसरे रूप में रामायण कहा जा सकता है। कवि ने जो राम चरित्र संस्कृत में लिखा था उसी का कथानक इस काव्य में है। लेकिन यह कवि की स्वतंत्र रचना है संस्कृत कृति का अनुवाद मात्र नहीं है। संवत् १७२८ में देउल ग्राम में

लिखी हुई इस काव्य की एक प्रति डूंगरपुर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इस प्रति में १२"×६" आकार वाले ४०५ पत्र हैं। इसका रचना काल संवत् १५०८ मंगसिर सुदी १४ (सन् १४५१) है।

संवत् पन्नर अठोतरा मांगसिर मास विशाल।
शुक्ल पक्ष चउदिसि दिनी रास कियो गुणमाल ।।६।।

४. यशोधर रास

इसमें राजा यशोधर के जीवन का वर्णन है। यह संभवतः कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से है क्योंकि अन्य रचनाओं की तरह इसमें भुवनकीर्त्ति के नाम का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। रचना की भाषा एवं शैली दोनों ही अच्छी है।

५. हनुमत रास

हनुमान का जीवन जैन समाज में बहुत ही प्रिय रहा है। इनकी गणना १६३ पुण्य पुरुषों में की जाती है। हनुमत रास एक लघु काव्य है जिसमें उसके जीवन की मुख्य २ घटनाओं का वर्णन दिया हुआ है। यह एक प्रकार से सतसई है जिसमें ७२७ दोहा चौपई वस्तुबंध आदि हैं। रचना सुंदर है। एक उदाहरण देखिये—

अमितिगति मुनिवर तणु नाम, जाणे उग्यु बीजु भान।
तेजवंत रुधिवंत गुणमाल, जीता इंद्री मयण मोह जाल ।।
क्रोध मान मायानि लोभ, जीता रागद्वेष नहि क्षोभ।
सोममूरति स्वामी जिणचंद, दीठिउ ऊपजि परमानन्द ।।
अंजना सुंदरी मनु ऊपनु भाव, मुनिवर वर त्रिभुवनराय।
नमोस्त करी मुनि लागी पाय, धन सफल जन्म हवुं काय ।।

आपकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेवाल दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है।

६. नागकुमार रास

इस रास में पञ्चमी कथा का वर्णन है। इस रास की एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। प्रति में १०॥"×४॥" आकार वाले ३६ पत्र हैं। यह संवत् १८२६ की प्रतिलिपि की हुई है। रास सीधी सादी भाषा में लिखा हुआ है। एक उदाहरण देखिये—

जंबू द्वीप मझारि सार, भरत क्षेत्र सुजाणो।
मगध देश अति रूवड़ो, कनकपुर बखाणो ।।१।।
जयंधर तिणे नयर राउ, राज करे उतंग।
धरम करे जिणवर तणो, पाले समकित अंग ।।२।।

विशाल नेत्रा तस राणी जाणि, रूप तणो निधान ।
मद करे ते अति घणो, वांध वहुमान ।।३।।

७. परमहंस रास

यह एक आध्यात्मिक रूपक रास है जिसमें परमहंस राजा नायक है तथा चेतना नाम राणी नायिका है । माया रानी के वश होकर वह अपने शुद्ध स्वरूप को भूल जाता है और काया नगरी में रहने लगता है । मन उसका मंत्री है जिसके प्रवृत्ति एवं निवृत्ति यह दो स्त्रियां है । मोह प्रतिनायक है । रचना वड़ी सुन्दर है । इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल मंदिर के शास्त्र भंडार में संग्रहीत है । इसके भाव एवं भाषा का एक उदाहरण देखिये—

पाषाण मांहि सोनो जिम होई, गोरस मांहि जिमि घृत होई ।
तिल सारे तैल वसे जिमि संग, तिम शरीर आत्मा अनंग ।।

काष्ठ मांहि आगिनि जिमि होई, कुसुम परिमल मांहि नेह ।
नीर जलद सीत जिमि नीर, तेम आत्मा वसै जगत सरीर ।।

८. अजितनाथ रास

इस रास में दूसरे तीर्थंकर अजित नाथ का जीवन वर्णित है । रचना लघु है किन्तु सुन्दर एवं मधुर है । इसकी कितनी ही प्रतियाँ उदयपुर, ऋषभदेव डूंगरपुर आदि स्थानों के शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत है । रास की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

श्री सकलकीर्त्ति गुरु प्रमणमोने, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
रास कियो में निरमलो, अजित जिणेसर सार ।
पढइ गुणेइ जे सांभले, मनि वरि अविचल भाव ।
तेह घर रिधि घर तणो, पाये शिवपुर ठाम ।
जिण सासण अति निरमलो, भवि भञि देउ मह सार ।।
ब्रह्म जिणदास इम वीनवे, श्री जिणवर मुगति दातार ।।

९. आरती छंद

कवि ने छोटी वड़ी रचनाओं के अतिरिक्त कुछ सुन्दर पद्य भी लिखे हैं । इस छंद में इन्होंने भगवान के आगे जब देव एवं देवियाँ नृत्य करती हुई स्तवन करती हैं उसका सुन्दर दृष्य अपने शब्दों में चित्रित किया है । एक उदाहरण देखिये—

ना संति कलिमल मंत्र निरमल, इंद्र आरती उतारए ।
जिणवरह स्वामी मुगतिगामी, दुख सयल निवारए ।।४।।

वाजंत ढोल निसाण दरवडि, झल्लरि नाद ते रण झणं ।
कंसाल मुंगल भेरी मद्दल, ताल तवलि ते अति घणं ।।
इणी परिहि नादइं गहिर सादिइं, इंद्र आरती उतारए।।
गावंत धवल गीत मंगल, राग सुरस मनोहरं ।
नाचंति कामिणि गजह गामिणि, हाव भाव सोहे वरं ।
सुगंध परिमल भाव निरमल, इंद्र आरती उतारए ।।

१०. होली रास

इस रास में जैन मान्यतानुसार होली की कथा दी गई है कथा रोचक है। रास में १४८ पद्य हैं जो दूहा चौपाई एवं वस्तुबंध छंद में विभक्त हैं।

इणि परि तिहां थी काठीआं, नयर मांहि था तेह जगयां ।
पापी जीवनि नहीं किहां सुख, अहिलोक परलोक पांमि दुःख ।
वन माहि गयां ते पाप, पाम्यां अति दुख संताप ।
धर्म पाखि रलि सहू कोइ, सीयल संयम विण मूलौ भमि लोइ

इस ग्रंथ की एक प्रति जयपुर के बड़े तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है। रास की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

प्रजापति तेणी नयरीय राय, प्रजावती तस रांणी ।
गज तुरंगम रथ अपार, दीइ लषमी वहू मांणि ।।७।।
वसंत नाम परधांन जांणि, वसुमती तस रांणी ।
विष्णु भट्ट परोहित जांणि, सोमश्री तस नारी।।८।।

× × × × ×

एक भगत करि रुपडांए, अज्ञात कष्ट वखाणतु ।
एकादशी उपवास करिए, दीतवार सोमवारि जांणी तु ।।८८।।
दांन दीइं लोक अतिघणांए, गो आदि दश वखांणि तु ।
मूढ मांहि हवु जांणतु, मांन पाम्या अति धणुए ।।८९।।
इणी परि ते नयरी रहिए, लखि नहीं तेहनि कोइ तु ।
पुरांण शास्त्र पढ़ि अति घणां ए, लोकसु माक्षत जोयतु ।।९०।।

११. धर्मपरीक्षा रास—

इस रास में मनोवेग और पवनवेग के आधार से कितनी ही कथायें दी हुई हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मानव को गलत मार्ग से हटाकर उत्तम मार्ग पर लाना है। मनोवेग शुद्धाचरण वाला है जबकि पवनवेग सन्मार्ग से भूला हुआ है। रास सुन्दर है और इसके पढने से कितनी ही अच्छी बातें उपलब्ध होती हैं।

रास में दूहा, चौपाई, भासा तथा वस्तुबन्ध छंद का प्रयोग हुआ है। भाषा एवं शैली दोनों ही अच्छी हैं। एक उदाहरण देखिये—

दूहा—

अज्ञान मिथ्यात दूर धरो, तप्ला आगलि विचार।
अवर मिथ्या तणा, पंचम काल अपार ॥१॥
इम जाणि निश्चो करी, छोडु मिथ्यात अपार।
समकित पालो निरमलो, जिम पामो भव पार ॥२॥
परीक्षा कीजि रुवड़ी, देव धरम गुरु चंग।
निर्दोष सासण तणो, त्रिभुवन माहि अभंग ॥३॥
ते आराधु निरमलो, पवनवेग गुणवंत।
तिमि सुख पायो अति घणों, मुगति तणो जयवंत ॥४॥
जीव आगि घुणं भम्यो, सत्य मारग विण थोट।
ते मारग तह्य आचरो, जिम दुख जाइ घन घोर ॥५॥

रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनि, मुनि भूवनकीरति अवतार।
ब्रह्म जिनदास भणि रुवडो, रास कियो सविचार ॥
धर्म परीक्षा रास निरमलो, धर्ममतणो निधान।
पढि गुणि जे संभलि, तेह उपजि मतिज्ञान ॥२॥

१२. ज्येष्ठजिनवर रास

यह एक लघु कथा कृति है जिसमें 'सोमा' ने प्रतिदिन एक घड़ा पानी जिन मंदिर में लेजाकर रखने की अपनी प्रतिज्ञा किन २ परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक निभायी—इसका वर्णन दिया हुआ है। भाषा सरल है तथा पद्यों की संख्या १२० है।

सोमा मनि उपनु तव भाव, एक नीम देउ तमे करी पसाइ।
एक कुंभ जिनवर भवन उतंग, दिन प्रति मूंकि सइ मन रंग ॥
एहवु नीम लीधु मन माह, एक कुंभ मेहलि मन माह।
निर्मल नीर भरी करी चंग, दिन प्रति जिनवर भुवन उतंग ॥

१३. श्रेणिक रास

इसमें राजा श्रेणिक के जीवन का वर्णन किया गया है राजा श्रेणिक मगध के सम्राट थे तथा भगवान महावीर के मुख्य उपासक थे। इसमें दोहा, चौपाई छंद का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा भी सरल एवं सुन्दर है। एक उदाहरण देखिये—

जे जे बात निमित्ती कहीं, राजा आगले सार ।
ते ते सब सिद्ध गई, श्रेणिक पुन्य अपार ॥
तव राजा आमंत्रि मनहि करि विचार ।
माहरो बोल विरथा हवु, धिग धिग एह मंझार ॥
तव रासि बोलावीयु, सुमती नाम परधान ।
अवर मंत्री बहु आवी आ, राजा दीधु बहु मान ॥

इस रास की एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में संग्रहीत है। पाण्डु-लिपि में ५२ पत्र हैं जो ९½" × ४½" आकार वाले हैं।

१४. समकित-मिथ्यात रास

यह एक लघु रास है जिसमें शुद्धाचरण पर अधिक बल दिया गया है तथा जिन्होंने अपने जीवन में सम्यक् चारित्र को उतारा है उनका नामोल्लेख किया गया है। पद्यों की संख्या ७० है। वड़, पीपल, सागर, नदी एवं हाथी, घोड़ा, खेजड़ा आदि को न पूजने के लिये उपदेश दिया गया है। रास की राजस्थानी भाषा है तथा वह सरल एवं सुबोध है। एक उदाहरण देखिये—

गोरना देवि पुत्र देइ, तो को इवांडी यो न होइ ।
पुत्र धरम फल पामीइ, एह विचार तु जोइ ॥३॥
धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमइ लाछि भंडार ॥
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रूप अपार ॥४॥
इम जाणी तह्ये धरम करो, जीव दया जगि सार ।
जीभ एह्वां फल पामीइ, बलि तरीए संसारि ॥५॥

रास का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनए, श्री भुवनकीरति अवतारतो ।
ब्रह्मजिणदास भणे ध्याइए, गाइए सरस अपारतो ॥
इति समिकितरास मिथ्यातमोरास समाप्त ।

१५. सुदर्शन रास

इस रास में सेठ सुदर्शन की कथा दी हुई है जो अपने उत्तम एवं निर्मल चरित्र के कारण प्रसिद्ध था। रास के छन्दों की संख्या ३३७ है। अन्तिम छंद इस प्रकार है—

साह सुदर्शन साह सुदर्शन सीयल भन्डार ।
समकित गुरो आगुण पाप, मिथ्यात रहित अतिवल ॥

क्रोध मोहवि खंडगु गुण, तगु मंगई कहीइ ।
ते मुनिवर तणु निर्मगु रास कह्यु मि सार ॥
ब्रह्म जिणदास एणी परिभणि, गाइ पुन्य अपार ॥३३७॥

१६. अंबिका रास

इसमें अंबिका देवी का चरित्र चित्रित किया गया है। छन्दों की संख्या १५८ है। कवि ने मंगलाचरण में नेमिनाथ स्वामी को नमस्कार किया है। इस रास में किसी गुरु का स्मरण नहीं किया गया है।

वीनती छंद—सोरठ देस मझार जूनागढ जोगि जाणीइए।
गिरिनारि पर्वत वनि सिद्ध क्षेत्र वखाणिइए ॥

१७. नागश्री रास

इस रास में रात्रि भोजन को लेकर नागश्री की कथा का वर्णन किया गया है। रास की एक प्रति उदयपुर के शास्त्र भण्डार के बड़े गुटके में संग्रहीत है। कवि ने अपने अन्य रासक काव्यों के समान इसकी भी रचना की है। इसमें २५३ पद्य हैं। रास का अन्तिम भाग देखिए—

काल घणु सुख भोगव्या, पछि ऊपनु वैरागतु।
ज्ञानसागर गुरु पामिया ए, सर्ग मुक्ति तणा भावतु।

दोहा—तेह गुरु प्रणमी करी, लीधु संयम भार ।
राजा सहित सोहामणु, पंच महाव्रत सार ॥२४९॥
नागश्री श्राविका कही, राणी सहित सुजाण।
अजिका हवी अति निर्मली, धर्मनो मनी खाणि ॥२५०॥
तप जप संयम निर्मलु, पाल्यु अति गुणवंत ।
सर्ग पुहतां रुअडां, ध्यान वसि जयवंत ॥२५१॥
नारी लिंग छेदी करी, नागश्री गुणमाल ।
सर्ग भुवनदेव हवु, रुधिवंत विसाल ॥२५२॥
कीरति गुरु पाए प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
ब्रह्म जिनदास इस वीनवि, मन वंछीत फल पामि ॥२५३॥

इति नागश्री रास। सं. १६१६ पोष सुदि ३ रवौ।
ब्रह्म श्री वना केन लिखितं ॥

१८. रविव्रत कथा

प्रस्तुत लघुकथा कृति में जिनदास ने रविवार व्रत के महात्म्य का वर्णन किया है। इसकी भाषा अन्य कृतियों की अपेक्षा सरल एवं सुवोध है। इसकी एक प्रति डूंगरपुर के शास्त्र भंडार के एक गुटका में संग्रहीत है। इसमें ४६ पद्य हैं।

कृति का आदि एवं अन्तिम भाग देखिए—

प्रथम नमु जिनवर ना पाय, जेहनि सुख संपति वहु थाय।
सरस्वति देवि ना पद नमु, पाप ताप सहु दूरे गमु ॥१॥
कथा कहु रुडि रविवार, जेह थी लहिए सुख मंडार।
काशी देश मनोहर ठाम, नगर वसे वारानसी नाम ॥२॥
राजा राज करे महीपाल, सूरवीर गुणवंत दयाल।
नगर सेठ धनवंतह वसे, पूजा दान करी अघ नसे ॥३॥
पुत्र सात तेह ने गुणवंत, सज्जन रुडाने वलिसंत।
गुणधर लोहडो वालकुमार, तेह भणियो सवि शास्त्र विचार ॥४॥

अन्तिम—

मूल संघ मंडन मनोहार, सकलकीर्त्ति जग मां विस्तार।
गया धर्म नो करे उधार, कलि काले गौतम अवतार ॥४५॥
तेहनो सीख्य ब्रह्म जिनदास, रविवार व्रत कीयो प्रकाश।
भाववरी व्रत करे से जेह, मन वांछित सुख पांमे तेह ॥४६॥

इति रविव्रत कथा सम्पूर्णम्।

१९. श्रीपाल रास

यह कोटिभट श्रीपाल के जीवन पर आधारित रासक काव्य है जिसमें पुरुषार्थ पर भाग्य की विजय वतलाई गयी है। रास की एक प्रति खण्डेलवाल दि. जैन मंदिर उदयपुर के ग्रंथ भण्डार में संग्रहीत है। कवि ने ४४८ पद्यों में श्रीपाल, मैना सुन्दरी, रैनमंजूषा धवलसेठ आदि पात्रों के चरित्र सुन्दर रीति से लिखे गये हैं। रास की भाषा भी वोलचाल की भाषा है। रैनमंजूपा का विलाप देखिये—

रयणमंजूषा अवला वाल, करि विलाप तिहां गुणमाल।
हा हा स्वामी मझ तु कंत, समुद्र माहि किम पडीउ मंत ॥१८४॥
पर भवि जीव हिंसा मि करी, सत्य वचन वल न विधकरी।
नर नारी निंदी घाग्राल, तेणि पापि मझ पठीउ जाल ॥१८५॥
कि मुनिवर निंदा करी, जिनवर पूजा कि अपहरी।
कि धर्म तदयु करयु विणास, तेणि आव्यु मझ दुख निवास ॥१८६॥

कृति का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

सिद्ध पूजा सिद्ध पूजा सार भवतार।
तेहनि रोग गयु राज्य पाम्यु, वलीसार मनोहर।
श्रीपाल राणु निरमलु संयम, लीधु सार मुगतिवर।
मयण स्त्रीलिंग छेद करी, स्वर्ग देव उपनु निरभर।

ध्यान वली कर्म क्षय करी, श्रीपाल गयु अवतार ।
श्री सकलकीर्ति पाए प्रणमीनि, ब्रह्म जिणदास भणिसार ॥४४८॥

इति श्रीपाल मुनिस्वररास संपूर्ण ।

२०. जम्बूस्वामी रास

इसमें २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है। यह रास भी उदयपुर (राज) के खण्डेलवाल दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें १००५ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दों में विभक्त हैं। कृति के दो उदाहरण देखिए—

ढाल रासनी—

कनकवती कहि निरमलीए, कंत न जाणि भेद तु ।
अविक सुखनि कारणिए, सिद्धा तणु करि छेद तु ॥६७९॥
उवयु मेघ देखी करीए, फोडि घडा गमार तु ।
परलोक सुख कारणि, कंत छोडइ संसार तु ॥६८०॥
चोखट अंनरोवी करीए, घरि घरि मागि दीन तु ।
सरस कमल छोडी करीए, कोरडी चारि अंगली हीन तु ॥६८१॥

अन्तिम छन्द—

रास कीधुमि अतिहि विसाल
जंवुकुमर मुनि निर्मलु, अन्तिम केवली सार मनोहार ।
अनेक कथामि वरणवी, भवीयण तणी गुणवंत जिनवर ।
पढि गुणि सांभलि, तेस घरि रिधि अनंत ।
ब्रह्म जिनदास एणी परभणि, मुकति रमणी होइ कंत ॥१००५॥

२१. भद्रवाहु रास

भगवान महावीर के पश्चात होने वाले भद्रवाहु स्वामी अन्तिम श्रुत केवली थे। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (ई. पू. ३ री शताब्दि) उनके शिष्य थे। भद्रबाहु का प्रस्तुत रास में संक्षिप्त वर्णन है। इस रास की प्रति अग्रवाल दि. जैन मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भंडार में संग्रहीत है। रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

चन्द्रप्रभजिनं चन्द्रप्रभजिनं नमुं ते सार ।
तीर्थंकर जो आठमो वांछीत फल वहु दान दातार ।
सारद स्वामिनी वलि तवुं, जोम वुद्धि सार हउं वेगि मांगउ ।
गणधर स्वामी नमसकरुं श्री सकल कीरति गुणसार ।
तास चरण हुं प्रणमीनि, रास करुं सविचार ॥

अन्तिम भाग —

भद्रबाहु मुनी भद्रबाहु मुनी संघ धुरि सार ।
पंचम श्रुत केवली गुरू, धरम नांव संसार तारण ।
दिगम्बर निग्रन्थ मुनि, जिन सकल उद्योत कारण ।
ए मुनि आह्य धाइस्युं, कहीयु निरमल रास ।
ब्रह्म जिणदास इणी परिभणो, गाइं सिवपुर वास ।

भाषा

कवि का मुख्य क्षेत्र डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट, ईडर, सूरत आदि स्थान थे । ये स्थान बागड़ प्रदेश एवं गुजरात के अन्तर्गत थे जहां जन साधारण की गुजराती एवं राजस्थानी बोली थी । इसलिए इनकी रचनाओं पर भी गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है । कहीं कहीं तो ऐसा लगता है मानों कोई गुजराती रचना ही हो । इनकी भाषा को राजस्थानी की संज्ञा दी जा सकती है । यह समय हिन्दी का एक परीक्षण काल था और वह उसमें खरी सिद्ध होकर आगे बढ रही थी । ब्रह्म जिनदास के इस काल को रासो काल की संज्ञा दी जा सकती है । गुजराती शब्दों को हिन्दीवालों ने अपना लिया था और उनका प्रयोग अपनी अपनी रचनाओं में करने लगे थे । जिसका स्पष्ट उदाहरण ब्रह्म जिनदास एवं बागड प्रदेश में होने वाले अन्य जैन कवियों की रचनाओं में मिलता है । अजितनाथ रास के प्रारम्भ का इनका एक मंगलाचरण देखिए—

श्री सकलकीर्त्ति गुरू प्रणमीने, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
रास कियो में निरमलो, अजित जिणेसर सार ।।
पढेइ गुणेंइ जे सांभले, मनि धर निर्मल भाव ।
तेह करि रिधि घर तणो, पाये शिवपुर ठाम ।।
जिण सासण अति निरमलो, भवि भवि देउ मुहसार ।
ब्रह्म जिनदास इम वीनवे, श्री जिणवर मुगति दातार ।।

उक्त उद्धरण में प्रणमीने, में, तणों शब्द गुजराती भाषा के कहे जा प्रकते है । इसी तरह जम्बूस्वामी रास का एक और उद्धरण देखिए—

भवियण भावि सुणु आज हूं कहिय वर वाणी ।
जम्बू कुमार चरित्र गायसूं मधूरीय वाणी ।। २ ।।
अन्तिम केवली हवु चंग जम्बूस्वामी गुणवंत ।
रूप सोभा अपार सार सुललित जयवंत ।। ३ ।।
जम्बू द्वीप मझार सार भरत क्षेत्र जाणु ।
भरत क्षेत्र मांहि देव सार मगध बखाणु ।। ४ ।।

उक्त पद में हवुं, चंग गुजराती भाषा के कहे जा सकते हैं। इस तरह कवि अपनी रचनाओं में गुजराती भाषा के कहीं कम और कहीं अधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं लेकिन इससे कवि की कृतियों की भाषा को राजस्थानी मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

इस प्रकार कवि जिनदास अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि कहे जा सकते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के कवियों का वातावरण तयार करने में अत्यधिक सहयोग दिया और इनका अनुसरण इनके बाद होने वाले कवियों ने किया। इतना ही नहीं इन्होंने जिन छन्दों एवं शैली में कृतियों का सृजन किया उन्हीं छन्दों का इनके परवर्ती कवियों ने उपयोग किया। वस्तुबंध छन्द इन्हीं का लाडला छन्द था और ये इस छन्द का उपयोग अपनी रचनाओं में मुख्यतः करते रहे हैं। दूहा, चउपई एवं भास जिसके कितने ही रूप हैं, इनकी रचनाओं में काफी उपयोग हुआ है। वास्तव में इनकी कृतियां छन्द शास्त्र का अध्ययन करने के लिये उत्तम साधन है।

मूल्यांकन :

'ब्रह्म जिनदास' की कृतियों का मूल्यांकन करना सहज कार्य नहीं है, क्योंकि उनकी संख्या ६० से भी ऊपर है। वे महाकवि थे, जिनमें विविध विषयक साहित्य को निबद्ध करने का अद्भुत सामर्थ्य था। भ० सकलकीर्त्ति एवं भुवनकीर्त्ति के संघ में रहना, दोनों के समय समय पर दिये जाने वाले आदेशों को भी मानना, समारोह एवं अन्य आयोजनों में तथा तीर्थयात्रा संघ में भी उनके साथ रहना और अपने पद के अनुसार आत्मसाधना करना आदि के अतिरिक्त ६० से अधिक कृतियों को निबद्ध करना उनकी अलौकिक प्रतिभा का सूचक है। कवि की संस्कृत भाषा में निबद्ध रामचरित एवं हरिवंश पुराण तथा हिन्दी भाषा में निबद्ध रामसीता रास, हरिवंश पुराण, आदिनाथ पुराण आदि कृतियां महाकाव्य के समकक्ष की रचनायें हैं–जिनके लेखन में कवि को काफी समय लगा होगा। 'ब्रह्म जिनदास' ने हिन्दी भाषा में इतनी अधिक कृतियों की उस समय रचना की थी–जब 'हिन्दी' लोकप्रिय भाषा भी नहीं बन सकी थी और संस्कृत भाषा में काव्य रचना को पाण्डित्य की निशानी समझी जाती थी। कवि के समय में तो संभवतः 'महाकवि कबीरदास' को भी वर्तमान शताब्दि के समान प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई थी। इसलिये कवि का हिन्दी प्रेम सर्वथा स्तुत्य है।

कवि की कृतियों में काव्य के विविध लक्षणों का समावेश है। यद्यपि प्रायः सभी काव्य शान्त रस पर्यवसानी है, लेकिन वीर, शृंगार, हास्य आदि रसों का यत्र तत्र अच्छा प्रयोग हुआ है। कवि में काव्य के आकर्षक रीति से कहने की क्षमता है। उसने अपने काव्यों को न तो इतना अधिक जटिल ही बनाया कि पाठकों का पढ़ना

ही कठिन हो जावे और न वे इतने सरल हैं कि उनमें कोई आकर्षण ही बाकी न बचे। उन्होंने काव्य रचना में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया—यही कारण है कि कवि के काव्य सदैव लोकप्रिय रहे और राजस्थान के सैंकड़ों जैन ग्रंथ भंडार इनके काव्यों की प्रतिलिपियों से समालंकृत है।

आचार्य सोमकीर्त्ति

आचार्य सोमकीर्त्ति १५ वीं शताब्दी के उद्‌भट विद्वान, प्रमुख साहित्य सेवी एवं उत्कृष्ट जैन संत थे। उन्होंने अपने जीवन के जो लक्ष्य निर्धारित किये उनमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। वे योगी थे। आत्म साधना में तत्पर रहते और अपने शिष्यों, साथियों तथा अनुयायियों को उस पर चलने का उपदेश देते। वे स्वाध्याय करते, साहित्य सृजन करते एवं लोगों को उसकी महत्ता बतलाते। यद्यपि अभी तक उनका अधिक साहित्य नहीं मिल सका है लेकिन जितना भी उपलब्ध हुआ है उस पर उनकी विद्वत्ता की गहरी छाप है। वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती आदि कितनी ही भाषाओं के ज्ञाता थे। पहिले उन्होंने जन साधारण के लिये हिन्दी राजस्थानी में लिखा और फिर अपनी विद्वता बतलाने के लिये कुछ रचनाये संस्कृत में भी निबद्ध की। उनका प्रमुख क्षेत्र राजस्थान एवं गुजरात रहा और इन प्रदेशों में जीवन भर विहार करके जन साधारण के जीवन को ज्ञान, एवं आत्म साधना की दृष्टि से ऊंचा उठाने का प्रयास करते रहे। उन्होंने कितने ही मन्दिरों की प्रतिष्ठाये करवायी, सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन करवाया और इन सबके द्वारा सभी को सत्य मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। वास्तव में वे अपने समय के भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा के महान प्रचारक थे।

आचार्य सोमकीर्ति काष्ठा संघ के नन्दीतट शाखा के सन्त थे तथा १० वीं शताब्दि के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा में होने वाले भट्टारक थे। उनके दादा गुरु लक्ष्मीसेन एवं गुरु भीमसेन थे। संवत १५१८ (सन् १४६१) में रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली में अपने आपको काष्ठासंघ का ८७ वां भट्टारक लिखा है। इनके गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध में हमें अब तक कोई प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है। वे कहां के थे, कौन उनके माता पिता थे, वे कब तक गृहस्थ रहे और कितने समय पश्चात इन्होंने साधु जीवन को अपनाया इसकी जानकारी अभी खोज का विषय है। लेकिन इतना अवश्य है कि ये संवत १५१८ में भट्टारक बन चुके थे

और इसी वर्ष इन्होंने अपने पूर्वजों का इतिहास लिपिबद्ध किया था [1]। श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने अपने भट्टारक सम्प्रदाय में इनका समय संवत १५२६ से १५४० तक का भट्टारक काल दिया है। वह इस पट्टावली से मेल नहीं खाता। संभवतः उन्होंने यह समय इनकी संस्कृत रचना सप्तव्यसनकथा के आधार पर दे दिया मालूम देता है क्योंकि कवि ने इस रचना को सं० १५२६ में समाप्त किया था। इनकी तीन संस्कृत रचनाओं में से यह प्रथम रचना है।

सोमकीर्त्ति यद्यपि भट्टारक थे लेकिन ये अपने नाम के पूर्व आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। ये प्रतिष्ठाचार्य का कार्य भी करते थे और उनके द्वारा सम्पन्न प्रतिष्ठाओं का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है—

१. संवत १५२७ वैशाख सुदि ५ की इन्होंने वीरसेन के साथ नरसिंह एवं उसकी भार्या सापंड़िया के द्वारा आदिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना करवायी थी [2]।

२. संवत् १५३२ में वीरसेन सूरि के साथ शीतलनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी थी। [3]

---

१. श्री भीमसेन पट्टाधरण गछ सरोमणि कुल तिलौ।
जाणंति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलौ ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु।
अक्कवार पंचमी बहुल पख्यह बखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोभोत्रि पुरवरि।
सन्यासी वर पाठ तणु प्रबन्ध जिणि परि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति बहु भाव धरि।
जयवंत उरवि तलि विस्तरू श्री शांतिनाथ सुपसाउ करि ॥

×　　×　　×　　×

२. संवत १५२७ वर्ष वैशाख दुदी ५ गुरौ श्री काष्ठासंघे नंदतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति आचार्य श्री वीरसेन युगवै प्रतिष्ठिता। नरसिंह राज्ञा भार्या सांपडिया गोत्रे..............लाखा भार्या मांकू देल्हा भार्या मानू पुत्र वना सा. कान्हा देल्हा केन श्री आदिनाथ बिम्ब कारापिता।

सिरमौरियों का मन्दिर जयपुर।

३. भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ संख्या—२९३

३. संवत् १५३६ में अपने शिष्य वीरसेन सूरि के साथ हूंबड जातीय श्रावक भूपा भार्या राज के अनुरोध से चौवीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[1]

४. संवत् १५४० में भी इन्होंने एक मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[2]

ये मंत्र शास्त्र के भी ज्ञाता एवं अच्छे साधक थे। कहा जाता है कि एक बार इन्होंने सुल्तान फिरोजशाह के राज्यकाल में पावागढ में पद्मावती की कृपा से आकाश गमन का चमत्कार दिखलाया था।[3] अपने समय के मुगल सम्राट से भी इनका अच्छा संबंध था। ब्र० श्री कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण (र. का. सं. १६८१) में सोमकीर्त्ति के स्तवन में इनके आगे "यवनपतिकरांभोजसंपूजितांह्रि" विशेषण जोड़ा है।[4]

शिष्यगण

सोमकीर्ति के वैसे तो कितने ही शिष्य थे जो इनके संघ में रहकर धर्म-साधन किया करते थे। लेकिन इन शिष्यों में, यशःकीर्ति, वीरसेन, यशोधर आदि का नाम मुख्यतः गिनाया जा सकता है। इनकी मृत्यु के पश्चात् यशःकीर्ति ही भट्टारक बने। ये स्वयं भी विद्वान थे। इसी तरह आचार्य सोमकीर्त्ति के दूसरे शिष्य यशोधर की भी हिन्दी की कितनी ही रचनाएं मिलती हैं। इनकी वाणी में जादू था इसलिये ये जहां भी जाते वहीं प्रशंसकों की पंक्ति खड़ी हो जाती थी। संघ में मुनि-आर्यिका, ब्रह्मचारी एवं पंडितगण थे जिन्हें धर्म प्रचार एवं आत्म-साधना की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

विहार

इन्होंने अपने विहार से किन २ नगरों, गांवों एवं देशों को पवित्र किया इसक कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन इनकी कुछ रचनाओं में जो रचना

---

१. संवत् १५३६ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्री काष्टासंघे वागडगच्छे नंदी तट गच्छे विद्यागणे भ० श्री भीमसेन तत् पट्टे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति शिष्य आचार्य श्रीवीरसेनयुक्तं प्रतिष्ठितं हुंवड जातीय वघ गोत्रे गांधी भूपा भार्या राज सुत गांधी मना भार्या काऊ सुत रूड़ा भार्या लाडिकि संघवी मना केन श्री आदिनाथ चतुर्विंशतिका प्रतिष्ठापिता।

मंदिर लूणकरणजी पांड्या जयपुर

२. भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ संख्या—२९३

३. ,, ,, ,, २९३

४. प्रशस्ति संग्रह ,, ४७

स्थान दिया हुआ है उसी के आधार पर इनके विहार का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। संवत् १५१८ में सोजत नगर में थे और वहां इन्होंने संभवतः अपनी प्रथम ऐतिहासिक रचना 'गुर्वावलि' को समाप्त किया था। संवत् १५३६ में गोढिलीनगर में विराज रहे थे यहीं इन्होंने यशोधर चरित्र (संस्कृत) को समाप्त किया था तथा फिर यशोधर चरित (हिन्दी) को भी इसी नगर में निबद्ध किया था।

साहित्य-सेवा

सोमकीर्ति अपने समय के प्रमुख साहित्य सेवी थे। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही इनकी रचनायें उपलब्ध होती हैं। राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में इनकी अब तक निम्न रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं—

संस्कृत रचनायें

(१) सप्तव्यसनकथा

(२) प्रद्युम्नचरित्र

(३) यशोधरचरित्र

राजस्थानी रचनायें

(१) गुर्वावलि

(२) यशोधर रास

(३) रिषभनाथ की धूलि

(४) मल्लिगीत

(५) आदिनाथ विनती

(६) त्रेपनक्रिया गीत

इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है-

(१) सप्तव्यसनकथा

यह कथा साहित्य का अच्छा ग्रन्थ है जिसमें सात व्यसनों[1] के आधार पर सात कथायें दी हुई हैं। ग्रन्थ के भी सात ही सर्ग हैं। आचार्य सोमकीर्ति ने इसे संवत् १५२६ में माघ सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था।

---

१. जैनाचार्यो ने—जुआं खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या सेवन, पर स्त्री सेवन, तथा मद्य एवं मांस सेवन करने को सप्त व्यसनों में गिनाया है।

रस नयन समेते बाण युक्तेन चन्द्रे (१५२६)
गतवति सति नूनं विक्रमस्यैव काले
प्रतिपदि धवलायां माघमासस्य सोमे
हरिभदिनमनोज्ञे निर्मितो ग्रन्थ एषः ।।७१।।

(२) प्रद्युम्नचरित्र

यह इनका दूसरा प्रवन्ध काव्य है जिसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित अङ्कित है। प्रद्युम्न का जीवन जैनाचार्यों को अत्यधिक आकर्षित करता रहा है। अब तक विभिन्न भाषाओं में लिखी हुई प्रद्युम्न के जीवन पर २५ से भी अधिक रचनायें मिलती हैं। प्रद्युम्न चरित सुन्दर काव्य है जो १६ सर्गों में विभक्त है। इसका रचना काल सं० १५३१ पौष सुदी १३ बुधवार है।

संवत्सरे सत्तिथिसंज्ञके वै वर्षेऽत्र त्रिंशैकयुते (१५३१) पवित्रे
विनिर्मितं पौषसुदेश्च तस्यां त्रयोदशीव बुधवारयुक्ताः ।।१६९

(३) यशोधर चरित्र

कवि 'यशोधर' के जीवन से संभवतः बहुत प्रभावित थे इसलिए इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही यशोधर के जीवन का यशोगान गाया है। यशोधर चरित्र आठ सर्गों का काव्य है। कवि ने इसे संवत् १५३६ में गोढिली (मारवाड) नगर में निबद्ध किया था।

नंदीतटाख्यगच्छे वंशे श्रीरामसेनदेवस्य
जातो गुणार्णवैकश्च श्रीमान् श्रीभीमसेनेति ।।६०।।
निर्मितं तस्य शिष्येण श्री यशोधरसंज्ञकं।
श्रीसोमकीर्त्तिमुनिना विशोध्यऽधीयतां बुधाः ।।६१।।
वर्षे षटत्रिंशसंख्ये तिथि पर गणना युक्त संवत्सरे (१५३६) वै।
पंचम्यां पौषकृष्णे दिनकरदिवसे चोत्तरास्य हि चंद्रे।
गोढिल्या : मेदपाटे जिनवरभवने शीतलेन्द्ररम्ये।
सोमादिकीर्त्तिनेदं नृपवरचरितं निर्मितं शुद्धभक्त्या ।।

राजस्थानी रचनायें

(१) गुर्वावलि

यह एक ऐतिहासिक रचना है जिसमें कवि ने अपने संघ के पूर्वाचार्यों का संक्षिप्त वर्णन दिया है। यह गुर्वावलि संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखी हुई

है। हिन्दी में गद्य पद्य दोनों का ही उपयोग किया गया है। भाषा वैचित्र्य की दृष्टि से रचना का अत्यधिक महत्व है। सोमकीर्ति ने इसे संवत् १५१८ में समाप्त किया था इसलिए उस समय की प्रचलित हिन्दी गद्य की इस रचना से स्पष्ट झलक मिलती है। यह कृति हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास की विलुप्त कड़ी को जोड़ने वाली है।

इस पट्टावली में काष्ठासंघ का अच्छा इतिहास है। कृति का प्रारम्भ काष्ठा संघ के ४ गच्छों से होता है जो नन्दीतटगच्छ, माथुरगच्छ, बागड़गच्छ, एवं लाडबागड़ गच्छ के नाम से प्रसिद्ध थे। पट्टावली में आचार्य अर्हद्बलि को नन्दीतट गच्छ का प्रथम आचार्य लिखा है। इसके पश्चात अन्य आचार्यों का संक्षिप्त इतिहास देते हुए ८७ आचार्यों का नामोल्लेख किया है। ८७ वें भट्टारक आचार्य सोमकीर्ति थे। इस गच्छ के आचार्य रामसेन ने नरसिंहपुरा जाति की तथा नेमिसेन ने भट्टपुरा जाति की स्थापना की थी। नेमिसेन पर पद्मावती एवं सरस्वती दोनों की कृपा थी और उन्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध थी।

रचना का प्रथम एवं अन्तिम भाग निम्न प्रकार है :—

नमस्कृत्य जिनाधीशान्, सुरासुरनमस्कृतान् ।
सुखसाम्राज्यपर्यंतान् वक्ष्ये श्रीगुरुपद्धतिं ॥१॥
नमामि शारदां देवीं विबुधानन्ददायिनीम् ।
जिनेन्द्रवदनाम्भोज, हंसी परमेश्वरीम् ॥२॥
चारित्रार्णवगंभीरान् नत्वा श्रीमुनिपुंगवान् ।
गुर्वावली वक्ष्ये समासेन स्वशक्तितः ॥३॥
दूहा—जिण चउवीसह पाय नमी, समरवि शारदा माय ।
कहुं संघ गुरु वर्णवुं, पणमवि गणहर पाय ॥४॥

× × × × ×

काम क्रोह मद मोह, लोह आनंदु टालि ।
कहुं संघ मुनिराय, गछ दयो पटि मधुराति ॥
श्रीलक्ष्मसेन पट्टोद्धरण पापपंक लिपिय नहीं ।
जो नरह नरिंदे वंदीइ, श्री भीमसेन मुनिवरसही ॥
सुर गिरि सिरि जो चडे, पाउ करि अति बलवन्तो ।
कवि रयणायर नीर तीर पुहु तरण तरंतो ॥
जो आयास पमाण हत्थ करि माहिं भमंतो ।
कलसोय सोम गुण परिलिहिमिहि कोइ कहंतो ॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुलतिलो ।
जाणंति मुणाराहि जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलो ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु;
अक्कवार पंचमी, वहुल पखयह वखाणु ।
पुव्वा मह् नक्षत्र श्री सोझीत्रि पुरवरि,
सत्तासी वर-पाट तणु भवंध जिणि परि ।।
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति वहुभावधरि ।
जयवंतउ रवि तलि विस्तरु, श्री शान्तिनाथ सुपसाउ करि ।।

२. यशोधर रास :—

यह कवि की दूसरी वड़ी रचना है जो एक प्रकार से प्रवन्ध काव्य है । इस रचना के सम्वन्ध में अभी तक किसी विद्वान् ने उल्लेख नहीं किया है। इसलिए यशोधर रास कवि की अलभ्य कृतियों में से दूसरी रचना है । सोमकीर्त्ति ने संस्कृत में भी यशोधर चरित्र की रचना की थी जिसे उन्होंने संवत् १५३६ में पूर्ण किया था । 'यशोधररास' संभवतः इसके बाद की रचना है जो इन्होने अपने हिन्दी, राजस्थानी गुजराती भाषा भाषा पाठकों के लिए निवद्ध की थी ।

"आचार्य सोमकीर्ति" ने 'यशोधर रास' को गुढलीनगर के शीतलनाथ स्वामी के मन्दिर में कार्तिक सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था ।

सोधीय एहज रास करीय सानुवली थापिचुए ।
कातीए उजलि पाखि पडिवा बुधचारि कीउए ।।
सीतलु ए नाथि प्रासादि गुंढली नयर सोहामणु ए ।
रिधि वृद्धि ए श्रीपास पासाउ हो जो निति श्रीसंघह घरिए ।
श्री गुरुए चरण पसाउ श्री सोमकीरति सूरि भण्युए ।।

'यशोधर रास' एक प्रवन्ध काव्य है, जिसमें राजा यशोधर के जीवन का मुख्यतः वर्णन है । सारा काव्य दश ढ़ालों में विभक्त है । ये ढ़ालें एक प्रकार से सर्ग का काम देती हैं । कवि ने यशोधर की जीवन कथा सीधी प्रारम्भ न करके साधु युगल से कहलायी है, जिसे सुनकर राजा मारिदत्त स्वयं भी हिंसक जीवन को छोड़कर जैन साधु की दीक्षा धारण कर लेता है एवं चंडमारि देवी का प्रमुख उपासक भी हिंसावृत्ति को छोड़कर अहिंसक जीवन व्यतीत करता है । 'रास' की समूची कथा अहिंसा को प्रतिपादित करने के लिये कही गई है, किन्तु इसके अतिरिक्त रास में अन्य वर्णन भी अच्छे मिलते हैं । 'रास' में एक वर्णन देखिए—जिसमें वसन्त ऋतु आने पर वन में कोयल कूंज उठती है एवं भोंरों की झंकार सुनाई देती है—

कोइल करइं टहुकडाए, मधुकर झंकार फूली।
जातज वृक्ष तणीये वनह मझार वन देखी मुनिराउ मणि।
इहां नहीं मुझ काज ब्रह्मचार यतिवर रहितु आवि लाज ॥

राजा यशोधर ने बाल्यावस्था में कौन-कौन से ग्रंथों का अध्ययन किय —
इसका एक वर्णन पढ़िये—

राउ प्रति तव मइ कहवु, सुणउ नरेसर आज।
पंडित जेहुं भणावीउ, कीधो लुंजे मुझ काज ॥
वृत्तनि काव्य अलंकार, तर्क्क सिद्धान्त पमाण।
भरहनइ छंदसु पिंगल, नाटक ग्रंथ पुराण ॥
आगम योतिष वैंदक हय नर पसुयनु जेह।
चैत्य चत्यालां गेहनी गढ़ मढ़ करवानी तेह ॥
माहो माहि विरोधीइ, रूठा मनावीइ जेम।
कागल पत्र समाचरी, रसोयनी पाई केम ॥
इन्द्रजल रस भेद जे जूय नइ भूझनु कर्म।
पाप निवारण वादन नत्तन नाछि जे मर्म ॥

कवि के समय में एक विद्वान के लिए किन २ ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक था, वह इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

'यशोधर रास' की भाषा राजस्थानी है, जिसमें कहीं कहीं गुजराती के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वर्णन शैली की दृष्टि से रचना यद्यपि साधारण है लेकिन यह उस समय की रचना है, जब कि सूरदास, मीरां एवं तुलसीदास जैसे कवि साहित्याकाश में मंडराये भी नहीं थे। ऐसी अवस्था में हिन्दी भाषा के अध्ययन की दृष्टि से रचना उत्तम है एवं साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। १६ वीं शताब्दि की इतनी प्राचीन रचना इतने अच्छे ढंग से लिखी हुई बहुत कम मिलेंगी।

३. आदिनाथ विनती

यह एक लघु स्तवन है [1] जिसमें 'आदिनाथ' का यशोगान गाया गया है। यह स्तवन नैणवा के शास्त्र भन्डार के एक गुटके में संग्रहीत है।

५. त्रेपनक्रियागीत

श्रावकों के पालने योग्य त्रेपन क्रियाओं की इस गीत में विशेषता वर्णित की गई है। अन्तिम पद्य देखिए—

सोमकीर्त्ति गुरु केरा वाणी, भवीक जनि मनि आणी
त्रिपन क्रिया जे नर गाई, ते स्वर्ग मुगति पंथ वाइ ।।
सहीए त्रिपन किरिया पालु, पाप मिथ्यातज टालु ।।

५. **ऋषभनाथ की धूल**—इसमें ४ ढ़ाल हैं, जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के संक्षिप्त जीवन कथा पर प्रकाश डाला गया है। भाषा पूरे रूप में जन भाषा है। प्रथम ढाल को पढ़िये—

प्रणमवि जिणवर पाउ, तु गड त्रिहु भवन नुए ।
समरवि सरसति देव तु सेवा सुरनर करिए ।।
गाइसु आदि जिणंद आणद अति उपजिए ।।
कौशल देश मझार तु सुसार गुण आगलुए ।
नाभि नरिंद सुरिंद जिसु सुरपुर वराए ।
मुरा देवी नाम अरधंगि सुरंगि रंभा जिसी ए ।
राउ राणी सुख सेजि सुहेजांइ नितु रमिए ।
इंद्र आदेश सुवेस आवीस सुर किन्यकाए ।
केवि सिर छत्र धरंति करंति केवि घूपणाए ।
केवि उगट केइ अंगि सुचंगि पूजा धणीए ।
केवि अमर बहू भंगि आभंगीय आणवहिए ।
केवि सयन अनि आसन भोजन विधि करिए ।
केवि खडग धरी हाथि सो सावइ नितु फरिए ।।
मुरा देवि भगति चिकाजि सुलाज न मनि धरिए ।
जू जूया करि सवि वेषु तु, मामन परिहरिए ।
गरभ सोधकरि भाव तु गाइ सुव जिन तणाए ।
वरसि अहूठए कोडि कर जोडि सो व्रण तणीए ।
दिव दिन नाभि निवार सो वारि वा दुःख घणीए ।
एक दिवस मुरा देवी सो सेवीइ जक्षणीए ।
पुढीय सेजि समाधि सु अविकोइ आसणीए ।

तिणि कारणि तुझ पय कमलो सरण पयवउ हेव,
राखि क्रिया करे महरीय राव किं केव ।
नव विधि जिस धरि संपजिए अहनिशि जपतां नाम ।
आदि तीर्थंकर आदिगुरू आदिनाथ आदिदेव ।
श्री सोमकीर्त्ति मुनिवर भणिए भवि-भवि तुझ पाय सेव ।।

—आदिनाथ वीनति

उक्ति कृति नैरावां (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में से संग्रहीत है। गुटका ब्र. यशोधर द्वारा लिखित है। ब्र. यशोधर भ. सोमकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

मूल्यांकन—

'सोमकीर्त्ति' ने संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के माध्यम से जगत् को अहिंसा का सन्देश दिया। यही कारण है कि इन्होंने यशोधर के जीवन को दोनों भाषाओं में निबद्ध किया। भक्तिकाव्य के लेखन में इनकी विशेष रुचि थी। इसीलिए इन्होंने 'ऋषभनाथ की धूल' एवं 'आदिनाथ-विनती' की रचना की थी। इनके अभी और भी पद मिलने चाहिए। सोमकीर्त्ति की इतिहास-कृतियों में भी रुचि थी। गुर्वावलि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह रचना जैनाचार्यों एवं भट्टारकों की विलुप्त कड़ी को जोड़ने वाली है।

कवि ने अपनी कृतियों में 'राजस्थानी भाषा' का प्रयोग किया है। ब्रह्म जिनदास के समान उसकी रचनाओं में गुजराती भाषा के शब्दों का इतना अधिक प्रयोग नही हो सका है। यही नहीं इनकी भाषा में सरसता एवं लचकीलापन है। छन्दों के दृष्टि से भी वह राजस्थानी के अधिक निकट है।

कवि की दृष्टि से वही राज्य एवं उसके ग्राम, नगर श्रेष्ठ माने जाने चाहिए, जिनमें जीव वध नहीं होता है, सत्याचरण किया जाता हो तथा नारी समाज का जहां अत्यधिक सम्मान हो। यहीं नहीं, जहां के लोग अपने परिग्रह–संचय की सीमा भी प्रतिदिन निर्धारित करते हों और जहां रात्रि को भोजन करना भी वर्जित हो?

वास्तव में इन सभी सिद्धान्तों को कवि ने अपने जीवन में उतार कर फिर उनका व्यवहार जनता द्वारा सम्पादित कराया जाना चाहा था।

'सोमकीर्त्ति' में अपने दोनों काव्यों में 'जैनदर्शन' के प्रमुख सिद्धान्त 'अहिंसा' एवं 'अनेकान्तवाद' का भी अच्छा प्रतिपादन किया है।

नारी समाज के प्रति कवि के अच्छे विचार नहीं थे। 'यशोधर रास' में स्वयं महारानी ने जिस प्रकार का आचरण किया और अपने रूपवान पति को धोखा देकर एक कोढ़ी के पास जाना उचित समझा तो इस घटना से कवि को नारी-समाज को कलंकित करने का अवसर मिल गया और उसने अपने रास में निम्न शब्दों में उसकी भर्त्सना की—

---

१. धर्म अहिंसा मनि धरी ए मा, बोलि म कूडिय साखि।
चोरीय वात तु मां करे से मा, परनारि सहि टाली।
परिगह संख्या नितु करे ए, गुरुवाणि सदापालि॥

नारी विसहर वेल, नर वंचेवाए घडीए।
नारीय नामज मोहल, नारी नरक मतो तडीए।
कुटिल पणानी खाणि, नारी नीचह गामिनीए।
सांचु न वोलि वाणि, वाघिण सापिण अगनि शिखाए ॥

एक स्थान पर 'आचार्य सोमकीर्त्ति' ने आत्महत्या को बड़ा भारी पाप बताया और कहा—"आतम हित्या पाप शिरछेदंता लागसि"

इस प्रकार 'आ० सोमकीर्त्ति' अपने समय के हिन्दी एवं संस्कृत के प्रतिनिधि कवि थे इसलिए उनकी रचनाओं को हिन्दी साहित्य में उचित सम्मान मिलना चाहिए।

भट्टारक ज्ञानभूषण

अब तक की खोज के अनुसार ज्ञानभूषण नाम के चार भट्टारक हुए हैं। इसमें सर्व प्रथम भ. सकलकीर्त्ति की परम्परा में भट्टारक भुवनकीर्त्ति के शिष्य थे जिनका विस्तृत वर्णन यहां दिया जा रहा है। दूसरे ज्ञानभूषण भ. वीर चन्द्र के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध सूरत शाखा के भ. देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा में था। ये संवत् १६०० से १६१६ तक भट्टारक रहे। तीसरे ज्ञानभूषण का सम्बन्ध अटेर शाखा से रहा था और इनका समय १७ वीं शताब्दि का माना जाता है। और चौथे ज्ञानभूषण नागौर जाति के भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे। इनका समय १८ वीं शताब्दि का अन्तिम चरण था।

प्रस्तुत भ. ज्ञानभूषण पहिले भ. विमलेन्द्र कीर्त्ति के शिष्य थे और बाद में इन्होंने भ. भुवनकीर्त्ति को भी अपना गुरु स्वीकार कर लिया। ज्ञानभूषण एवं ज्ञान कीर्त्ति ये दोनों ही सगे भाई एवं गुरु भाई थे और वे पूर्वी गोलालारे जाति के श्रावक थे। लेकिन संवत् १५३५ में सागवाड़ा एवं नोगाम में एक साथ तथा एक ही दिन आयोजित होने के कारण दो भट्टारक परम्पराएं स्थापित हो गयी। सागवाड़ा में होने वाली प्रतिष्ठा के संचालक थे भ. ज्ञानभूषण और नोगाम की प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन ज्ञानकीर्त्ति ने किया। यहीं से भ. ज्ञानभूषण वडसाजनों के भट्टारक माने जाने लगे और भ. ज्ञानकीर्त्ति लोहड़साजनों के गुरु कहलाने लगे।[1]

---

[1] देखिए भट्टारक पट्टावलि—शास्त्र भण्डार भ. यशः कीर्त्ति दि. जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव (राज)

एक नन्दिसंघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि ये गुजरात के रहने वाले थे। गुजरात में ही उन्होंने सागार धर्म धारण किया, अहीर (आभीर) देश में ग्यारह प्रतिमाएं धारण की और वाग्वर या वागड़ देश में दुर्धर महाव्रत ग्रहण किए। तलव देश के यतियों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। तैलव देश के उत्तम पुरुषों ने उनके चरणों की वन्दना की, द्रविड़ देश के विद्वानों ने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र में उन्हें बहुत यश मिला, सौराष्ट्र के धनी श्रावकों ने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेश (ईडर के आस पास का प्रान्त) के निवासियों ने उनके वचनों को अतिशय प्रमाण माना। मेरुपाट (मेवाड़) के मूर्ख लोगों को उन्होंने प्रतिवोधित किया, मालवे के भव्य जनों के हृदय-कमल को विकसित किया, मेवात में उनके अध्यात्म रहस्यपूर्ण व्याख्यान से विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए। कुरुजांगल के लोगों का अज्ञान रोग दूर किया, वैराठ (जयपुर के आस पास) के लोगों को उभय मार्ग (सागार अनगार) दिखलाये, नमियाड (नीमाड) में जैन धर्म की प्रभावना की। भैरव राजा ने उनकी भक्ति की, इन्द्रराज ने चरण पूजे, राजाधिराज देवराज ने चरणों की आराधना की। जिन धर्म के आराधक मुदलियार, रामनाथराय, वोम्मरसराय, कलपराय, पान्डुराय आदि राजाओं ने पूजा की और उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। व्याकरण-छन्द-अलंकार-साहित्य-तर्क-आगम-अध्यात्म आदि शास्त्र रूपी कमलों पर विहार करने के लिए वे राज हंस थे और शुद्ध ध्यानामृत-पान की उन्हें लालसा थी [1]। उक्त विवरण कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण भी हो सकता है लेकिन इतना तो अवश्य है कि ज्ञानभूषण अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे और उन्होंने अपने त्याग एवं विद्वत्ता से सभी को मुग्ध कर रखा था।

ज्ञानभूषण भ० भुवनकीर्त्ति के पश्चात् सागवाडा में भट्टारक गादी पर बैठे। अब तक सबसे प्राचीन उल्लेख सम्वत् १५३१ वैशाख बुदी २ का मिलता है जब कि इन्होंने डूंगरपुर में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन किया था। उस समय डूंगरपुर पर रावल सोमदास एवं रानी गुराई का शासन था [2]। श्री जोहारपुरकर ने ज्ञानभूषण का भट्टारक काल संवत १५३४ से माना है [3] लेकिन यह काल

१. देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास
पृष्ठ संख्या ३८१-३८२

२. संवत् १५३१ वर्षे वैसाख वुदी ५ बुधे श्री मूलसंघे भ० श्री सकलकीर्त्तिस्तत्पट्टे भ. भुवनकीर्त्तिदेवास्तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषणदेवस्तदुपदेशात् मेघा भार्या टीगू प्रणमंति श्री गिरिपुरे रावल श्री सोमदास राज्ञी गुराई सुराज्ये।

३. देखिये-भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ संख्या-१५८

किस आधार पर निर्धारित किया है इसका कोई उल्लेख नहीं किया। श्री नाथूराम प्रेमी ने भी 'जैन साहित्य और इतिहास में' इनके काल के संबन्ध से कोई निश्चित मत नहीं लिखा। केवल इतना ही लिखकर छोड़ दिया कि 'विक्रम संवत १५३४-३५ और १५३६ के तीन प्रतिमा लेख और भी हैं जिनसे मालूम होता है कि उक्त संवतों में ज्ञानभूषण भट्टारक पद पर थे। डा० प्रेमसागर ने अपनी "हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि"[1] में इनका भट्टारक काल संवत १५३२-५७ तक समय स्वीकार किया हैं। लेकिन डूंगरपुर वाले लेख से यह स्पष्ट है कि ज्ञानभूषण संवत् १५३१ अथवा इससे पहिले भट्टारक गादी पर बैठ गये थे। इस पद पर वे संवत् १५५७-५८ तक रहे। संवत १५६० में उन्होंने तत्वज्ञान तरंगिणी की रचना समाप्त की थी इसकी पुष्पिका में इन्होंने अपने नाम के पूर्व 'मुमुक्षु' शब्द जोड़ा है जो अन्य रचनाओं में नहीं मिलता। इससे ज्ञात होता है कि इसी वर्ष अथवा इससे पूर्व ही इन्होंने भट्टारक पद छोड दिया था।

संवत् १५५७ तक ये निश्चित रूप से भट्टारक रहे। इसके पश्चात इन्होंने अपने शिष्य विजयकीर्त्ति को भट्टारक पद देकर स्वयं साहित्य साधक एवं मुमुक्षु बन गये। वास्तव में यह भी उनके जीवन में उत्कृष्ट त्याग था क्योंकि उस युग में भट्टारकों की प्रतिष्ठा, मान सम्मान बड़े ही उच्चस्तर पर थी। भट्टारकों के कितने ही शिष्य एवं शिष्याएं होती थीं, श्रावक लोग उनके विहार के समय पलक पावड़े बिछाये रहते थे तथा सरकार की ओर से भी उन्हें उचित सम्मान मिलता था। ऐसे उच्च पद को छोडकर केवल आत्म चिंतन एवं साहित्य साधना में लग जाना ज्ञानभूषण जैसे सन्त से ही हो सकता था।

ज्ञानभूषण प्रतिभापूर्ण साधक थे। उन्होंने आत्म साधना के अतिरिक्त ज्ञानाराधना, साहित्य साधना, सांस्कृतिक उत्थान एवं नैतिक धर्म के प्रचार में अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया। पहिले उन्होंने स्वयं ने अध्ययन किया और शास्त्रों के गम्भीर अर्थ को समझा। तत्वज्ञान की गहराइयों तक पहुँचने के लिए व्याकरण, न्याय सिद्धान्त के बड़े २ ग्रंथों का स्वाध्याय किया और फिर साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम उन्होंने स्तवन एवं पूजाष्टक लिखे फिर प्राकृत ग्रंथों की टीकाएं लिखी। रास एवं फागु साहित्य की रचना कर साहित्य को नवीन मोड़ दिया और अन्त में अपने संपूर्ण ज्ञान का निचोड़ तत्वज्ञान तरंगिणी में डाल दिया।

साहित्य सृजन के अतिरिक्त सैकड़ों ग्रंथों की प्रतिलिपियां करवा कर साहित्य के भण्डारों को भरा तथा अपने शिष्य प्रशिष्यों को उनके अध्ययन के लिए प्रोत्साहित

---

१. देखिये हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि-पृष्ठ संख्या ७३

किया तथा समाज को विजयकीर्त्ति एवं शुभचन्द्र जैसे मेधावी विद्वान दिए। बौद्धिक एवं मानसिक उत्थान के अतिरिक्त इन्होंने सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भी पूर्ण योग दिया। आज भी राजस्थान एवं गुजरात प्रदेश के सैंकड़ों स्थानों के मंदिरों में उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तियां विराजमान हैं। सह अस्तित्व की नीति को स्वयं में एव जन मानस में उतारने में उन्होंने अपूर्व सफलता प्राप्त की थी और सारे भारत को अपने विहार से पवित्र किया। देशवासियों को उन्होंने अपने उपदेशामृत का पान कराया एवं उन्हें बुराइयों से बचने के लिए प्रेरणा दी। ज्ञानभूषण का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। श्रावकों एवं जनता को वश में कर लेना उनके लिए अत्यधिक सरल था। जब वे पद यात्रा पर निकलते तो मार्ग के दोनों ओर जनता कतार बांधे खड़ी रहती और उनके श्रीमुख से एक दो शब्द सुनने को लालायित रहती। ज्ञान-भूषण ने श्रावक धर्म का नैतिक धर्म के नाम से उपदेश दिया। अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह के नाम पर एक नया सन्देश दिया। इन्हें जीवन में उतारने के लिए वे घर घर जाकर उपदेश देते और इस प्रकार वे लोगों की श्रृद्धा एवं भक्ति के प्रमुख सन्त बन गए। श्रावक के दैनिक षट् कर्म को पालन करने के लिए वे अधिक जोर देते।

प्रतिष्ठाकार्य संचालन

भारतीय एवं विशेषतः जैन संस्कृति एवं धर्म की सुरक्षा के लिये उन्होंने प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार, नवीन-मंदिर निर्माण, पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठायें, सांस्कृतिक समारोह, उत्सव एवं मेलों आदि के आयोजनों को प्रोत्साहित किया। ऐसे आयोजनों में वे स्वयं तो भाग लेते ही थे अपने शिष्यों को भी भेजते एवं अपने भक्तों से भी उनमें भाग लेने के लिये उपदेश देते।

भट्टारक बनते ही इन्होंने सर्व प्रथम संवत् १५३१ में डूंगरपुर में २३" × १८" अवगाहना वाले सहस्त्रकूट चैत्यालय की प्रतिष्ठा का सञ्चालन किया, इनमें से ६ चैत्यालय तो डूंगरपुर के ऊंडा मन्दिर में ही विराजमान हैं। इस समय डूंगरपुर पर रावल सोमदास का राज्य था। इन्हीं के द्वारा संवत १५३० फाल्गुण सुदी १० में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव के समय की प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ कितने ही स्थानों पर मिलती हैं[1]।

१. संवत् १५३४ वर्षे फाल्गुण सुदी १० गुरौ श्री मूलसंघे भ. सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री भुवनकीर्त्तिस्त० भ. ज्ञानभूषणगुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय साह वाइदो भार्या छिवाई सुत सा. डूंगा भगिनी वीरदास भगनी प्रनाडी भार्थ्य सान्ता एते नित्यं प्रणमंति।

संवत् १५३५ में इन्होंने दो प्रतिष्ठाओं में भाग लिया जिसमें एक लेख जयपुर[1] के छावड़ों के मंदिर में तथा दूसरा लेख उदयपुर[2] के मंदिर में मिलता है। संवत् १५४० में हूंबड जातीय श्रावक लाखा एवं उसके परिवार ने इन्हीं के उपदेश से आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी[3]। इसके एक वर्ष पश्चात् ही नागदा जाति के श्रावक श्राविकाओं ने एक नवीन प्रतिष्ठा का आयोजन किया जिसमें भ. ज्ञानभूषण प्रमुख अतिथि थे। इस समय की प्रतिष्ठापित चन्द्रप्रभ स्वामी की एक प्रतिमा डूंगरपुर के एक प्राचीन मन्दिर में विराजमान[4] है। इसके पश्चात् तो प्रतिष्ठा महोत्सवों की धूम सी मच गई। संवत १५४३, ४४ एवं संवत् १५४५ में विविध प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुए। १५५२ में डूंगरपुर में एक वृहद् आयोजन हुआ जिसमें विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुये। इसी समय की प्रतिष्ठापित नेमिनाथ

---

१. संवत् १५३५ वर्षे माघ सुदी ५ गुरौ श्री मूलसंघे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति त० भ० श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात्....गोत्रे सा. माला भा० त्रापु पुत्र संघपति सं० गोइन्द भार्या राजलदे भ्रातृ सं० भोजा भा० लीलन सुत जीवा जोगा जिणदास सांझा सुरताण एतैः अष्टप्रातिहार्यचतुर्विंशतिका प्रणमंति।

२. संवत् १५३५ श्री मूलसंघे भ० श्री भुवनकीर्त्ति त० भ० श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् श्रेष्टि हासा भार्या हासले सुत समधरा भार्यापामी सुत नाथा भार्या सारू भ्राता गोइआ भार्या पांचू भ्रा० महिराज भ्रा० जेसा रूपा प्रणमंति।

३. संवत् १५४० वर्षे वैशाख सुदी ११ गुरौ श्री मूलसंघे भ० श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ० भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ० ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूंवड ज्ञातीय सा० लाखा भार्या माल्हणदे सुत हीरा भार्या हरषू भ्रा. लाला रामति तत् पुत्र द्वौ० धन्ना, वन्ना राजा विरुषा साहा जेसा बेणा आणंद वाछा राहूया अभय कुमार एते श्री आदिनाथं प्रणमंति।

४. संवत् १५४१ वर्षे वैसाख सुदी ३ सोमे श्री मूलसंघे भ० ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् नागदा ज्ञातीय पंडवाल गोत्रे सा. वाछा भार्या जसभी सुत देपाल भार्या गुरी सुत सिहिसा भार्या चमकू एते चन्द्रप्रभं नित्यं प्रणमंति।

की प्रतिमा डूंगरपुर के ऊंडे मन्दिर में विराजमान[1] है। यह संभवतः आपके कर कमलों से सम्पादित होने वाला अन्तिम समारोह था। इसके पश्चात् संवत् १५५७ तक इन्होंने कितने आयोजनों में भाग लिया इसका अभी कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। संवत् १५६०[2] व १५६१[3] में सम्पन्न प्रतिष्ठाओं के अवश्य उल्लेख मिले हैं। लेकिन वे दोनों ही इनके पट्ट शिष्य भ० विजयकीर्त्ति द्वारा सम्पन्न हुए थे। उक्त दोनों ही लेख डूंगरपुर के मन्दिर में उपलब्ध होते हैं।

सहित्य साधना

ज्ञानभूषण भट्टारक बनने से पूर्व और इस पद को छोड़ने के पश्चात् भी साहित्य-साधना में लगे रहे। वे जबरदस्त सहित्य-सेवी थे। प्राकृत संस्कृत हिन्दी गुजराती एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी में मौलिक कृतियां निबद्ध की और प्राकृत ग्रंथों की संस्कृत टीकाएें लिखी। यद्यपि संख्या की दृष्टि से इनकी कृतियां अधिक नहीं हैं फिर भी जो कुछ हैं वे ही इनकी विद्वत्ता एवं पांडित्य को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने इनके "तत्वज्ञानतरंगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, नेमिनिर्वाण की पञ्जिका टीका, पञ्चास्तिकाय, दशलक्षणोद्यापन, आदीश्वर फाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वतीपूजा" ग्रन्थों का उल्लेख किया है[4]। पंडित परमानन्द जी ने उक्त

---

१. संवत् १५५२ वर्षे ज्येठ वदी ७ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ. श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूंवड ज्ञातीय डूंडूकरण भार्या साणी सुत नानां भार्या हीरु सुत सांगा भार्या पहुती नेमिनाथ एतैः नित्यं प्रणमंति।

२. संवत् १५६० वर्षे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ. श्री विजयकीर्त्तिगुरूपदेशात् वाई श्री ग्रोर्द्धन श्रीबाई श्रीविनय श्रीविमान पंक्तिव्रत उद्यापने श्री चन्द्रप्रभ....।

३. संवत १५६१ वर्षे चैत्र वदी ८ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ. विजयकीर्त्ति गुरूपदेशात् हूंवड ज्ञातीय श्रेष्ठि लखमण भार्या मरगदी सुत श्रे० समधर भार्या मचकू सुत श्रे० गंगा भार्या वल्लि सुत हरखा होरा झठा नित्यं श्री आदीश्वर प्रणमंति वाई मचकू पिता दोसी रामा भार्या पूरी पुत्री रंगी एते प्रणमंति।

४. देखिये पं. नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास—पृष्ठ - ३८२

रचनाओं के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्म संबोधन आदि का और उल्लेख किया है[1]। इधर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भंडारों की जब से लेखक ने खोज एवं छानबीन की है तब से उक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनके और भी ग्रन्थों का पता लगा है। अब तक इनकी जितनी रचनाओं का पता लग पाया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत ग्रंथ

१. आत्मसंबोधन काव्य
२. ऋषिमंडल पूजा[2]
३. तत्वज्ञान तरंगिनी
४. पूजाष्टक टीका
५. पञ्चकल्याणकोद्यापन पूजा[3]
६. भक्तामर पूजा[4]
७. श्रुत पूजा[5]
८. सरस्वती पूजा[6]
९. सरस्वती स्तुति[7]
१०. शास्त्र मंडल पूजा[8]

हिन्दी रचनायें

१. आदीश्वर फाग
२. जलगालण रास
३. पोसह रास
४. षट्कर्म रास
५. नागद्रा रास

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त अभी इनकी और भी कृतियां उपलब्ध होने की संभावना है। अब यहां आत्मसंबोधन काव्य, तत्वज्ञानतरंगिणी, पूजाष्टक टीका, आदीश्वर फाग, जलगालन रास, पोसह रास एवं षट्कर्म रास का संक्षिप्त वर्णन उपस्थित किया जा रहा है।

आत्मसंबोधन काव्य

अपभ्रंश भाषा में इसी नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है जिसके कर्त्ता १५ वीं शताब्दि के महापंडित रइधू थे। प्रस्तुत आत्मसंबोधन काव्य भी उसी काव्य

१. देखिये पं. परमानन्द जी का "जैन-ग्रंथ प्रशस्ति-संग्रह"

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग चतुर्थ पृष्ठ संख्या–४६३

३. वही पृष्ठ संख्या ६५०
४. वही पृष्ठ संख्या ५२३
५. वही पृष्ठ संख्या ५३७
६. वही पृष्ठ संख्या ५१५
७. वही पृष्ठ संख्या ६५७

की रूपरेखा पर लिखा हुआ जान पड़ता है। इसकी एक प्रति जयपुर के बाबा दुलीचन्द के शास्त्र भंडार में संग्रहीत है लेकिन प्रति अपूर्ण है और उसमें प्रारम्भ का प्रथम पृष्ठ नहीं है। यह एक आध्यात्मिक ग्रंथ है और कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से जान पड़ता है।

२. तत्वज्ञानतरंगिणी

इसे ज्ञानभूषण की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती हैं। इसमें शुद्ध आत्म तत्त्व की प्राप्ति के उपाय बतलाये गये हैं। रचना अधिक बड़ी नहीं है किन्तु कवि ने उसे १८ अध्यायों में विभाजित किया है। इसकी रचना सं० १५६० में हुई थी जब वे भट्टारक पद छोड़ चुके थे और आत्मतत्व की प्राप्ति के लिए मुमुक्षु बन चुके थे। रचना काव्यत्वपूर्ण एवं विद्वत्ता को लिए हुये है।

भेदज्ञानं विना न शुद्धचिद्रूप ध्यानसंभवः
भवेन्नैव यथा पुत्र संभूति जनकं विना ॥१०।३॥

× × × ×

न द्रव्येण न कालेन न क्षेत्रेण प्रयोजनं।
केनचिन्नैव भावेन न लब्धे शुद्धचिदात्मके ॥७।४॥
परमात्मा परं ब्रह्म चिदात्मा सर्वद्रक शिवः।
नामानीमान्यहो शुद्ध चिद्रू पस्यैव केवलं ॥८।४॥

× × × ×

ये नरा निरहंकारहं वितत्वंति प्रतिक्षणं।
अर्द्ध तर्तश्च चिद्रूपं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥४।१०॥

३. पूजाष्टक टीका—

इसकी एक हस्तलिखित प्रति संभवनाथ दि० जैन मंदिर उदयपुर में संग्रहीत है। इसमें स्वयं ज्ञानभूषण द्वारा विरचित आठ पूजाओं की स्वोपज्ञ टीका हैं। कृति में १० अधिकार हैं और उसकी अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार हैं—

इति भट्टारक श्री भुवनकीर्त्तिशिष्यमुनिज्ञानभूषणविरचितायां स्वकृताष्टकदशकटीकायां विद्वज्जनवल्लभासंज्ञायां नन्दीश्वरद्वीपजिनालयार्चनवर्णनीय नामा दशमोऽधिकारः ॥

यह ग्रन्थ ज्ञानभूषण ने जब मुनि थे तब निबद्ध किया गया था। इसका रचना काल संवत् १५२८ एवं रचना स्थान डूंगरपुर का आदिनाथ चैत्यालय है।[1]

१. श्रीमद् विक्रमभूपराज्यसमयातीते वसुद्वींद्रियक्षोणी—
सम्मितहायके गिरपुरे नाभेयचैत्यालये।
अस्ति श्री भुवनादिकीर्तिमुनयस्तस्यांसि संसेविना,
स्वोक्ते ज्ञानविभूषणेन मुनिना टीका शुभेयं कृता ॥१॥

४. आदिश्वर फाग

'आदीश्वर फाग' इनकी हिन्दी रचनाओं में प्रसिद्ध रचना है। फागु संज्ञक काव्यों में इस कृति का विशिष्ट स्थान है। जैन कवियों ने काव्य के विभिन्न रूपों में संस्कृत एवं हिन्दी में साहित्य लिखा है उससे उनके काव्य रसिकता की स्पष्ट झलक मिलती है। जैन कवि पक्के मनो वैज्ञानिक थे। पाठकों की रुचि का वे पूरा ध्यान रखते थे इसलिये कभी फागु, कभी रास, कभी वेलि एवं कभी चरित संज्ञक रचनाओं से पाठकों के ज्ञान की अभिवृद्धि करते रहते थे।

'आदीश्वर फाग' इनकी अच्छी रचना है, जो दो भाषा में निबद्ध है इसमें भगवान आदिनाथ के जीवन का संक्षिप्त वर्णन हैं जो पहले संस्कृत एवं फिर हिन्दी में वर्णित है। कृति में दोनों भाषाओं के ५०१ पद्य हैं जिनमें २६२ हिन्दी के तथा शेष २३९ पद्य संस्कृत के हैं। रचना की श्लोक सं० ५९१ है।

कवि ने रचना के प्रारम्भ में विषय का वर्णन निम्न छन्द में किया है:—

आहे प्रणमयि भगवति सरसति जगति विबोधन माय।
गाइस्यूं आदि जिणंद, सुरिंदवि वंदित पाय ॥२॥

× × × ×

आहे तस घरि मरुदेवी रमणीय, रमणीय गुण गणखाणि।
रूपिरं नहीं कोइ तोलइ बोलइ मधुरीय वाणि ॥१०॥

माता मरुदेवी के गर्भ में आदिनाथ स्वामी के आते ही देवियों द्वारा माता की सेवा की जाने लगी। नाच-गान होने लगे एवं उन्हें प्रतिपल प्रसन्न रखा जाने लगा।

आहे एक कटी तटि बांधइ हंसतीय रसना लेवि।
नेउर कांवीय लांबीय एक पहिरावइ देवि ॥१७॥

आहे अंगुलीइं पगि वीछीया वीछीयनु आकार।
पहिरावइ अंगुथला, अंगूठइ सणगार ॥१८॥

आहे कमल तणी जिसी पांखड़ी आंखड़ी आंजइ एक।
सींदूर घालइ सइथइ गूथंइ वेणी एक ॥१९॥

आहे देवीय तेवड़ तेवड़ी केवड़ी ना लेई फूल।
प्रगट मुकट रचना करइ तेह तणूं नहीं भूल ॥२०॥

आदिनाथ का जन्म हुआ। देवों एवं इन्द्रों ने मिलकर खूब उत्सव मनाये। पांडुक शिला पर ले जाकर अभिषेक किया और वालक का नाम ऋषभदेव रखा गया—

आहे अभिषव पूरउ सीधउ कीधउ अंगि विलेय।
आंगीय अंगि कारवाउ कीधउ वहू आक्षेप ॥८४॥
आहे आणीय वहुत विभूषण दूषण रहित अभंग।
पहिराव्या ते मनि रली वली वली जोग्रइ अंग ॥८५॥
आहे नाम वषभ जिन दीधउ कीधउ नाटक चंग।
रूप निरुपम देखीय हरषिइ भरीयां अंग ॥८६॥

'वालक आदिनाथ' दिन २ बड़े होने लगे। उनको खिलाने, पिलाने, स्नान कराने आदि के लिये अलग अलग सेविकाएं थी। देवियां अलग थी। इसी 'वाल-लीला' एक वर्णन देखिए:—

आहे देवकुमार रमाडइ मातज माउर क्षीर।
एक धरइ मुख आगलि आणीय निरमल नीर ॥९३॥
आहे एक हंसावइ ल्यावइ कइडि चडावीय वाल।
नीति नहीय नहीय सलेखन नइ मुखि लाल ॥९४॥
आहे आंगीय अंगि अनोपम उपम रहित शरीर।
टोपीय उपीय मस्तकि वालक छइ पणवीर ॥९५॥
आहे कानेय कुंडल झलकइ खलकइ नेउर पाइ।
जिम जिम निरखइ हरखइ हियडइ तिय तिय माइ ॥९६॥

आदिनाथ ने बड़े ठाट-वाट से राज्य किया। उनके राज्य में सारी प्रजा आनन्द से रहती थी। वे इन्द्र के समान राज्य-कार्य करते थे।

आहे नाभि नरेश सुरेश, मिलीनइ दीधउ राज।
सर्व प्रजा व्रज हरखीउ, हरखीउ देव समाज ॥१५४॥

एक दिन नीलंजना नामकीदेव नर्तकी उनके सामने नृत्य कर रही थी कि वह देखते २ मर गयी। आदिनाथ को यह देख कर जगत से उदासीनता हो गयी।

आहे धिग २ इह संसार, वेकार अपार असार।
नहीं सम मार समान कुमार रमा परिवार ॥१६४॥
आहे घर पुर नगर नहीं निज रज सम राज अकाज।
हय गय पयदल चल मल सरिखउ नारि समाज ॥१६५॥

आहे आयु कमल दल सम चंचल चपल शरीर ।
यौवन धन इव अथिर करम जिय करतल नीर ॥१६६॥
आहे भोग वियोग समन्नित रोग तणूं घर अंग ।
मोह महा मुनि निंदित निंदित नारीय संग ॥१६७॥
आहे छेदन भेदन वेदन दीठीय नरग मझारि ।
भामिनी भोग तणइ फलि तउ किम वांछइ नारि ॥

इस प्रकार 'आदिनाथ फाग' हिन्दी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसकी भाषा को हम 'गुजराती प्रभावित राजस्थानी का नाम दे सकते हैं।

रचनाकाल:—यद्यपि 'ज्ञान भूषण' ने इस रचना का कोई समय नहीं दिया है, फिर भी यह संवत् १५६० पूर्व की रचना है—इसमें कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि तत्वज्ञानतरंगिणी (संवत् १५६०) भ० ज्ञानभूषण की अन्तिम रचना गिनी जाती है।[1]

उपलब्धि स्थान:—'ज्ञान भूषण' की यह रचना लोकप्रिय रचना है। इसलिए राजस्थान के कितने ही शास्त्र-भण्डारों में इसकी प्रतियां मिलती हैं। आमेर शास्त्र भण्डार में इसकी एक प्रति सुरक्षित है।

५. पोसह रास :

यह यद्यपि व्रत-विधान के महात्म्य पर आधारित रास हैं, लेकिन भाषा एवं शैली की दृष्टि से इसमें रासक काव्य जैसी सरसता एवं मधुरता आ गयी है। 'पोषह रास' के कर्त्ता के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। पं. परमानन्द जी एवं डॉ. प्रेमसागर जी के मतानुसार यह कृति भ. वीरचन्द के शिष्य भ. ज्ञानभूषण की होनी चाहिए; जब कि स्वयं कृति में इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। कवि ने कृति के अन्त में अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है:—

वारि रमणिय मुगतिज सम अनुप सुख अनुभवइ ।
भव म कारि पुनरपि न आवइ इह वू फलजस गमइ ।
ते नर पोसह कांन भावइ एणि परि पोसह धरइज नर नारि सुजण ।
ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते नर करइ वरवाण ॥१११॥

---

१. डॉ० प्रेमसागर जी ने इस कृति का जो संवत् १५५१ रचनाकाल बतलाया है वह संभवत: सही नहीं है। जिस पद्य को उन्होंने रचनाकाल वाला पद्य माना है, वह तो उसकी श्लोक संख्या वाला पद्य है
हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि : पृष्ठ सं० ७५

वैसे इस रास की 'भाषा' अपभ्रंश प्रभावित भाषा है, किन्तु उसमें लावण्य की भी कमी नहीं है।

संसार तणउ विनासु किम डुसइ राम चिंतवइ ।
त्रोडयु मोहनुपास वलीयवती तेह नित चीइ ॥९८॥

इस रास की राजस्थान के जैन शास्त्र भडारों में कितनी ही प्रतियां मिलती हैं।

६. षट्कर्म रास :

यह कर्म-सिद्धांत पर आधारित लघु रासक काव्य है जिसमें, इस प्राणी को प्रतिदिन देव पूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप एवं दान–इन षट्कर्मों के पालन करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। इसमें ५३ छन्द है और अन्तिम छन्द में कवि ने अपने नाम का किस प्रकार परि-उल्लेख किया है, उसे देखिये—

सुण उ श्रावक सुणउ श्रावक एह षट्कर्म्म ।
घरि रहइतां जे आचरइ, ते नर पर भवि स्वर्ग पामइ ।
नरपति पद पामी करीय, नर सघला नइ पाइ नामइ ।
समकित धरतां जु धरइ, श्रावक ए आचार ।
ज्ञानभूषण गुरु इम भणइ, ते पामइ भवपार ॥

७. जलगालन रास :

यह एक लघु रास है, जिसमें जल छानने की विधि का वर्णन किया गया है। इसकी शैली भी षट्कर्म रास एवं पोसह रास जैसी है। इसमें ३३ पद्य हैं। कवि ने अपने नाम का अन्तिम पद्य में उल्लेख किया है:—

गलउ पाणीय गलउ पाणीय य तन मन रंगि,
हृदय सदय कोमल धरु धरम तणूं एह मूल जाणउ ।
कुह्यूं नीलू गंध करइ ते पाणी तृप्ति धरिम आणउ ।
पाणीय आणीय यतन करी, जे गलसिइ नर-नारि ।
श्री ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते तरसिइ संसारि ॥३३॥

'भ० ज्ञानभूषण' की मृत्यु संवत् १५६० के बाद किसी समय हुई होगी। लेकिन निश्चित तिथि की अभी तक खोज नहीं हो सकी है।

ग्रंथ लेखन कार्य :

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त अक्षयनिधि पूजा आदि और भी कृतियां हैं।

रचनायें निबद्ध करने के अतिरिक्त ज्ञानभूषण ने ग्रन्थों की प्रतिलिपियां करवा कर शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत कराने में भी खूब रस लिया है। आज भी राजस्थान के शास्त्र भण्डरों में इनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा लिखित कितनी ही प्रतियां उपलब्ध होती हैं। जिनका कुछ उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है; —

१. संवत् १५४० आसोज बुदी १२ शनिवार को ज्ञानभूषण के उपदेश से धनपाल कृत भविष्यदत्त चरित्र की प्रतिलिपि मुनि श्री रत्नकीर्त्ति को पठनार्थ भेंट दी गई।

प्रशास्ति संग्रह–पृष्ठ सं. १४९

२. संवत् १५४१ माह बुदी ३ सोमवार डूंगरपुर में इनकी गुरु वहिन शांति गौतम श्री के पठनार्थ आशाधर कृत धर्मामृतपंजिका की प्रतिलिपि की गयी।

(ग्रन्थ संख्या–२६० शास्त्र भंडार ऋषभदेव)

३ संवत् १५४९ आषाढ सुदी २ सोमवार को इनके उपदेश से वसुनंदि पंचविंशति की प्रति ब्र. माणिक के पठनार्थ लिखी गई।

ग्रन्थ सं. २०४ संभवनाथ मन्दिर उदयपुर।

३. संवत् १५५३ में गिरिपुर (डूंगरपुर) के आदिनाथ चैत्यालय में सकलकीर्त्ति कृत प्रश्नोत्तर श्रावकाचार की प्रतिलिपि इनके उपदेश से हूंवड ज्ञातीय श्रेष्ठि ठाकुर ने लिखवाकर माघनंदि मुनि को भेंट की।

भट्टारकीय शास्त्र भंडार अजमेर ग्रन्थ सं. १२२

४. संवत् १५५५ में अपनी गुरु वहिन के लिये ब्रह्म जिनदास कृत हरिवंश पुराण की प्रतिलिपि कराई गयी।

प्रशास्ति संग्रह-पृष्ठ ७३

५. संवत् १५५५ आषाढ बुदी १४ कोटस्याल के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में ज्ञानभूषण के शिष्य ब्रह्म नरसिंह के पढ़ने के लिये कातन्त्र रुपमाला वृत्ति की प्रतिलिपि करवा कर भेंट की गई।

संभवनाथ मंदिर शास्त्र भंडार उदयपुर
ग्रन्थ संख्या–२०९

६. संवत् १५५७ में इनके उपदेश से महेश्वर कृत शब्दभेदप्रकाश की प्रतिलिपि की गई।

ग्रन्थ संख्या–११२ अग्रवाल मंदिर उदयपुर

७. संवत् १५५६ में ज्ञानभूषण के भाई आ. रत्नकीर्त्ति के शिष्य ब्र. रत्नसागर ने गंधार मंदिर के पार्श्वनाथ चैत्यालय में पुष्पदंत कृत यशोधरचरित्र की प्रतिलिपि करवायी थी।

प्रशास्ति संग्रह पृ. ३८६

८. संवत् १५५७ अषाढ बुदी १४ के दिन ज्ञानभूषण के उपदेश से हूंवड जातीय श्री श्रेष्ठी जइता भार्यो पांचू ने महेश्वर कवि द्वारा विरचित शब्दभेदप्रकाश की प्रतिलिपि करवायी।

ग्रन्थ संख्या–२८ अग्रवाल मंदिर उदयपुर

९. संवत् १५५८ में ब्र. जिनदास द्वारा रचित हरिवंश पुराण की प्रति इन्हीं के प्रमुख शिष्य विजयकीर्त्ति को भेंट दी गई देउल ग्राम में—

ग्रन्थ संख्या–२४७ शास्त्र भंडार उदयपुर

ज्ञानभूषण के पश्चात् होने वाले कितने ही विद्वानों के इनका आदर पूर्वक स्मरण किया है। भ. शुभचंद की दृष्टि में न्यायशास्त्र के पारंगत विद्वान थे एवं उन्होंने अनेक शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की थी। सकल भूषण ने इन्हें ज्ञान से विभूषित एवं पांडित्य पूर्ण बतलाया है तथा इन्हें सकलकीत्ति की परम्परा में होने वाले भट्टारकों में सूर्य के समान कहा है।

ज्ञानभूषण की मृत्यु संवत् १५६० के बाद किसी समय हुई होगी ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

मूल्यांकन :

'भट्टारक ज्ञानभूषण' साहित्य-गगन में उस सयम अवतरित हुए जब हिन्दी-भाषा जन-साधारण की शनैः शनैः भाषा बन रही थी। उस समय गोरखनाथ, विद्यापति एवं कबीरदास जैसे जैनेतर कवि एवं स्वयम्भू, पुष्पदन्त, वीर, नयनन्दि, राजसिंह, सधारु और ब्रह्म-जिनदास जैसे जैन-विद्वान् हो चुके थे। इन विद्वानों ने 'हिन्दी-साहित्य' को अपने अनुपम ग्रन्थ भेंट किये थे। जनता जिन्हें चाव के साथ पढा करती थी। 'भ. ज्ञानभूषण' ने भी 'आदिनाथ फागु' जैसी चरित प्रधान रचना जन-साधारण की ज्ञानाभिवृद्धि के लिए लिखी तथा जलगालन रास, पोसह रास, एवं षट्कर्मरास जैसी रचनाएँ अपने भक्त एवं शिष्यों के स्वाध्यायार्थं लिखीं। इन रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य संभवतः जन-साधारण के नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन को ऊंचा उठाये रखना था। यद्यपि काव्य की दृष्टि से ये रचनाएँ कोई उच्चस्तरीय रचनाएँ नहीं है, किन्तु कवि की अभि-रुचि देखने योग्य है कि

उसने पानी छानकर विधि बतलाने के लिए, व उपवास के महात्म्य को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही रासक-काव्यों की रचना में सफलता प्राप्त की। ये रासक-काव्य गीति-प्रधान काव्य हैं, जिन्हें समारोहों के अवसरों पर जनता के सामने अच्छी तरह रखा जा सकता है।

भ० विजयकीर्त्ति

१५ वीं शताब्दि में भट्टारक सकलकीर्ति ने गुजरात एवं राजस्थान में अपने त्यागमय एवं विद्वतापूर्ण जीवन से भट्टारक संस्था के प्रति जनता की गहरी आस्था प्राप्त करने में महान सफलता प्राप्त की थी। उनके पश्चात इनके दो सुयोग्य शिष्य प्रशिष्यों : भ० भुवनकीर्ति एवं भ० ज्ञानभूषण: ने उसकी नींव को और भी दृढ़ करने में अपना योग दिया। जनता ने इन साधुओं का हार्दिक स्वागत किया और उन्हें अपने मार्गदर्शक एवं धर्म गुरू के रूप में स्वीकार किया। समाज में होने वाले प्रत्येक धार्मिक एवं साँस्कृतिक तथा साहित्यिक समारोहों में इनसे परामर्श लिया जाने लगा तथा यात्रा संघों एवं बिम्बप्रतिष्ठाओं में इनका नेतृत्व स्वतः ही अनिवार्य मान लिया गया। इन भट्टारकों के विहार के अवसर पर धार्मिक जनता द्वारा इनका अपूर्व स्वागत किया जाता और उन्हें अधिक से अधिक सहयोग देकर उनके महत्व को जनसाधारण के सामने रखा जाता। ये भट्टारक भी जनता के अधिक से अधिक प्रिय बनने का प्रयास करते थे। ये अपने सम्पूर्ण जीवन को समाज एवं संस्कृति की सेवा में लगाते और अध्ययन, अध्यापन एवं प्रवचनों द्वारा देश में एक नया उत्साहप्रद वातावरण पैदा करते।

विजयकीर्ति ऐसे ही भट्टारक थे जिनके बारे में अभी बहुत कम लिखा गया है। ये भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य थे और उनके पश्चात भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठापित भट्टारक गादी पर बैठे थे। इनके समकालीन एवं बाद में होने वाले कितने ही विद्वानो ने अपनी ग्रंथ प्रशस्तियों में इनका आदर भाव से स्मरण किया है। इनके प्रमुख शिष्य भट्टारक शुभचन्द ने तो इनकी अत्यधिक प्रशंसा की है और इनके संबंध में कुछ स्वतंत्र गीत भी लिखे हैं। विजयकीर्ति अपने समय के समर्थ भट्टारक थे। उनकी प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता काफी अच्छी थी यही बात है कि ज्ञानभूषण ने उन्हें अपना पट्टाधिकारी स्वीकृत किया और अपने ही समक्ष उन्हें भट्टारक

पद देकर स्वयं साहित्य सेवा में लग गये।

विजयकीर्ति के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है लेकिन भ० शुभचन्द के विभिन्न गीतों के आधार पर ये शरीर से कामदेव के समान सुन्दर थे। इनके पिता का नाम साह गंगा तथा माता का नाम कुंअरि था।

साहा गंगा तनयं करउ विनयं शुद्ध गुरू
शुभ वंसह जातं कुअरि मातं परमपरं
साक्षादि सुवुद्धं जी कीइ शुद्धं दलित तमं ।
सुरसेवत पायं मारीत मायं मथित तमं ॥१०॥
:शुभचन्द्र कृत गुरूछन्द गीत।

वाल्यकाल में ये अधिक अध्ययन नहीं कर सके थे। लेकिन भ०ज्ञानभूषण के संपर्क में आते ही इन्होंने सिद्धान्त ग्रंथों का गहरा अध्ययन किया। गोमट्टसार लब्धिसार त्रिलोकसार आदि सैद्धान्तिक ग्रंथों के अतिरिक्त न्याय, काव्य, व्याकरण आदि के ग्रंथों का भी अच्छा अध्ययन किया और समाज में अपनी विद्वता की अद्भुत छाप जमा दी :

लब्धि सु गुमट्टसार सार त्रैलोक्य मनोहर।
कर्कश तर्क वितर्क काव्य कमलाकर दिणकर।
श्री मूलसंघि विख्यात नर विजयकीर्ति वाँछित करण।
जा चांदसूर ता लगि तयो जयह सूरि शुभचंद्र सरण।

इन्होंने जव साधु जीवन में प्रवेश किया तो ये अपनी युवावस्था के उत्कर्ष पर थे। सुन्दर तो पहिले से ही थे किन्तु यौवन ने उन्हें और भी निखार दिया था। इन्होंने साधु बनते ही अपने जीवन को पूर्णतः संयमित कर लिया और कामनाओं एवं षटरस व्यंजनों से दूर हट कर ये साधु जीवन की कठोर साधना में लग गये। ये अपनी साधना में इतने तल्लीन हो गये कि देश भर में इनके चरित्र की प्रशंसा होने लगी।

भ० शुभचन्द्र ने इनकी सुन्दरता एवं संयम का एक रूपक गीत में बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। रूपक गीत का संक्षिप्त निम्न प्रकार है।

जव कामदेव को भ० विजयकीर्ति की सुन्दरता एवं कामनाओं पर विजय का पता चला तो वह ईर्ष्या से जल भुन गया और क्रोधित होकर सन्त के संयम को डिगाने का निश्चय किया।

नाद एह वेरि वग्गि रंगि कोई नावीमो ।
मूलसंघि पट्ट बंध विविह भावि भावीयो ।
तसह भेरी ढोल नाद वाद तेह उपन्नो ।
भणि मार तेह नारि कवण आज नीपन्नो ।

कामदेव ने तत्काल देवांगनाओं को बुलाया और विजयकीर्ति के संयम को भंग करने की आज्ञा दी लेकिन जब देवांगनाओं ने विजयकीर्ति के बारे में सुना तो उन्हें अत्यधिक दुख हुआ और सन्त के पास जाने में कष्ट अनुभव करने लगीं। इस पर कामदेव ने उन्हें निम्न शब्दों से उत्साहित किया।

वयण सुनि नव कामिणी दुख धरिह महंत ।
कही विमासण मझहवी नवि वार्यो रहि कंत ॥१३॥
रे रे कामणि म करि तु दुखह
इन्द्र नरेन्द्र मगाव्या भिखह ।
हरि हर बंभमि कीया रंकह ।
लोय सव्व मम वसांहु निसंकह ॥१४॥

इसके पश्चात् क्रोध, मान, मद एवं मिथ्यात्व की सेना खड़ी की गई। चारों ओर वसन्त ऋतु जैसा सुहावनी ऋतु करदी गई जिसमें कोयल कुहु कुहु करने लगी और भ्रमर गुंजरने लगे। भेरी बजने लगी। इन सब ने सन्त विजयकीर्ति के चारों ओर जो माया जाल बिछाया उसका वर्णन कवि के शब्दों में पढ़िये।

वाल्लंत खेलंत चालंत धावंत धूणंत
धूजंत हाक्कंत पूरंत मोडंत
तुदंत भजंत खंजंत मुक्कंत मारंत रंगेण
फाडंत जाणंत घालंत फेडंत खग्गेण ।
जाणीय मार गमणं रमणं य तीसो ।
वोल्यावइ निज वलं सकलं सुधीसो ।
रायं गणंयता गयो बहु युद्ध कंती ॥१८॥

कामदेव की सेना आपस में मिल गई। बाजे बजने लगे। कितने ही सैनिक नाचने लगे। धनुषवाण चलने लगे और भीषण नाद होने लगा। मिथ्यात्व तो देखते ही डर गया और कहने लगा कि इस सन्त ने तो मिथ्यात्व रूपी महान विकार को पहिले ही पी डाला है। इसके पश्चात् कुमति की बारी आयी लेकिन उसे भी कोई सफलता नहीं मिली। मोह की सेना भी शीघ्र ही भाग गई। अन्त में स्वयं कामदेव ने कर्म रूपी सेना के साथ उस पर आक्रमण किया।

महामयण महीमर चडीयो गयवर, कम्मह परिकर साथि कियो
मछर मद माया व्यसन विकाया, पाखंड राया साथि लियो ।

उधर विजयकीर्ति ध्यान में तल्लीन थे । उन्होंने शम, दम एवं यम के द्वारा कामदेव और उसके साथियों की एक भी नहीं चलने दी जिससे मदन राज को उसी क्षण वहां से भागना पड़ा ।

झूंटा झूट करीय तिहाँ लग्गा, मयणराय तिहां ततक्षण भग्गा
आगति यो मयणाधिय नासइ, ज्ञान खडक मुनि अंतिहि प्रकासइ ।।२७।।

इस प्रकार इस गीत में शुभचन्द्र ने विजयकीर्ति के चरित्र की निर्मलता, ध्यान की गहनता एवं ज्ञान की महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला है । इस गीत में उनके महान व्यक्तित्व की झलक मिलती है ।

विजयकीर्ति के महान व्यक्तित्व की सभी परवर्ती कवियों एवं भट्टारकों ने प्रशंसा की है । ब्र० कामराज ने उन्हें सुप्रचारक के रूप में स्मरण किया है ।[1] भ० सकलभूषण ने यशस्वी, महामना, मोक्षसुखाभिलाषी आदि विशेषणों से उनकी कीर्ति का बखान किया है ।[2] शुभचन्द्र तो उनके प्रधान शिष्य थे ही, उन्होंने अपनी प्रायः सभी कृतियों में उनका उल्लेख किया है । श्रेणिक चरित्र में यतिराज, पुण्यमूर्ति आदि विशेषणों से अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है ।

जयति विजयकीर्तिः पुन्यमूर्तिः सुकीर्तिः
जयतु च यतिराजो भूमिपैः स्पृष्टपादः ।
नयनलिनहिमांशु ज्ञानभूपस्य पट्टे
विविध पर-विवादि क्ष्मांधरे वज्रपातः ।।

: श्रेणिकचरित्र :

भ० देवेन्द्रकीर्ति एवं लक्ष्मीचन्द चादवाड़ ने भी अपनी कृतियों में विजयकीर्ति का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है ।

---

१. विजयकीर्तियो भवन भट्टारकोपदेशिनः ।।७।।
जयकुमार पुराण

२. भट्टारकः श्रीविजयादिकीर्तिस्तदीयपट्टे वरलब्धकीर्तिः ।
महामना मोक्षसुखाभिलाषी बभूव जैनावनी यार्च्यपादः ।।
उपदेशरत्नमाला

१. विजयकीर्ति तस पटधारी, प्रगट्या पूरण सुखकार रे।
: प्रद्युम्न प्रबन्ध :

२. तिन पट विजयकीर्ति जैवंत, गुरू अन्यमति परवत समान
: श्रेणिक चरित्र :

सांस्कृतिक सेवा

विजयकीर्ति का समाज पर जबरदस्त प्रभाव होने के कारण समाज की गतिविधियों में उनका प्रमुख हाथ रहता था। इनके भट्टारक काल में कितनी ही प्रतिष्ठाएं हुई। मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार किया गया। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सम्पादन में भी इनका योगदान उल्लेखनीय रहा। सर्वप्रथम इन्होंने संवत् १५५७.१५६० और उसके पश्चात संवत् १५६१, १५६४,१५६८, १५७० आदि वर्षों में सम्पन्न होने वाली प्रतिष्ठाओं में भाग लिया और जनता को मार्गदर्शन दिया। इन संवतों में प्रतिष्ठित मूर्तियां डूंगरपुर, उदयपुर आदि नगरों के मन्दिरों में मिलती हैं। संवत् १५६१ में इन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक-चारित्र की महत्ता को प्रतिष्ठापित करने के लिए रत्नत्रय की मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया।[1]

स्वर्णकाल—विजयकीर्ति के जीवन का स्वर्णकाल संवत् १५५२ से १५७० तक का माना जा सकता है। इन १८ वर्षों में इन्होंने देश को एक नयी सांस्कृतिक चेतना दी तथा अपने त्याग एवं तपस्वी जीवन से देश को आगे बढ़ाया। संवत् १५५७ में इन्हें भट्टारक पद अवश्य मिल गया था। उस समय भट्टारक ज्ञानभूषण जीवित थे क्यों कि उन्होंने संवत् १५६० में 'तत्वज्ञान तरंगिणी' की रचना समाप्त की थी। विजयकीर्ति ने संभवतः स्वयं ने कोई कृति नहीं लिखी। वे केवल अपने विहार एवं प्रवचन से ही मार्ग दर्शन देते रहे। प्रचारक की दृष्टि से उनका काफी ऊंचा स्थान बन गया था और वे बहुत से राजाओं द्वारा भी सम्मानित थे[2]। वे शास्त्रार्थ एवं वाद विवाद भी करते थे और अपने अकाट्य तर्कों से अपने विरोधियों से अच्छी टक्कर लेते थे। जब वे बहस करते तो श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते और उनकी तर्कों को सुनकर उनके ज्ञान की प्रशंसा किया करते। भ० शुभचन्द्र ने अपने एक गीत में इनके शास्त्रार्थ का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ १४४

२. यः पूज्यो नृपमल्लिभैरवमहादेवेन्द्रमुख्यैर्नृपैः।
षटतर्कागमशास्त्रकोविदमतिजाग्रद्यशश्चंद्रमा ॥
भव्यांभोरुहभास्करः शुभकरः संसारविच्छेदकः।
सो व्याद्धीविजयादिकीर्तिमुनियो भट्टारकाधीश्वरः। वही पृष्ठ १०

वादीय वाद विटंब वादि मिगाल मद गंजन ।
वादीय कुंद कुदाल वादि श्रावय मन रंजन ।
वादि तिमिर हर भूरि, वारि नीर सह सुवाकर ।
वादि विटंवन वीर वादि निगाण गुण सागर ।
वादीन विवुव सरसति गछि मूलसंधि दिगंवर रह ।
कहिइ ज्ञानभूपण तो पट्टि श्री विजयकीर्ति जागी यतिवरह ।५।

इनके चरित्र ज्ञान एवं संयम के सम्बन्ध में इनके शिष्य शुभचन्द्र ने कितने ही पद्य लिखे हैं उनमें से कुछ का रसास्वादन कीजिये ।

सुरनर खग भर चारुचंद्र चर्चित चरणद्वय ।
समयसार का सार हंस भर चिंतित चिन्मय ।
दक्ष पक्ष शुभ मुक्ष लक्ष्य लक्षण पतिनायक
ज्ञान दान जिनगान अथ चातक जलदायक
कमनीय मूर्ति सुंदर सुकर वम्म शर्म कल्याण कर ।
जय विजयकीर्ति सूरीश कर श्री श्री वर्द्धन सौख्य वर ।।७।।
विशद विसंवद वादि वरन कुंड गंरु भेपज ।
दुर्नय वनद समीर वीर वंदित पद पंकज ।
पुन्य पयोवि सुचंद्र चंद्र चामीकर सुन्दर ।
स्फूर्ति कीर्ति विख्यात सुमूर्त्ति सोभित सुभ संवर ।
संसार संघ वहु दयी हर नागरमनि चारित्र वरा ।
श्री विजयकीर्ति सूरीस जयवर श्री वर्द्धन पंकहर ।।८।।

'भ० विजयकीर्त्ति' के समय में सागवाड़ा एवं नोतनपुर की समाज दो जातियों में विभक्त थी । 'विजयकीर्त्ति' वड़साजनों के गुरु कहलाने लगे थे । जव वे नोतनपुर आये तो विद्वान श्रावकों ने उनसे शास्त्रार्थ करना चाहा लेकिन उनकी विद्वता के सामने वे नहीं ठहर सके ।[2]

शिष्य परम्परा—

'विजयकीर्त्ति' के कितने ही शिष्य थे । उनमें से भ. शुभचन्द्र, वूचराज, ब्र. यशोवर आदि प्रमुख थे । वूचराज ने एक विजयकीर्त्ति गीत लिखा है, जिसमें विजयकीर्त्ति के उज्ज्वल चरित्र की अत्यधिक प्रशंसा की गई है । वे सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे

१. तिणि दिव वडिसाजनि सागवाड़ि सांतिनाथनि प्रतिष्ठा श्री विजयकर्त्ति कीनी ।
२. वही ....भट्टारक पट्टावलि, शास्त्र भण्डार डूंगरपुर ।

तथा चारित्र सम्राट थे।[1] इनके एक अन्य शिष्य ब्र. यशोधर ने अपने कुछ पदों में विजयकीर्ति का स्मरण किया है तथा एक स्वतंत्र गीत में उनकी तपस्या, विद्वत्ता एवं प्रसिद्धि के बारे में अच्छा परिचय दिया है। गीत[2] का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है:—

अनेक राजा चलण सेवि मानवी मेवाड़ ।
गूजर सोरठ सिंधु सहिजि अनेक मड भूपाल ॥

दक्षण मरहठ चीण कुंकण पूरवि नाम प्रसिद्ध ।
छत्रीस लक्षण कला बहुतरि अनेक विद्यारिधि ॥

आगम वेद सिद्धान्त व्याकरण भावि भवीयण सार ।
नाटक छन्द प्रमाण सूझि नित जपि नवकार ॥

श्री काष्टा संघि कुल तिलुरे यती सरोमणि सार ।
श्री विजयकीरति गिरुउ गणधर श्री संघकरि जयकार ॥४॥

---

१. पूरा पद देखिये—लेखक द्वारा सम्पादित—
राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ-सूची, चतुर्थ भाग– पृ. सं ६६६-६७ ।

२. विजयकीर्त्ति गीत, रजिस्टर नं. ७, पृ. सं. ६० । महावीर-भवन, जयपुर।

ब्रह्म बूचराज

'रूपक काव्यों' के निर्माता 'ब्रह्म बूचराज' हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित कवि हैं। इनकी एक रचना 'मयरा जुज्झ' इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उसकी प्रतिलिपियां उपलब्ध होती हैं। इनकी सभी कृतियाँ उच्चस्तर की हैं। 'बूचराज' भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। इसलिए उनको प्रशंसा में उन्होंने एक 'विनयकीर्ति गीत' लिखा, जिसका उल्लेख हम भ. विजयकीर्ति के परिचय में पहिले ही कर चुके हैं। विजयकीर्ति के अतिरिक्त ये 'भ० रत्नकीर्ति' के भी सम्पर्क में रहे थे। इसलिए उनके नाम का उल्लेख भी 'भुवनकीर्ति गीत' में किया गया है।[1]

'बूचराज' राजस्थानी विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक किसी भी कृति में उन्होंने अपने जन्म स्थान एवं माता-पिता आदि का परिचय नहीं दिया है, लेकिन इन रचनाओं की भाषा के आधार पर एवं भ० विजयकीर्ति के शिष्य होने के कारण इन्हें राजस्थानी विद्वान् ही मानना अधिक तर्क संगत होगा। वैसे ये सन्त थे। 'ब्रह्मचारी' पद इन्होंने धारण कर लिया था। इसलिये धर्म प्रचार एवं साहित्य-प्रचार की दृष्टि से ये उत्तरी भारत में विहार किया करते थे। राजस्थान, पंजाब, देहली एवं गुजरात इनके मुख्य प्रदेश थे। संवत् १५९१ में ये हिसार में थे और उस वर्ष वहीं चातुर्मास किया था। इसलिए १५९१ की भादवा शुक्ला पंचमी के दिन इन्होंने "संतोष जय तिलक" को समाप्त किया था। संवत् १५८२ में ये चम्पावती (चाटसू) में और इस वर्ष फाल्गुन सुदी १४ के दिन इन्हें 'सम्यक्त्व कौमुदी' की प्रतिलिपि भेंट स्वरूप प्रदान की गयी थी।[2]

---

१. सुर तरु संघ वालिउ चितामणि दुहिए दुहि।
महो घरि घरि ए पंच सवद वाजहि उछरंगिहिए ॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि।
जिणहं मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसम माल चढ़ावइ ॥
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटि उदयोसह गुरो।
श्री भुवनकीर्त्ति आसीरवादहि संघ कलियो सुरतरो ॥

—लेखक द्वारा सम्पादित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग

२. "संवत् १५८२ फाल्गुन सुदि १४ शुभ दिने..........चंपावती नगरे........
एतान् इदं शास्त्रं कौमुदीं लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्तं ॥

—लेखक द्वारा संपादित प्रशास्ति संग्रह-पृ ६३.

इन्होंने अपनी कृतियों में बूचराज के अतिरिक्त बूचा, वल्ह, वील्ह, अथवा वल्हव नामों का उपयोग किया है। एक ही कृति में दोनों प्रकार के नाम प्रयोग में आये हैं। इनकी रचनाओं के आधार से यह कहा जा सकता है कि बूचराज का व्यक्तित्व एवं मनोबल बहुत ही ऊंचा था। उन्होंने अपनी रचनाएँ या तो भक्ति एवं स्तवन पर आधारित की है अथवा उपदेश परक हैं-जिसमें मानव-मात्र को काम-वासना पर विजय प्राप्त करने तथा सन्तोष पूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया गया है।

समय

कविवर के समय के बारे में निश्चित तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता लेकिन इनकी रचनाओं के आधार पर इनका समय संवत् १५३० से १६०० तक का माना जा सकता है। इस तरह उन्होंने अपने जीवन-काल में भट्टारक भुवनकीर्त्ति, ज्ञानभूषण एवं विजयकीर्त्ति का समय देखा होगा तथा इनके सानिध्य में रहकर बहुत कुछ सीखने का अवसर भी प्राप्त किया होगा। ऐसा लगता है कि ये ग्रहस्थावस्था के पश्चात् संवत् १५७५ के आस पास ब्रह्मचारी बने होंगे तथा उसी के पश्चात् इनका ध्यान साहित्य रचना की ओर गया होगा। 'मयण जुज्झ' इनकी प्रथम रचना है जिसमें इन्होंने भगवान आदिनाथ द्वारा कामदेव पर विजय प्राप्त करने के रूप में संभवत: स्वयं के जीवन का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कवि की अभी तक जिन रचनाओं की खोज की जा सकी है वे निम्न प्रकार हैं।

१. मयणजुज्झ (मदनयुद्ध)
२. संतोष जयतिलक
३. चेतन पुद्गल धमाल
४. टंडाणा गीत
५. नेमिनाथ वसंतु
६. नेमीश्वर का बारहमासा
७. विभिन्न रागों में लिखे हुए ८ पद
८. विजयकीर्त्ति गीत

१. मयणजुज्झ

यह एक रूपक काव्य[1] है जिसमें भगवान् ऋषभदेव द्वारा कामदेव पराजय का वर्णन है। यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है, जिसका प्रमुख उद्देश्य "मनो-

---

१. साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन जयपुर के एक गुटके में इसकी एक प्रति संग्रहीत है।

विकारों के अधीन रहने पर मानव को मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती।" इसको पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है। काम मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त करने में बहुत बड़ी बाधा है, मोह, माया, राग एवं द्वेष काम के प्रबल सहायक हैं। वसन्त काम का दूत है, जो काम की विजय के लिए पृष्ठ भूमि बनाता है लेकिन मानव अनन्त शक्ति एवं ज्ञान वाला है यदि वह चाहे तो सभी विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। और इसी तरह भगवान ऋषभदेव भी अपने आत्मिक गुणों के द्वारा काम पर विजय प्राप्त करते हैं। कवि ने इस रूपक को बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

वसन्त कामदेव का दूत होने के कारण उसकी विजय के लिये पहिले जाकर अपने अनुरूप वातावरण बनाता है। वसन्त के आगमन का वृक्ष एवं लतायें तक नव पुष्पों से उसका स्वागत करती हैं। कोयल कुहू कुहू की रट लगा कर, एवं भ्रमर पंक्ति गुन्जार करती हुई उसके आगमन की सूचना देती है। युवतियां अपने आपको सज्जित करके भ्रमण करती हैं। इसी वर्णन को कवि के शब्दों में पढ़िए....

> वज्यउ नीसाण वसंत आयउ, छल्लकुंद सिखिल्लियं।
> सुगंध मलया पवण झुल्लिय, अवं कोइल्ल कुल्लियं।
> रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिह छाइयं।
> गावंति गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ॥३७॥
> जिन्ह कंडिल केस कलाव, कुंतिल मंग मुत्तिय धारिय।
> जिन्ह वीण मंवयंग लसंति चंदन गुंथि कुसुमंण वारियं।
> जिन्ह भवह धुणहर धनिय समुह्नर नवण बाण चडाइयं।
> गावंत गीय वजंति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ॥३८॥

मदन (कामदेव) भी ऐसा वैसा योद्धा नहीं जो शीघ्र ही अपनी पराजय स्वीकार करले, पहिले वह अपने प्रतिपक्षियों की शक्ति परीक्षा करता है और इसके लिए अपने प्रधान सहायक मोह को भेजता है। वह अपने विरोधियों के मन में विकार उत्पन्न करता है।

> मोह चल्लिउ साथि कलिकालु।
> जंह हुंतउ मदन भट्टु, तंहमुं जाद कुमनु कीयउ।
> गढु विषमउ धम्मु पुरू, तहसु सधनु संवूहि लिघउ।
> दोनउ चल्ले पैज करि, गव्व धरयउ मन्न मंगहि।
> पवन सबल जब उछलहिं, घण कर केव रहांहि ॥८७॥

गाथा

रहहि सुकिव घणघटं, जुडिया जह सवल गजि गजघटं ।
समिविडि चले सुभटं, पवाणउ कीयउ मडि मोहं ॥८८॥

अन्त में भावात्मक युद्ध होता है और सबसे पहिले भगवान् आदिनाथ राग को वैराग्य से जीत लेते हैं

परियउ तिमरु जिउ देखि भाणु, आगिउ छोडि सो पम्म ठाणु ।
उठि रागु चल्यउ गरजत गहीरु, वैरागु हुव्यउ तनि तसु तीस ॥१०९॥

फिर क्या था, भगवान् आदिनाथ एक एक योद्धा को जीतते गए । क्रोध को क्षमा से, मद को मार्दव से, माया को आर्जव से, लोभ को सन्तोष से जीत लिया । अन्त में पहिले मोह, तथा वाद में काम से युद्ध हुआ । लेकिन वे भी ध्यान एवं विवेक के सामने न टिक सके और अन्त में उन्हे भी हार माननी पड़ी ।

'मयण जुज्झ' को कवि ने संवत् १५८९ में समाप्त किया था,[१] जिसका उल्लेख कवि ने रचना के अन्तिम छन्द में किया है । यह रूपक काव्य अभी तक अप्रकाशित है । इसकी प्रतिलिपि राजस्थान के कितने ही भण्डारों में मिलती है ।

२. संतोष जय तिलक

यह कवि का दूसरा रूपक काव्य है ।[२] इसमें सन्तोष की लोभ पर विजय का वर्णन किया गया है । काव्य में सन्तोष के प्रमुख अंग हैं—शील, सदाचार, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वैराज्ञ, तप, करुणा, क्षमा एवं संयम । लोभ के प्रमुख अंगों में असत्य, मान, क्रोध, मोह, माया, कलह, कुव्यसन, एवं अनाचार आदि हैं । वास्तव में कवि ने इन पात्रों की संयोजना कर जीवन के प्रकाश और अन्धकार पक्ष की उद्भावना मौलिक रूप में की है । कवि ने आत्म तत्व की उपलब्धि के लिए निवृत्ति मार्ग को विशेष महत्व दिया है । काव्य का सन्तोष नायक है एवं लोभ प्रतिनायक ।

---

१. राइ विक्कम तणउं संवतु नवासियन पनरसे ।
सवदरुति आसु वखाणउं, तिथि पडिया सुकल पखु ।
सुसनिश्चवारु वरू णिखित्तु जणंउ, तिणि दिलि वल्ह सुंस पडिउ ।
मयणं जुज्झु सुविसेसु करंत पढ़त निसुणंत नर, जयउ स्वामि रिसहेस ॥१५९॥

२. 'दि० जैन मन्दिर नागदा' बूंदी (राजस्थान) के गुटका नं० १७४ में इसकी प्रति संग्रहीत है ।

जब वे दोनों युद्ध में अवतरित होते हैं तो उनकी शक्ति का कवि ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है

षट् पद छन्द

आयउ भूठु परधानु, मंतु तत्त खिरिग कीयउ ।
मानु कोहु अरू दोहु मोहु, इकु युद्धउ थीयउ ।
माया कलहि कलेसु थापु, संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ, आइ अद्धम्मि किगउ पखु ।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोषि आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वलं देखि करि लोहु राउ तव गहगहिउ ।।७२।।

× × × ×

गीतिका छन्द

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु, न्यानु चरित संवरो ।
वैरागु, तपु, करूणा, महाव्रत खिमा चित्ति संजमु थिरु ।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु, द्धम्मु सो आकिंचणों ।
इन मेलि दलु संतोष राजा, लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७६।।

रचना में लोभ के अवगुणों का विस्तृत वर्णन किया गया है, क्योंकि अनादि काल से चारों गतियों में घूमने पर भी यह लोभ किसी का पीछा नहीं छोड़ता ।

गाथा

भमियउ अनादिकाले चहुंगति, मभम्मि जीउ बहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारुणु लोभ प्रचंडु ।।१४।।

दोहा

दारुणु लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुःख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइं, लख चउरासी जीय ।।१५।।

लोभ तेल के समान है, जैसे जल में तेल की बून्द पड़ते ही वह चारों ओर फैल जाती है, उसी प्रकार लोभ की किंचित मात्रा भी इस जीव को चतुर्गति में भ्रमण कराने में समर्थ है । भगवान् महावीर ने संसार में लोभ को सबसे बुरा पाप कहा है । लोभ ने साधुओं तक को नहीं छोड़ा । वे भी मन के मध्य "मोक्ष रूपी लक्ष्मी को पाने की इच्छा से फिरते हैं । इन्हीं भावों को कवि के शब्दों में पढ़िए—

जिव तेल बून्द जल मांहि पडइ, सा पसरि रहे भाजनइ छाइ ।
तिल लोभु करइ राईस चारु, प्रगटावे जगि में रह् विथारू ।।२२।।

× × × ×

वरण मझि मुनीसर जे वसहि, सिव रमरिण लोभु तिन हियइ मांहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ मरणहि ।।२४।।

× × × ×

मणवु तिजंचहे नर सुरह, हीडावे गति चारि ।
वीर भरणइ गोइम निसुरिण, लोभ बुरा संसारि ।।४५।।

'संतोष जय तिलक' को कवि ने हिसार नगर में संवत् १५९१ में समाप्त किया था । इसका स्वयं कवि ने अपनी रचना के अन्त में उल्लेख किया है ।

संतोषह जयतिलउ जंपिउ, हिसार नयर मंझ में ।
जे सुणहि भविय इक्कमनि, ते पावहि वंछिय सुक्ख ।।१२९।।

संवति पनरह इक्याण मद्दवि, सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेउ, तहि जारिण वंभनामेण ।।१३०।।

'संतोष जय तिलक' कृति प्राचीन राजस्थानी की एक सुन्दर रचना है, जिसकी भाषा पर अपभ्रंश का अधिक प्रभाव है । अकारान्त शब्दों को उकारात बनाकर प्रयोग करना कवि को अधिक अभीष्ट था । इसमें १३१ पद्य हैं । जो साटिक, रड, रंगिक्का, गाथा, षटपद्, दोहा, पद्धडी, अडिल्ल, रासा, चंदाइणु, गीतिका, तोटक, आदि छन्दों में विभक्त हैं । रचना भाषा विज्ञान के अध्ययन की दृष्टि में उत्तम है । यह अभी तक अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ बून्दी (राजस्थान) के गुटका संख्या १७४ में संग्रहीत है ।

३. चेतन पुद्गल धमाल [1]

यह कवि के रूपक काव्यों में सबसे उत्तम रचना है । कवि ने इसमें जीव एवं पुद्गल के पारस्परिक सम्बन्धों का तुलनात्मक अध्ययन किया है । "चेतन सुणु ! निरगुण जड़ सिउ संगति कीजइ" को वह बार बार दोहराता है । वास्तव में यह एक सम्वादात्मक काव्य है जिसके जीव एवं जड़ : 'अजीव' दोनों नायक हैं । स्वयं

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर नागदा बून्दी के गुटका संख्या १७४ में इसकी प्रति संग्रहीत है ।

कवि ने प्रारम्भिक मंगलाचरण के पश्चात् काव्य के मुख्य विषय को पाठकों के समक्ष निम्न शब्दों में उपस्थित किया है—

पंच प्रमिष्टी वल्ह कवि, ए पणमी वरिभाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, सादु विवादु सुणावो ।।३२।।

प्रारम्भ में चेतन वाद विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहता है कि जड़ पदार्थ से किसी को प्रीति नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह स्वयं विध्वंसनशील है । जड़ के साथ प्रेम बढ़ाकर अपने आपका उपकार सोचना सर्प को दूध पिलाकर उससे अच्छे स्वभाव की आशा करने के समान है ।

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चे बूडा होइ ।
खीरु पञ्या विसहरि मुखे, ताते क्या फल होई ।।३७।।

चेतन के प्रश्न का जड़ ने जो सुन्दर उत्तर दिया उसे कवि के शब्दों में पढिए–

चेतन चेति न चालई, कहउत माने रोसु ।
आपे बोलत सौ फिरे, जड़हि लगावइ दोसु ।।३८।।

× × × ×

छह रस भीयण विविह परि, जो जह नित सीचेइ ।
इन्दी होवहि पड़वड़ी, तउ पर वम्मु चलेइ ।।४०।।

इस प्रकार पूरा रूपक संवाद पूर्ण है, चेतन और पुद्गल के सुन्दर विवाद होता है । क्योंकि जड़ और चेतन का सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है वह उसी प्रकार है, जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि एवं तिलों में तेल रहता है ।

जिउ वैसन्दरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेउ ।
आदि अनादिहि जाणिये, चेतन पुद्गल एव ।।५४।।

एक प्रसंग पर चेतन पदार्थ जड़ से कहता है कि उसे सदैव दूसरों का भला करना चाहिए । यदि अपना बुरा होता हो तो भी उसे दूसरों का भला करना चाहिए ।

भला करन्तिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तो भी भला न छोड़िये, उत्तम यह परवाणु ।।७०।।

लेकिन इसका पुद्गल के द्वारा दिया हुआ उत्तर भी पढिए ।

भला भला सहु को कहे, मरमु न जाणे कोइ ।
काया सोई मीत रे, भला न किस ही होइ ।।७१।।

किन्तु इससे भी अधिक व्यंग निम्न पद्य में देखिए—

जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छांह कराइ।
तिउ इसु काया संग ते, मोखही जीयहा जाए ॥७३॥

रचना के कुछ सुन्दर पद्य, पाठकों के अवलोकनार्थ दिए जा रहे हैं—

जिउ ससि मंडणु रमणिका, दिन का मण्डणु भाणु।
तिम चेतन का मण्डणा, यहु पुद्गल तू जाण ॥७८॥

× × × ×

काय कलेवरु वसि सुहु, जतनु करन्तिहि जाइ।
जिव जिव पाचे तूवड़ी, तिव तिव अति करवाइ ॥८१॥

× × × ×

फूलु मरह परमलु जीवइ, तिसु जाणे सहु कोई।
हंसु चलइ काया रहइ, किवस बराबरि होइ ॥८३॥

× × × ×

काया की निंदा करइ; आपु न देखइ जोइ।
जिउ जिउ भीजइ कांवली, तिउ तिउ भारी होइ ॥९०॥

× × × ×

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि।
छह खंड भोगे चक्कवै, काया के परसादि ॥९६॥

× × × ×

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु।
जे गुण होवहि गोरडी, तउ वनं छाडे ताहु ॥९९॥

× × × ×

मोती उपना सीप महि, विडि माथावे लोइ।
तिउ जीउ काया संगते, सिउपुरि वासा होइ ॥१०४॥

× × × ×

कालु पंच मारुद्द यहु, चित्त न किसही ठांइ।
इंदी सुखु न मोखु हुइ; दोनउ खोवहि काए ॥११४॥

× × × ×

यह संजमु असिवर अणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीय मूढ न जाणही, इव कहु किव सीहयेहि ॥१२४॥

× × × ×

उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिठु किया, ते पहुँचा निरवाणि ॥१३१॥

'चेतन पुदगल धमाल' में १३६ पद्य हैं, जिनमें १३१ पद्य दीपक राग के तथा शेष ५ पद्य अष्ट पद छप्पय छन्द के हैं। कवि ने इस रचना में अपने दोनों ही नामों का उल्लेख किया है। रचना काल का इसमें कहीं उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु संभवतः यह कृति रचनाएं संवत् १५९१ के बाद की लिखी हुई हैं क्योंकि भाषा एवं शैली की दृष्टि से इसका रूप अत्यधिक निखरा हुआ है। धमाल का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है....

जिय मुकति सरूपी, तु निकल मलु राया ।
इसु जड के संग ते, भमिया करमि भमाया ।
चडि कवल जिवा गुणि, तजि कद्दम संसारो ।
भजि जिण गुण हीयडे, तेरा याहु विवहारो ।
विवहार यहु तुझ जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो ।
निरजरहु बंवण कर्म्म केरे, जान तनि दुकाजरो ॥
जे वचन श्री जिण वीरि भासे, ताह नित धारह हीया ।
इव भणइ बूचा सदा निम्मल, मुकति सरूपी जीया ॥१३६॥

४. टंडाणा गीत

यह एक उपदेशात्मक गीत है। जिसका प्रधान विषय "इसि संसारे दुःख भंडारे क्या गुण देखि लुभाणावे" है। कवि ने प्राणी मात्र को संसार से सजग रहते हुए शुद्ध जीवन यापन करने का उपदेश दिया है क्योंकि जिस संसार ने उसे अनादि काल से ठगा है, फिर भी यह प्राणी उसी पर विश्वास करता रहता है।

गीत की भाषा शुद्ध हिन्दी है, जो अपभ्रंश के प्रभाव से रहित है। कवि ने रचना में अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त और कोई परिचय नहीं दिया है।

सिवि सरूप सहज ले लावे, ध्यावे अंतर झाणावे ।
जंपति बूचा जिय तुम पावौ, वंछित सुख निरवाणावे ॥१५॥

रचना का नाम 'टंडाणा गीत' प्रारम्भिक पद्य के कारण दिया गया है। वैसे टंडाणा शब्द यहां संसार के लिये प्रयुक्त हुआ है। टंडाणा, टांडा शब्द से बना है, जिसका अर्थ व्यापारियों का चलता समूह होता है। संसार भी प्राणियों के समूह का ही नाम है, जहां सभी वस्तुएं अस्थिर हैं।

गीत के छन्द पाठकों के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं....

मात पिता सुत सजन सरीरा, दुहु सब लोगि विराणावे।
इयण पंख जिमि तरवर वासै, दसहुँ दिशा उडाणावे ॥

विषय स्वारथ सब जग वंछे, करि करि बुधि विनाणावे।
छोडि समाधि महारस नूपम, मधुर विंदु लपटाणावे ॥

इसकी एक प्रति जयपुर के शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधा के एक गुटके के संग्रह में है।

५. नेमिनाथ वंसतु

यह वसंत आगमन का गीत है। नेमिनाथ विवाह होने से पूर्व ही तोरण द्वार से सीधे गिरनार पर जाकर तप धारण कर लेते हैं। राजुल को लाख समझाने पर भी वह दूसरा विवाह करने को तैयार नहीं होती और वह भी तपस्विनी का जीवन यापन का निश्चय कर लेती है। इसके बाद वसन्त ऋतु आती है। राजुल तपस्विनी होते हुए भी नवयौवना थी। उसका प्रथम अनुभव कैसा होगा, इसे कवि के शब्दों में पढ़िए....

अमृत अंबु लउ मोर के, नेमि जिणु गढ गिरनारे।
म्हारे मनि मधुकरु निह वसइ, संजमु कुसमु मझारो ॥२॥

सखिय वसंत सुहाल रे, दीसइ सोरठ देसो।
कोइल कुहकह, मधुकर सारि सब वणइ पइसो ॥३॥

विवलसिरी यह महकैइरे, भंवरा रुणझुण कारो।
गावहि गति स्वरास्वरि, गंध्रव गढ गिरनारे ॥४॥

लेकिन नेमिनाथ ने तो साधु जीवन अंगीकार कर लिया था और वे मोक्ष लक्ष्मी का वरण करने के लिए तैयारी कर रहे थे, इसलिये वे अपने संयम के साथ फाग खेल रहे थे। क्षमा का वे पान चवाते और उससे राग का उगाल निकालते।

मुक्ति रमणि रंगि रातेउ, नेमि जिणु खेलइ फागो।
सरस तंबोल समा रे, रासे राग उगालो।

राजुल समुद्रविजय की लाडली कुमारी थी, लेकिन अब तो उसने भी व्रत अंगीकार कर लिए थे। जब नेमिनाथ तपस्वी जीवन विताने लगे तो वह क्यों पीछे रहती, उसने भी संयम धारण कर लिया....

समुद्रविजयराइ लाडिलउ, अपूरव देस विसालो।
नव रस रसियउ नेमि जिणु, नव रस रहित रसालो ॥७॥

विरस विलासणि भो लयो, समुद विजय राइवालो।
नेमि छयलि तिहुयणि छलियउ, माणिणि मलियउ मारू ॥८॥

राजुल द्वेन देइखत दिनु रमह, संजम सिरिख सुजाणो।
जणु जागइ तव सोवइ, जागह सूतइ लोगो।

रचना में २३ पद्य हैं,[1] अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है........

वल्हिं विपक्खणु, सखीय वंघण जाइ।
मूल संघ मुख मंडया, पद्मनन्दि सुपसाइ।
वल्हि वसंतु जु गावहि, सो सखि रलिय कराइ ॥

६. नेमिश्वर का वारहमासा[2]

यह एक छोटी सी रचना है, जिसमें नेमिनाथ एवं राजुल के प्रथम १२ महिनों का संक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। वर्णन सुन्दर एवं सरस है, रचना में १२ पद्य हैं।

७. विभिन्न रागों में लिखे हुए आठ पद

कवि के उपलब्ध आठ पद आध्यात्मिक भावों से पूर्ण ओतप्रोत हैं। पद लम्बे हैं, तथा राग वनासरी, राग गौडी, राग वडहंस, राग दीपक, राग सुहड, राग विहागड, तथा राग आसावरी में लिखे हुए हैं। राग गौडी वाले पद के अतिरिक्त सभी पदों में कवि ने अपना वूचराज नाम लिखा है। केवल उसी पद में वल्ह नाम दिया है। एक पद में भगवान को फूलमाला चढाने का उल्लेख आया है। उस समय किये गये फूलों का नाम देखिए।

राइ चंपा, अरू केवडा, लालो, मालवी मरूवा जाइवे
कुंद मयकंद अरू केवडा लालो रेवती वहु मुसकाय।

गौडी राग वाला पद अत्याधिक सुन्दर है, उसे भी पाठकों के पठनार्थ अविकल रूप में दिया जा रहा है।

---

१. इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के संग्रह में है।
२.	वही

रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याइये ।
रंग हो रंग होइ सुरगं सिउ मनु लाइये ।।

लाइये यहु मनुरंग इस सिउ अवर रंगु पतंगिया ।
धुलि रहइ जिउ मंजीठ कपड़े तेव जिण चतुरंगिया ।।

जिव लगनु वस्तरु रंगु तिवलगु, इसहि कान रगाव हो ।
कवि वल्ह लालचु छोड्ड भूंठा रंगि जिणवरु ध्यान हो ।।१।।

रंग हो रंग हो पंच महाव्रत पालिये ।
रंग हो रंग हो सुख अनंत निहालीहे ।।

निहालि यहि सुख अनंत जीयडे आठमद जिनि खिउ करे ।
पंचिंदिया दिढु लिया समकतु करम वंधण निरजरे ।।

इय विषय विषयर नारि परघनु देखि चित्तु न टाल हो ।
कवि वल्ह लालचु छोडि भूंठा रंगि पंच व्रत पाल हो ।।२।।

रंग हो रंग हो दिढु करि सीयलु राखीये ।
रंग हो रंग हो ज्ञान वचन मनि भाखीये ।

भाषिये निज गुर ज्ञानवाणी रागु रोसु निवारहो ।
परहरहु मिथ्या करहु संवरु हीयइ समकतु धार हो ।।

वाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देह सिउ मंडहु वलो ।
कवि वल्ह लालचु छोडि भूंठा रंगु दिढ करि सीयलो ।।३।।

रंग हो रंग हो मुकति वरणी मनु लाइये ।
रंग हो रंग हो भव संसारि न आइये ।।

आइये नहु संसारि सागरि जीय वहु दुखु पाइये ।
जिसु वाभु चहु गति फिर्या लोडे सोई मारगु ध्याइये ।

त्रिभुवणह तारणु देउ अरहंतु सुगुण निजु गाइये ।
कवि वल्ह लालचु छोडि भूंठा मुकति सिउ रंगु लाइये ।।४।।

८. विजयकीर्ति गीत

यह कवि का एक ऐतिहासिक गीत है जिसमें भ० विजयकीर्ति का तपस्वी जीवन की प्रशंसा की गयी है एवं देश के अनेक शासकों के नाम भी गिनाये हैं जो उन्हें अत्यधिक सम्मानित करते थे ।

मूल्यांकन

'बूचराज' की कृतियों के अध्ययन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य की अपूर्व सेवा की थी। उनकी सभी कृतियां काव्यत्व, भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय कृतियां हैं, जिनको हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिलना ही चाहिए। कवि ने अपने तीनों ही रूपक काव्यों में काव्य की वह धारा वहायी है जिसमें पाठकगण स्नान करके अपने जीवन को शान्त, सयमित, शुद्ध एवं संतोषपरक बना सकते हैं। कवि ने विभिन्न छन्दों एवं राग-रागनियों में अपनी कृतियों को निवद्ध करके अपने छन्द-शास्त्र का ही परिचय नहीं दिया, किन्तु लोक-धुनों की भी लोक प्रियता का परिचय उपस्थित किया है। इन कृतियों के माध्यम से कवि ने समाज को सरल एवं सरस भाषा में आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया था और लेखक की दृष्टि में वह अपने मिशन में अत्यधिक सफल हुआ है। कवि जैन दर्शन के पुद्गल एवं चेतन के सम्बन्ध से अत्यधिक परिचित था। अनादिकाल से यह जीव जड़ को अपना हितैषी समझता आरहा है और इसी कारण जगत के चक्कर में फंसना पड़ता है। जीव और जड़ के इस सम्बन्ध की पोल 'चेतन पुद्गल धमाल' में कवि ने खोल कर रखदी है। इसी तरह सन्तोष एवं काम वासना पर विजय प्राप्त करने का जो सुन्दर उपदेश दिया है—वह भी अपने ढंग का अनोखा है। पात्रों के रूप में प्रस्तुत विषय को उपस्थित करके कवि ने उसमें सरसता एवं पाठकों की उत्सुकता को जाग्रत किया है। कवि के अब तक जो विभिन्न रागों में लिखे हुए आठ पद मिले हैं, उनमें उन्हीं विषयों को दोहराया गया है। कवि का एक ही लक्ष्य था और वह था जगत के प्राणियों को सुमार्ग पर लगाने का।

सन्त कवि यशोधर

हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के ऐसे सैंकडों साहित्य सेवी हैं जिनकी सेवाओं का उल्लेख न तो भाषा साहित्य के इतिहास में ही हो पाया है और न अन्य किसी रूप में उनके जीवन एवं कृतियों पर प्रकाश डाला जा सका है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं देहली के समीपवर्त्ती पंजाबी प्रदेश में यदि विस्तृत साहित्यिक सर्वेक्षण किया जावे तो आज भी हमें सैंकड़ों ही नहीं किन्तु हजारों कवियों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो सकेगी जिन्होंने जीवन पर्यंत साहित्य-सेवाकी थी किन्तु कालान्तर में उनको एवं उनकी कृतियों को सदा के लिये भुला दिया गया। इनमें से कुछ कवि तो ऐसे मिलेंगे जिन्हें न तो अपने जीवन काल में ही प्रशंसा के दो शब्द मिल सके और न मृत्यु के पश्चात् ही उनकी साहित्यिक सेवा के प्रति दो आँसू बहाये गये।

सन्त यशोधर भी ऐसे ही कवि हैं जो मृत्यु के बाद भी जनसाधारण एवं विद्वानों की दृष्टि से सदा ओझल रहे। वे दृढनिष्ठ साहित्य सेवी थे। विक्रमीय १६ वीं शताब्दी में हिन्दी की लोकप्रियता में वृद्धि तो रही थी लेकिन उसके प्रचार में शासन का किञ्चित भी सहयोग नहीं था। उस समय मुगल साम्राज्य अपने वैभव पर था। सर्वत्र अरबी एवं फारसी का दौर दौरा था। महाकवि तुलसीदास का उस समय जन्म भी नहीं हुआ था और सूरदास को भी साहित्य-गगन में इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी थी। ऐसे समय में सन्त यशोधर ने हिन्दी भाषा की उल्लेखनीय सेवा की। यशोधर काष्ठा संघ में होने वाले जैन सन्त सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं विजयसेन के शिष्य थे। बाल्यकाल में ही ये अपने गुरु की वाणी पर मुग्ध हो गये और संसार को असार जानकर उससे उदासीन रहने लगे। युवा होते २ इन्होंने घर बार छोड़ दिया और सन्तों की सेवा में लीन रहने लगे। ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सन्त सकलकीर्त्ति की परम्परा में होने वाले भट्टारक विजयकीर्त्ति की सेवा में रहने का भी इन्हें सौभाग्य मिला और इसीलिये उनकी प्रशंसा में भी इनका लिखा हुआ एक पद मिलता है। ये महाव्रती थे तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह इन पाँच व्रतों को पूर्ण रूप से अपने जीवन में उतार लिया था। साधु अवस्था में इन्होंने गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों में विहार करके जनता को बुराईयों से बचने का उपदेश दिया। ये संभवतः स्वयं गायक भी थे और अपने पदों को गाकर सुनाया करते थे।

साहित्य के पठन-पाठन में इन्हें प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके दादा गुरु

सोमकीर्त्ति संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे विद्वान थे जिनका हम पहिले परिचय दे चुके हैं। इसलिये उनसे भी इन्हें काव्य-रचना में प्रेरणा मिली होगी । इसके अतिरिक्त भ० विजयसेन एवं यशकीर्त्ति से भी इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। इन्होंने स्वयं बलिभद्र चौपई (सन् १५२८) में भ० विजयसेन[1] का तथा नेमिनाथ गीत एवं अन्य गीतों में भ० यशकीर्त्ति का उल्लेख किया है। इसी तरह भ० ज्ञानभूषण के शिष्य भ० विजयकीर्त्ति[2] का भी इन पर वरद हस्त था। ये नेमिनाथ के जीवन से संभवतः अधिक प्रभावित थे। अतः इन्होंने नेमिराजुल पर अधिक साहित्य लिखा है। इसके अतिरिक्त ये साधु होने पर भी रसिक थे और विरह शृंगार आदि की रचनाओं में रुचि रखते थे।

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहां हुआ तथा कितनी आयु के पश्चात् उनका स्वर्गवास हुआ हमें इस सम्बन्ध में अभी तक कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी। सोमकीर्त्ति का भट्टारक काल सं० १५२६ से १५४० तक का माना जाता है।[3] यदि यह सही है कि इन्हें सोमकीर्त्ति केचरणों में रहने का अवसर मिला था तो फिर इनका जन्म संवत् १५२० के आस पास होना चाहिये। अभी तक इनकी जितनी रचनायें मिली है उनमें से केवल दो रचनाओं में इनका रचना काल दिया हुआ है। जो संवत् १५८१ (सन् १५२४) तथा संवत् १५८५ (सन् १५२८) है। अन्य रचनाओं में केवल इनके नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य विवरण नहीं मिलता। जिस गुटके में इनकी रचनाओं का संग्रह है वह स्वयं इन्हीं के द्वारा लिखा गया है तथा उसका लेखनकाल संवत् १५८५ जेष्ठ सुदी १२ रविवार का है। इसके

---

१. श्री रामसेन अनुक्रमि हुआ, यसकीरति गुरु जाणि।
श्री विजयसेन पठि थापीया, महिमा मेर समाण ॥१८६॥

तास सिष्य इम उच्चरि, ब्रह्म यशोधर जेह।
भूमंडलि दणी पर तपि, तारहु रास चिर एह ॥१८७॥

❀ ❀ ❀ ❀

२. श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउं स्वामी, तह्म तणां मुझ भवचां दुःख निवार ॥६८॥

❀ ❀ ❀ ❀

वाग वाणी वर मांगु मात दि, मुझ अविरल वाणी रे ।
यसकीरति गुरु गांउ गिरिया, महिमा मेर समाणी रे ॥
आवु आवु रे भवीयण मनि रलि रे ॥

३. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या-२९८

अतिरिक्त इन्होंने सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य भ० यशःकीर्ति को भी गुरु के रूप में स्मरण किया है। जो संवत् १५७५ के आस पास भट्टारक बने होंगे। इसलिये इनका समय संवत् १५२० से १५९० तक का मान लेना युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

यशोधर की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं किन्तु आशा है कि सागवाड़ा, ईडर आदि स्थानों के जैन ग्रन्थालयों में इनका और भी साहित्य उपलब्ध हो सकता है। यशोधर प्रतिलिपि करने का भी कार्य करते थे। अभी इनके द्वारा लिपिबद्ध नैणवां (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार में एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिसमें कितने ही महत्वपूर्ण पाठों का संकलन दिया हुआ है। कवि के द्वारा निबद्ध सभी सभी रचनायें इस गुटके में संग्रहीत हैं। इसकी लिपि सुन्दर एवं सुपाठ्य है।

१, नेमिनाथ गीत

इसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन की एक झलक मात्र है। पूरी कथा २८ पद्यों में समाप्त होती है। गीत की रचना संवत् १५८१ में वंसपालपुर (बांसवाड़ा) में समाप्त की गई थी।

संवत पनर एकासीहजी वंसपालपुर सार।
गुण गाया श्री नेमिनाथ जी, नवनिधि श्री संघवार हो स्वामी।

गीत में राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उसे मृगनयनी, हंसगामनी बतलाया है। इसके कानों में झूमके, ललाट पर तिलक एवं नाग के समान लटकती हुई उसकी वेणी सुन्दरता में चार चांद लगा रही थी। इसी वर्णन को कवि के शब्दों में पढ़िये—

रे हंस गमणीय मृगनयणीय स्तवण झाल झबूकती।
तप तपिय तिलक ललाट, सुन्दर वेणीय वासुडा लटकती।
खलिकंत चूडीय मुखि वारीय नयन कज्जल सारती।
मलयतीय मेगल मास आसो इम बोली राजमती ॥३॥

गीत की भाषा पर राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव है।

२. नेमिनाथ गीत

राजुल नेमि के जीवन पर यह कवि का दूसरा गीत है। इस गीत में राजुल नेमिनाथ को अपने घर बुलाती हुई उनकी बाट जोह रही है। गीत छोटा सा है जिसमें केवल ५ पद्य हैं। गीत की प्रथम पंक्ति निम्न प्रकार है—

नेम जी आवु न घरे घरे।
वाटडीयां जोइ सिवयामा (ला) डली रे ॥

३. मल्लिनाथ गीत

इस गीत में ९ छन्द हैं जिसमें तीर्थंकर मल्लिनाथ के गर्भ, जन्म, वैराग्य, ज्ञान एवं निर्वाण महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है—

ब्रह्म यशोधर वीनवी हूं, हत्रि तह्य तणु दास रे।
गिरिपुरय स्वामीय मंडणु, श्री संघ पूरवि आस रे॥९॥

४. नेमिनाथ गीत

यह कवि का नेमिनाथ के जीवन पर तीसरा गीत है। पहिले गीतों से यह गीत बड़ा है और वह ६९ पद्यों में पूर्ण होता है। इसमें नेमिनाथ के विवाह की घटना का प्रमुख वर्णन है। वर्णन सुन्दर, सरस एवं प्रवाह युक्त है। राजुलि–नेमि के विवाह की तैय्यारियां जोर शोर से होने लगी। सभी राजा महाराजाओं को विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण पत्र भेजे गये। उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम आदि सभी दिशाओं के राजागण उस वरात में सम्मिलित हुये। इसे वर्णन को कवि के शब्दों में पढिये:—

कुंकम पत्री पाठवी रे, शुभ आवि अतिसार।
दक्षिण मरहटा मालवी रे, कुंकण कन्नड राउ॥

गूजर मंडल सोरठीयारे, सिन्धु सवाल देश।
गोपाचल नु राजाउरे, ढीली आदि नरेस॥२३॥

मलवारी प्रासु पाड़नेर, खुरसाणी सवि ईस।
वागडी उदय मजकरी रे, लाड गउडना धाम॥२४॥

कवि ने उक्त पद्यों में दिल्ली को 'ढीली' लिखा है। १२वीं शताब्दी के अपभ्रंश के महाकवि श्रीधर ने भी अपने पास चरिउ में दिल्ली को 'ढिल्ली' शब्द से सम्बोधित किया था।[1]

वरातियों के लिये विविध फल मंगाये गये तथा अनेक पकवान एवं मिठाइयां वनवायी गई। कवि ने जिन व्यञ्जनों के नाम गिनाये हैं उनमें अधिकांश राजस्थानी मिष्ठान्न हैं। कवि के शब्दों में इसका आस्वादन कीजिये—

---

१. विक्कमणरिंद सुपसिद्ध कालि, ढिल्ली पट्टणि धण कण विसालि।
सनवासी एयारह सरगिह, परिवाडिए वरिसह परिगएहि॥

पकवान नीपजि नित्त नवां रे, मांडी मुरकी सेव ।
खाजा खाजडली दही थरां रे, रेफे घेवर हेव ॥२५॥

मोतीया लाड्ड मूंग तणा रे, सेवइया अतिसार ।
काकरीय पड सूंधीयारे, साकिरि मिश्रित सार ॥२६॥

सालीया तंदुल सपडारे, उज्जल अखंड अपार ।
मूंग मंडोरा अति भला रे, घृत अखंडी धार ॥२७॥

राजुल का सौन्दर्य अवर्णनीय था। पांवों के नूपुर मधुर शब्द कर रहे थे वे ऐसे लगते थे मानों नेमिनाथ को ही बुलारहे हों। कटि पर सुशोभित 'कनकती' चमक रही थी। अंगुलियों में रत्नजटित अंगूठी, हाथों में रत्नों की ही चूड़ियां तथा गले में नवलख हार सुशोभित था। कानों में झूमके लटक रहे थे। नयन कजरारे थे। हीरों से जड़ी हुई ललाट पर राखड़ी (बोरला) चमक रही थी। इसकी वेणी दण्ड उतार (ऊपर से मोटी तथा नीचे से पतली) थी इन सब आभूषणों से वह ऐसी लगती थी कि मानों कहीं कामदेव के धनुष को तोड़ने जा रही हो—

पायेय नेउर रणझणिरे, घूघरी नु धमकार ।
कटियंत्र सोहि रुडी मेखला रे झूमणु झलक सार ॥

रत्नजड़ित रूड़ी मुद्रकारे, करियल चूड़ीतार ।
वाहि विठा रूड़ा वहिरखा रे, हयिडोलि नवलखहार ॥

कोटिय टोडर रूयडु रे, श्रवणे झवकि झाल ।
नानविट टीलु तप तपि रे, खीटलि खटकि चालि ॥

वांकीय भमरि सोहामणी रे, नयले काजल रेह ।
कामिधनु जाणे तोडीउरे, नर भग पाड़वा एह ॥ ४६ ॥

हीरे जड़ी रूड़ी राखड़ी, वेणी दंड उतार ।
मयणि पन्नग जाणे पासीउरे, गोफणु लहि किसार ॥

नेमीकुमार ९ खण के रथ में विराजमान थे जो रत्न जड़ित था तथा जिसमें हांसना; जाति के घोड़े जुते हुये थे। नेमिकुमार के कानों में कुण्डल एवं मस्तक पर छत्र सुशोभित थे। वे श्याम वर्ण के थे तथा राजुल की सहेलियां उनकी ओर संकेत करके कह रही थी यही उसके पति हैं?

नवखणु रथ सोवनमि रे, रयण मंडित सुविसाल ।
हांसना अश्व जिणि जोतस्यां रे, लह लहधि जाय अपार ॥ ५१ ॥

कानेय कुंडल तपि तपि रे, मस्तकि छत्र सोहंति।
सामला व्रण सोहामणु रे, सोइ राजिल तोरू कंत ॥५२॥

इस प्रकार रचना में घटनाओं का अच्छा वर्णन किया गया है। अन्त में कवि ने अपने गुरु को स्मरण करते हुए रचना की समाप्ति की है।

श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउ स्वामी तणा, मुझ भवचा दुःख निवार ॥६८॥
भणसि जिनेसर सांभलि रे, धन धन ते अवतार।
नव निधि तस घरि उपजि रे, ते तरसि रे संसार ॥६९॥

भाषा-गीत की भाषा राजस्थानी है। कुछ शब्दों का प्रयोग देखिये—

गासु—गाठ गा (१) कांइ करू—क्या करू (१) नीकल्या रे—निकला (६) तह्म, अह्म (८) तिहां (२१) नेउर (४३) आपणा (५३) तोरू (तुम्हारा) मोरू (मेरा) (५०) उतावलु (१३) पाठवी (२२)

छन्द—सम्पूर्ण गीत गुडी (गौडी) राग में निबद्ध है।

५. वलिभद्र चोपई—यह कवि की अब तक उपलब्ध रचनाओं में सबसे बड़ी रचना है। इसमें १८९ पद्य हैं जो विभिन्न ढाल, दूहा एवं चौपई आदि छन्दों में विभक्त हैं। कवि ने इसे सम्वत् १५८५ में स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर में सम्पूर्ण[1] किया था।

रचना में श्रीकृष्ण जी के भाई वलिभद्र के चरित का वर्णन है। कथा का संक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

द्वारिका पुर श्री कृष्ण जी का राज्य था। वलभद्र उनके बड़े भाई थे। एक वार २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का उधर विहार हुआ। नगरी के नरनारियों के साथ वे दोनों भी दर्शनार्थ पधारे। वलभद्र ने नेमिनाथ से जब द्वारिका के भविष्य के बारे में पूछा तो उन्होंने १२ वर्ष बाद द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका दहन की भविष्यवाणी की। १२ वर्ष बाद ऐसा ही हुआ। श्रीकृष्ण एवं वलराम दोनों जंगल में चले गये और जब श्रीकृष्ण जी सो रहे थे तो जरदकुमार ने हरिण के धोखे में इन पर बाण चला दिया जिससे वहीं उनकी मृत्यु हो गई। जरदकुमार को जब वस्तु-स्थिति का पता लगा तो वह बहुत पछताये लेकिन फिर क्या होना था। वलभद्र जी

---

१. संवत् पनर पच्यासीर, स्कन्ध नगर मझारि।
भवणि अजित-जिनवर तणी, ए गुण गाया सारि ॥१८८॥

श्रीकृष्ण जी को अकेला छोड़कर पानी लेने गये थे, वापिस आने पर जब उन्हें मालूम हुआ तो वे बड़े शोकाकुल हुए एवं रोने लगे और अपने भाई के मोह से छह मास तक उनके मृत शरीर को लिए घूमते रहे। अन्त में एक मुनि ने जब उन्हें संसार की असारता वतलाई तो उन्हें भी वैराग्य हो गया और अन्त में तपस्या करते हुए निर्वाण प्राप्त किया। चौपई की सम्पूर्ण कथा जैन पुराणों के आधार पर निबद्ध है।

चौपई प्रारम्भ करने के पूर्व सर्व प्रथम कवि ने अपनी लघुता प्रगट करते हुए लिखा है कि न तो उसे व्याकरण एवं छंद का बोध है और न उचित रूप से अक्षर ज्ञान ही है। गीत एवं कवित्त कुछ आते नहीं हैं लेकिन वह जो कुछ लिख रहा है वह सब गुरु के आशीर्वाद का फल है—

न लहुं व्याकरण न लहुं छन्द, न लहुं अक्षर न लहुं विन्द।
हूं मूरख मानव मतिहीन, गीत कवित्त नवि जाणुं कही ।।२।।
सूरज ऊग्यु तम हरि, जिय जलहर बूढि ताप।
गुरु वयणे पुण्य पामीइ, झडि भवंतर पाप ।।५।।
मूरख पणि जे मति लहि, करि कवित अतिसार।
ब्रह्म यशोधर इम कहि, ते सहि गुरु उपगार ।।६।।

उस समय द्वारिका वैभव पूर्ण नगरी थी। इसका विस्तार १२ योजन प्रमाण था। वहां सात से तेरह मंजिल के महल थे। बड़े बड़े करोड़पति सेठ वहां निवास करते थे। श्रीकृष्ण जी याचकों को दान देने में हर्षित होते थे, अभिमान नहीं करते थे। वहां चारों ओर वीर एवं योद्धा दिखलाई देते थे। सज्जनों के अतिरिक्त दुर्जनों का तो वहां नाम भी नहीं था।

कवि ने द्वारिका का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिर तुं वसि, ते देखी जन मन उलसि ।।११।।
नव खण तेर खणा प्रासाद हह श्रेणि सम लागु वाद।
कोटीधज तिहां रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा ।।१२।।
याचक जननि देइ दान, न हीयडि हरष नहीं अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ।।१३।।
जिण भवने धज वड फरहरि, शिखर स्वर्ग सुं वातज करि।
हेम मूरति पोढी परिमाण, एके रत्न अमूलिक जाण ।।१४।।

द्वारिका नगरी के राजा थे श्रीकृष्ण जी जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर थे। वे छप्पन करोड़ यादवों के अधिपति थे। इन्हीं के बड़े भाई थे वलभद्र। स्वर्ण के समान जिनका शरीर था। जो हाथी रूपी शत्रुओं के लिए सिंह थे तथा हल जिनका आयुध था। रेवती उनकी पटरानी थी। बड़े २ वीर एवं योद्धा उनके सेवक थे। वे गुणों के भण्डार तथा सत्यव्रती एवं निर्मल-चरित्र के धारण करने वाले थे—

तस बंधव अति रूयडु रोहिण जेहनी मात।
वलिभद्र नामि जाणयो, वसुदेव तेहनु तात ॥२८॥

कनक वर्ण्ण सोहि जिसु, सत्य शील तनुवास।
हेमधार वरसि सदा, ईहण पूरि आस ॥२९॥

अरीयण मद गज केशरी, हल आयुध करिसार।
सुहड सुभट सेवि सदा, गिरुउ गुणह भंडार ॥३०॥

पटराणी तस रेवती, शील सिरोमणि देह।
धर्म धुरा भालि सदा, पतिसुं अविहड नेह ॥३१॥

उन दिनों नेमिनाथका विहार भी उधर ही हुआ। द्वारिका की प्रजा ने नेमिनाथ का खूब स्वागत किया। भगवान श्रीकृष्ण, वलभद्र आदि सभी उनकी वंदना के लिए उनकी सभागृह में पहुँचे। वलभद्र ने जब द्वारिका नगरी के बारे में प्रश्न पूछा तो नेमिनाथ ने उसका निम्न शब्दों में उत्तर दिया—

दूहा—सारी वाणी संभली, बोलि नेमि रसाल।
पूरव भवि अक्षर लखा, ते किम थाइ आल ॥७१॥

चुपई—द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संघार।
मद्य भांड जे नामि कही, तेह थकी वली जलसि सही ॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, वे बंधव नीकससु तिसि।
तह्य सहोदर जरा कुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ॥

बार वरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुम्र तव चाल्यु रानि ॥८०॥

बारह वर्ष पश्चात् वही समय आया। कुछ यादवकुमार अपेय पदार्थ पीने से उन्मत्त हो गए। वे नाना प्रकार की क्रियायें करने लगे। द्वीपायन मुनि को जो वन में तपस्या कर रहे थे वे देखकर चिढाने लगे।

तिणि अवसरि ते पीछु नीर, विकल रूप ते थया शरीर।
ते परवत था पीछावलि, एकि विसि एक धरणी टलि ॥८२॥

एक नाचि एक गाइं गीत, एक रोइ एक हरषि चित्त ।
एक नासि एक उंडलि धरि, एक सुइ एक क्रीडा करि ॥८३॥

इणि परि नगरी आवि जिसि, द्विपायन मुनि दीठु तिसि ।
कोप करीनि ताडि ताम, देर गालवली लेई नाम ॥८४॥

द्वीपायन ऋषि के शाप से द्वारिका जलने लगी और श्रीकृष्ण जी एवं बलराम अपनी रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर वन की ओर चले गये। वन में श्री कृष्ण की प्यास बुझाने के लिए वलभद्र जल लेने चले गये। पीछे से जरदकुमार ने सोते हुये श्रीकृष्ण को हरिण समझ कर वाण मार दिया। लेकिन जब जरदकुमार को मालूम हुआ तो वे पश्चाताप की अग्नि में जलने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें कुछ नहीं कहा और कर्मों की विडम्बना से कौन बच सकता है यही कहकर धैर्य धारण करने को कहा—

कहि कृष्ण सुणि जराकुमार, मूढ पणि मम बोलि गमार ।
संसार तणी गति विषमी होइ, हीयडा माहि विचारी जोइ ॥११२॥

करमि रामचन्द वंनगउ, करमि सीता हरणज भउ ।
करमि रावण राज ज टली, करमि लंक विभीषण फली ॥११३॥

हरचन्द राजा साहस धीर, करमि अधमि घरि आण्यु वीर ।
करमि नल नर चूकु राज, दमयन्ती वनि कीधी त्याज ॥११४॥

इतने में वहीं पर वलभद्र आ गये और श्री कृष्ण जी को सोता हुआ जानकर जगाने लगे। लेकिन वे तब तक प्राणहीन हो चुके थे। यह जानकर वलभद्र रोने लगे तथा अनेक सम्बोधनों से अपना दुःख प्रकट करने लगे। कवि ने इसका बहुत ही मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है।

जल विण किम रहि माछलु, तिम तुझ विणु बंध ।
विरीइ वनडिउ सासीउ, असला रे संध ॥१३०॥

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त वैराग्य गीत विजय कीर्ति गीत एवं २५ से भी अधिक पद उपलब्ध हो चुके हैं। अधिकांश पदों में नेमि राजुल के वियोग का कथानक है जिनमें प्रेम, विरह एवं शृंगार की हिलोरें उठती हैं। कुछ पद वैराग्य एवं जगत् की वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने वाले है।

मूल्यांकन

'ब्रह्म यशोधर' की अब तक जितनी कृतियां उपलब्ध हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि वे हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। उनकी काव्य शैली परिमार्जित थी। वे किसी

भी विषय को सरस छन्दों में प्रस्तुत करते थे। उन्होंने नेमिनाथ के जीवन पर कितने हीं गीत लिखे, लेकिन सभी गीतों में अपनी २ विशेषताएं हैं। उन्होंने राजुल एवं नेमिनाथ को लेकर कुछ शृंगार रस प्रधान पद एवं गीत भी लिखे हैं और उनमें इस रस का अच्छा प्रतिपादन किया है। राजुलके सौन्दर्य वर्णनमें वे अपने पूर्व कवियों से कभी पीछे नहीं रहे। उन्होंने राजुलके आभूषणों का एवं बारातके लिए बनने वाले व्यञ्जनों का अत्यधिक सुन्दर वर्णन में भी वे पाठकों के हृदय को सहज ही द्रवित कर देते हैं। जव कवि राजुल के शब्दों को दोहसता है, 'नेमजी आवुन घरे घरे' तो पाठकों को नेमिनाथ के विरह से राजुल की क्या मनोदशा हो रही होगी— इसका सहज ही पता चल जाता है।

'वलिभद्र रास'–जो उनकी सबसे अच्छी काव्य कृति है-श्री कृष्ण एवं बलराम के सहोदर प्रेम की एक उत्तम कृति है। यह भी एक लघुकाव्य है, जो भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। यशोधर कवि के काव्यों की एक और विशेपता यह है कि इन कृतियों की भाषा भी अधिक निखरी हुई है। उन पर गुजराती भाषा का प्रभाव कम एवं राजस्थानी का प्रभाव अधिक हैं। इस तरह यशो-धर अपने समय के हिन्दी के अच्छे कवि थे।

भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य-प्रेमी, धर्म-प्रचारक एवं शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे। जब वे भट्टारक बने उस समय भट्टारक सकलकीर्ति, एवं उनके पट्ट शिष्य, प्रशिष्य भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण एवं विजयकीर्ति ने अपनी सेवा, विद्वत्ता एवं सांस्कृतिक जागरूकता से इतना अच्छा वातावरण बना लिया था कि इन सन्तों के प्रति जैन समाज में ही नहीं किन्तु जैनेतर समाज में भी अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। शुभचन्द्र ने भट्टारक ज्ञानभूषण एवं भट्टारक विजयकीर्ति का शासनकाल देखा था। विजयकीर्ति के तो लाड़ले शिष्य ही नहीं थे किन्तु उनके शिष्यों में सबसे अधिक प्रतिभावान् सन्त थे। इसलिए विजयकीर्ति की मृत्यु के पश्चात् इन्हें ही उस समय के सबसे प्रतिष्ठित, सम्मानित एवं आकर्षक पद पर प्रतिष्ठापित किया गया।

इनका जन्म संवत् १५३०-४० के मध्य कभी हुआ होगा। ये जब बालक थे तभी से इनका इन भट्टारकों से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रारम्भ में इन्होंने अपना समय संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के ग्रन्थों के पढ़ने में लगाया। व्याकरण एवं छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की और फिर भ. ज्ञानभूषण एवं भ. विजयकीर्ति के सानिध्य में रहने लगे। श्री वी. पी. जोहाकरपुर के मतानुसार ये संवत् १५७३ में भट्टारक बने।[1] और वे इसी पद पर संवत् १६१३ तक रहे। इस तरह शुभचन्द्र ने अपने जीवन का अधिक भाग भट्टारक पद पर रहते हुये ही व्यतीत किया। बलात्कारगण की ईडर शाखा की गद्दी पर इतने समय तक संभवतः ये ही भट्टारक रहे। इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा एवं पद का खूब अच्छी तरह सदुपयोग किया और इन ४० वर्षों में राजस्थान, पंजाब, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में साहित्य एवं संस्कृति का उत्साहप्रद वातावरण उत्पन्न कर दिया।

शुभचन्द्र ने प्रारम्भ में खूब अध्ययन किया। भाषण देने एवं शास्त्रार्थ करने की कला भी सीखी। भ० बनने के पश्चात् इनकी कीर्ति चारों ओर व्याप्त हो गयी राजस्थान के अतिरिक्त इन्हें गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश के अनेक गाँव एवं नगरों से निमन्त्रण मिलने लगे। जनता इनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनने को अधीर हो उठती इसलिये ये जहां भी जाते भक्त जनों के पलक पावड़े बिछ जाते।

---

१. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ संख्या १५८

इनकी वाणी में आकर्षण था इसलिये एक ही बार के सम्पर्क में वे किसी भी अच्छे व्यक्ति को अपना भक्त बनाने में समर्थ हो जाते। समय का पूरी तरह सदुपयोग करते। जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ खोना इन्हें अच्छा नहीं लगता था। ये अपनी साथ ग्रंथों के ढेर के ढेर एवं लेखन सामग्री रखते। नवीन साहित्य के निर्माण में इनकी अधिक रुचि थी। इनकी विद्वत्ता से मुग्ध होकर भक्त जन इनसे ग्रंथ निर्माण के लिये प्रार्थना करते और ये उनके आग्रह से उसे पूरा करने का प्रयत्न करते। अपने शिष्यों द्वारा ये ग्रंथों की प्रतिलिपियां करवाते और फिर उन्हें शास्त्र भण्डारों में विराजमान करने के लिये अपने भक्तों से आग्रह करते। संवत् १५९० में ईडर नगर के हूंवड जातीय श्रावकों ने ब्र० तेजपाल के द्वारा पुण्यास्रव कथा कोश की प्रति लिखवा कर इन्हें भेंट की थी। संवत् १५९९ में डूंगरपुर के आदिनाथ चैत्यालय में इन्हीं के उपदेश से अंगप्रज्ञप्ति की प्रतिलिपि करवा कर विराजमान की गयी थी। चन्दना चरित को इन्होंने वाग्वर (वागड) में निबद्ध किया और कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका को संवत् १६१३ में सागवाडा में समाप्त की। इसी तरह संवत् १६१७ में पाण्डव-पुराण को हिसार (पंजाव) में किया गया।

विद्वत्ता

शुभचन्द्र शास्त्रों के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ये षट् भाषा कवि-चक्रवर्ति कहलाते थे। छह भाषाओं में संभवतः संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती एवं राजस्थानी भाषायें थी। ये त्रिविध विद्यावर (शब्दागम, युक्त्यागम एवं परमागम) के ज्ञाता थे। पट्टावलि के अनुसार ये प्रमाण-परीक्षा, पत्र परीक्षा, पुष्प परीक्षा (?) परीक्षा-मुख, प्रमाण-निर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचंद्र, न्याय विनिश्चय, श्लोकवार्त्तिक, राजवार्त्तिक, प्रमेयकमल-मार्त्तण्ड, आप्तमीमांसा, अष्टसहस्री, चिंतामणिमीमांसा विवरण वाचस्पति, तत्त्व कौमुदी आदि न्याय ग्रन्थों के, जैनेन्द्र, शाकटायन ऐन्द्र, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रन्थों के, त्रैलोक्यसार गोम्मट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्माष्टसहस्री (?)और छन्दोलंकार आदि महाग्रन्थों के पारगामी विद्वान् थे।[1]

शिष्य परम्परा

वैसे तो भट्टारकों के संघ में कितने ही मुनि, ब्रह्मचारी, साध्वियां तथा विद्वान्-गण रहते थे। इसलिए इनके संघ में भी कितने ही साधु थे लेकिन कुछ प्रमुख शिष्य थे जिनमें सकलभूषण, ब्र. तेजपाल, वर्णी क्षेमचंद्र, सुमतिकीर्त्ति, श्रीभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला में

---

१. देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत-जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ संख्या ३८३

भट्टारक शुभचन्द्र का नाम बडे ही आदर के साथ लिया है और अपने आपको उनका शिष्य लिखने में गौरव का अनुभव किया है। यही नहीं करकुण्ड चरित्र को तो शुभचन्द्र ने सकल भूषण की सहायता से ही समाप्त किया था। वर्णी श्रीपाल ने इन्हें पाण्डवपुराण की रचना में सहायता दी थी। जिसका उल्लेख शुभचन्द्र ने पाण्डव-पुराण[1] की प्रशस्ति में सुन्दर ढंग से किया है:—

सुमतिकीर्त्ति इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पट्ट शिष्य बने थे। ये भी प्रकांड विद्वान् थे और इन्होंने कितने ही ग्रन्थों की रचना की थी। इस तरह इन्होंने अपने सभी शिष्यों को योग्य बनाया और उन्हें देश एवं समाज सेवा करने को प्रोत्साहित किया।

प्रतिष्ठा समारोहों का संचालन

अन्य भट्टारकों के समान इन्होंने भी कितनी ही प्रतिष्ठा-समारोहों में भाग लिया और वहां होने वाले प्रतिष्ठा विधानों को सम्पन्न कराने में अपना पूर्ण योग दिया। भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित आज भी कितनी ही मूर्त्तियाँ उदयपुर, सागवाडा, डूंगरपुर, जयपुर आदि मन्दिरों में विराजमान हैं। पंचायतों की ओर से ऐसे प्रतिष्ठा-समारोहों में सम्मिलित होने के लिए इन्हें विधिवत निमन्त्रण-पत्र मिलते थे। और वे संघ सहित प्रतिष्ठाओं में जाते तथा उपस्थित जन समुदाय को धर्मोपदेश का पान कराते। ऐसे ही अवसरों पर ये अपने शिष्यों का कभी २ दीक्षा समारोह भी मनाते जिससे साधारण जनता भी साधु जीवन की ओर आकर्षित होती। संवत् १६०७ में इन्हीं के उपदेश से पञ्चपरमेष्टि की मूर्त्ति की स्थापना की गई थी[1]।

इसी समय की प्रतिष्ठापित एक ११½"×३०" अवगाहना वाली नंदीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की धातु की प्रतिमा जयपुर के लश्कर के मन्दिर में विराजमान है। यह प्रतिष्ठा सागवाडा में स्थित आदिनाथ के मन्दिर में महाराजाधिराज श्री आसकरण के शासन काल में हुई थी। इसी तरह संवत् १५८१ में इन्हीं के उपदेश से हूंबड

---

१. शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्कवेदीवरो,
वैराग्यादिविशुद्धिवृन्दजनकः श्रीपालवर्णीमहान।
संशोध्याखिलपुस्तकं वरगुणं सत्पांडवानामिदं।
तेनालेखि पुराणमर्थनिकरं पूर्वं वरे पुस्तके॥ ....

१. संवत् १६०७ वर्षे वैशाख वदो २ गुरु श्री मूलसंघे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंवड संखेश्वरा गोत्रे सा० जिना।

भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ संख्या १४५

ज्ञातीय श्रावक साह हीरा राजू आदि ने प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न करवाया था।[1]

साहित्यिक सेवा

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एवं अनेक विद्याओं में पारंगत थे। वे वक्तृत्व-कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जो साहित्य सेवा अपने जीवन में की थी वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। अपने संघ की व्यवस्था तथा धर्मोपदेश एवं आत्म साधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हें मिला उसका साहित्य-निर्माण में ही सदुपयोग किया गया। वे स्वयं ग्रन्थों का निर्माण करते, शास्त्र भण्डारों की सम्हाल करते, अपने शिष्यों से प्रतिलिपियां करवाते, तथा जगह २ शास्त्रागार खोलने की व्यवस्था कराते थे। वास्तव में ऐसे ही सन्तों के सद्प्रयास से भारतीय साहित्य सुरक्षित रह सका है।

पाण्डवपुराण इनकी संवत् १६०८ की कृति है। उस समय साहित्यिक-जगत में इनकी ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी। समाज में इनकी कृतियां प्रिय बन चुकी थी और उनका अत्यधिक प्रचार हो चुका था। संवत् १६०८ तक जिन कृतियों को इन्होंने समाप्त कर लिया था[1] उनमें (१) चन्द्रप्रभ चरित्र (२) श्रेणिक चरित्र (३) जीवंधर चरित्र (४) चन्दना कथा (५) अष्टाह्निका कथा (६) सद्वृत्तिशालिनी (७) तीन चौवीसीपूजा (८) सिद्धचक्र पूजा (९) सरस्वती पूजा (१०) चिंतामणिपूजा (११) कर्मदहन पूजा (१२) पार्श्वनाथ काव्य पंजिका (१३) पल्य व्रतोद्यापन (१४) चारित्र शुद्धिविधान (१५) संशयवदन विदारण (१६) अपशब्द खण्डन (१७) तत्व निर्णय (१८) स्वरुप संबोधन वृत्ति (१९) अध्यात्म तरंगिणी (२०) चिंतामणि प्राकृत व्याकरण (२१) अंगप्रज्ञप्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त साहित्य भ० शुभचन्द्र के कठोर परिश्रम एवं त्याग का फल है। इसके पश्चात इन्होंने और भी कृत्तियां लिखी।[2] संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त इनकी कुछ रचनायें हिन्दी में भी उपलब्ध होती हैं। लेकिन कवि ने पाण्डव पुराण में उनका कोई उल्लेख नहीं किया

---

१. संवत् १५८१ वर्षे पोष वदी १३ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे श्री भ० विजयकीर्त्ति तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंवड जाति साह हीरा भा० राजू सुत सं० तारा द्वि० भार्या पोई सुत सं० माका भार्या हीरा दे...........भा० नारंग दे भ्रा० रत्नपाल भा० विराला दे सुत रखभदास नित्यं प्रणमति।

२. विस्तृत प्रशस्ति के लिए देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह पृष्ठ संख्या ७

है। राजस्थान के प्राय: सभी ग्रन्थ भण्डारों में इनकी अब तक जो कृतियां उपलब्ध हुई हैं वे निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत रचनाएं

१. चन्दप्रभ चरित्र
२. करकण्डु चरित्र
३. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका
४. चन्दना चरित्र
५. जीवन्धर चरित्र
६. पाण्डवपुराण
७. श्रेणिक चरित्र
८. सज्जनचित्तवल्लभ
९. पार्श्वनाथ काव्य पंजिका
१०. प्राकृत लक्षण टीका
११. अध्यात्मतरंगिणी
१२. अम्बिका कल्प
१३. अष्टाह्निका कथा
१४. कर्मदहन पूजा
१५. चन्दनषष्टिव्रत पूजा
१६. गणधरवलय पूजा
१७. चारित्रशुद्धिविधान
१८. तीस चौबीसी पूजा
१९. पञ्चकल्याणक पूजा
२०. पल्यव्रतोद्यापन
२१. तेरहद्वीप पूजा
२२. पुष्पांजलिव्रत पूजा
२३. सार्द्धद्वयद्वीप पूजा
२४. सिद्धचक्र पूजा

हिन्दी रचनायें

१. महावीर छंद
२. विजयकीर्त्ति छंद
३. गुरु छंद
४. नेमिनाथ छंद
५. तत्त्वसार दूहा
६. दान छंद
७. अष्टाह्निकागीत, क्षेत्रपालगीत एवं पद आदि।

उक्त सूची के आधार पर निम्न तथ्य निकाले जा सकते हैं—

१. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, सज्जन चित्त वल्लभ, अम्बिकाकल्प, गणधर वलय पूजा, चन्दनषष्टिव्रतपूजा, तेरहद्वीपपूजा, पञ्च कल्याणक पूजा, पुष्पांजलि व्रत पूजा, सार्द्धद्वयद्वीप पूजा एवं सिद्धचक्रपूजा आदि संवत् १६०८ के पश्चात् अर्थात् पाण्डवपुराण के बाद की कृतियां हैं।

२. सदवृत्तिशालिनी, सरस्वतीपूजा, चिंतामणिपूजा, संशय वदन-विदारण, अपशब्दखन्डन, तत्वनिर्णय, स्वरूपसंबोधनवृत्ति, एवं अंगप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ अभी तक राजस्थान के किसी भण्डार में प्रति उपलब्ध नहीं हो सके है।

३. हिन्दी रचनाओं का कवि द्वारा उल्लेख नहीं किया जाना इन रचनाओं का विशेष महत्त्व की कृतियां नहीं होना बतलाया जाता है क्योंकि गुरु छन्द एवं

विजयकीर्त्ति छन्द तो कवि की उस समय की रचनायें मालूम पड़ती हैं जब विजय-कीर्त्ति का यश उत्कर्ष पर था।

इस प्रकार भट्टारक शुभचन्द्र १६–१७ वीं शताब्दी के महान साहित्य सेवी थे जिनकी कीर्त्ति एवं प्रशंसा में जितना भी कहा जावे वही अल्प होगा। वे साहित्य के कल्पवृक्ष थे जिससे जिसने जिस प्रकार का साहित्य मांगा वही उसे मिल गया। वे सरल स्वभावी एवं व्युत्पन्नमति सन्त थे। भक्त जनों के सिर इनके पास जाते ही स्वतः ही श्रद्धा से झुक जाते थे। सकलकीर्त्ति के सम्प्रदाय के भट्टारकों में इतना अधिक साहित्योपासक भट्टारक कभी नहीं हुआ। जब वे कहीं विहार करते तो सरस्वती स्वयं उन पर पुष्प बखेरती थी। भाषण करते समय ऐसा प्रतीत होता था मानों दूसरे गणधर ही बोल रहे हों। अब यहां उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है—

१. करकण्डु चरित्र

करकण्डु राजा का जीवन इस काव्य की मुख्य कथा वस्तु है। यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें १५ सर्ग हैं। इसकी रचना संवत् १६११ में जवाछपुर में समाप्त हुई थी। उस नगर के आदिनाथ चैत्यालय में कवि ने इसकी रचना की। सकलभूषण जो इस रचना में सहायक थे शुभचन्द्र के प्रमुख शिष्य थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् सकलभूषण को ही भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया था। रचना पठनीय एवं सुन्दर है। 'चरित्र' की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

श्री मूलसंघे कृति नंदिसंघे गच्छे बलात्कार इदं चरित्रं।
पूजाफलेद्धं करकुण्डराज्ञो भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिः ॥५४॥
द्व्याष्टे विक्रमतः शते समहते चैकादशाब्दाधिके।
भाद्रे मासि समुज्वले युगतिथौ खड्गे जावाछपुरे।
श्रीमच्छ्रीवृषभेश्वरस्य सदने चक्रे चरित्रं त्विदं।
राज्ञः श्रीशुभचन्द्रसूरी यतिपश्चपाधिपस्योद् ध्रुवं ॥५५॥
श्रीमत्सकलभूषेण पुराणे पाण्डवे कृतं।
साहायं येन तेनाऽत्र तदाकारिस्वसिद्धये ॥५६॥

२. अध्यात्मतरंगिणी

आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार अध्यात्म विषय का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। जिस पर संस्कृत एवं हिन्दी में कितनी ही टीकाएं उपलब्ध होती हैं। अध्यात्मतरंगिणी संवत् १५७३ की रचना है जो आचार्य अमृतचंद्र के समयसार के कलशों पर आधारित है। यह रचना कवि की प्रारम्भिक रचनाओं

में से है। ग्रन्थ की भाषा क्लिष्ट एवं समास बहुल है। लेकिन विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ का एक पद्य देखिये:—

जयतु जितविपक्षः पालिताशेषशिष्यो
विदितनिजस्वतत्त्वश्चोदितानेकसत्वः।
अमृतविधुयतीशः कुन्दकुन्दोगणेशः
श्रुतसुजिनविवादः स्याद्विवादाविवादः ॥

इसकी एक प्रति कामां के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। प्रति १०'×४½" आकार की है तथा जिसमें १३० पत्र हैं। यह प्रति संवत् १७९५ पौष वुदी १ शनिवार को लिखी हुई है। समयसार पर आधारित यह टीका अभी तक अप्रकाशित है।

३. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका

प्राकृतभाषा में निवद्ध स्वामी कार्त्तिकेय की 'वारस अनुपेहा' एक प्रसिद्ध कृति है। इसमें आध्यत्मिक रस कूट २ कर भरा हुआ है। तथा संसार की वास्तविकता का अच्छा चित्रण मिलता है। इसी कृति की संस्कृत टीका भ० शुभचन्द्र ने लिखी जिससे इसके अध्ययन, मनन एवं चिन्तन का समाज में और भी अधिक प्रचार हुआ और इस ग्रन्थ को लोकप्रिय वनाने में इस टीका को भी काफी श्रेय रहा। टीका करने में इन्हें अपने शिष्य सुमतिकीर्त्ति से सहायता मिली जिसका इन्होंने ग्रन्थ प्रशस्ति में साभार उल्लेख किया है।[1] ग्रन्थ रचना के समय कवि हिसार (हरियाणा) नगर में थे और इसे इन्होंने संवत् १६०० माघ सुदी ११ के दिन समाप्त की थी[2]

अपनी शिष्य परम्परा में सवसे अधिक व्युत्पन्नमति एवं शिष्य वर्णी क्षीमचंद्र के आग्रह से इसकी टीका लिखी गई थी।[3] टीका सरल एवं सुन्दर है तथा गाथाओं

---

१. तदन्वये श्रीविजयादिकीर्त्तिः तत्पट्टधारी शुभचन्द्रदेवः।
तेनेयमाकारि विशुद्धटीका श्रीमत्सुमत्यादिसुकीर्त्तिकीर्त्तेः ॥४५॥

२. श्रीमत् विक्रमभूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे,
माघे मासिदशाग्रवह्निमहिते ख्याते दशम्यां तिथौ।
श्रीमच्छ्रीमहीसार-सार-नगरे चैत्यालये श्रीपुरोः।
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा नन्दतु ॥५॥

३. वर्णी श्री क्षीमचन्द्रेण विनयेन कृत प्रार्थना।
शुभचन्द्र-गुरो स्वामिन, कुरु टीकां मनोहरां ॥६॥

के भावों की ऐसी व्याख्या अन्यत्र मिलना कठिन है । ग्रन्थ में १२ अधिकार हैं । प्रत्येक अधिकार में एक २ भावना का वर्णन है ।

४. जीवन्धर चरित्र

यह इनका प्रबन्ध काव्य है जिसमें जीवन्धर के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । काव्य में १३ सर्ग हैं । कवि ने जीवन्धर के जीवन को धर्मकथा के नाम से सम्बोधित किया है । इसकी रचना संवत् १६०३ में समाप्त हुई थी । इस समय शुभचन्द्र किसी नवीन नगर में विहार कर रहे थे । नगर में चन्द्रप्रभ जिनालय था और उसीमें एक समारोह के साथ इस काव्य की समाप्ति की थी । [४]

५. चन्द्रप्रभ चरित्र

चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थंकर थे । इन्हीं के पावन चरित्र का कवि ने इस काव्य के १२ सर्गों में वर्णन किया है । काव्य के अन्त में कवि ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि न तो वह छन्द अलंकारों से परिचित है और न काव्य-शास्त्र के नियमों में पारंगत है । उसने न जैनेन्द्र व्याकरण पढी है, न कलाप एवं शाकटायन व्याकरण देखी है । उसने त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार जैसे महान् ग्रंथों का अध्ययन भी नहीं किया है । किन्तु रचना भक्तिवश की गई है ।[५]

६. चन्दना–चरित्र

यह एक कथा काव्य है जिसमें सती चन्दना के पावन एवं उज्ज्वल जीवन का वर्णन किया गया है । इसके निर्माण के लिए कितने ही शास्त्रों एवं पुराणों का अध्ययन करना पड़ा था । एक महिला के जीवन को प्रकाश में लाने वाला यह संभवतः प्रथम काव्य है । काव्य में पांच सर्ग हैं । रचना साधारणतः अच्छी है तथा पढने योग्य है । इसकी रचना वागड प्रदेश के डूंगरपुर नगर में हुई थी —

शास्त्रण्यनेकान्यवगाह्य कृत्वा पुराणसल्लक्षणकानि भूयः ।
सच्चंदना चारु चरित्रमेतत् चकार च श्री शुभचन्द्रदेवः ।।९५।।

×　　　　×　　　　×　　　　×

वाग्वरे वाग्वरे देशे, वाग्वरै विदिते क्षितौ ।
चंदनाचरितं चक्रे, शुभचन्द्रो गिरीपुरे ।।२०८।।

---

४. श्रीमद् विक्रम भूपतेर्वसुहत द्वैतेशते सप्तह,
वेदैर्न्यूनतरे समे शुभतरेपि मासे वरे च शुचौ ।
वारे गीष्पतिके त्रयोदश तिथौ सन्नूतने पत्तने ।
श्री चन्द्रप्रभधाम्नि वै विरचितं चेदमया तोषयतः ।।७।।

हिन्दी कृतियां

संस्कृत के समान हिन्दी में भी 'शुभचन्द्र' की अच्छी गति थी। अब तक कवि की ७ से भी अधिक लघु रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं और राजस्थान एवं गुजरात के शास्त्र भण्डारों में संभवतः और भी रचनाएं उपलब्ध हो जावें।

१ महावीर छन्द—यह महावीर स्वामी के स्तवन के रूप में है। पूरे स्तवन में २७ पद्य हैं। स्तवन की भाषा संस्कृत-प्रभावित है तथा काव्यत्व पूर्ण है। आदि और अन्तिम भाग देखिये :—

आदि भाग :

प्रणमीय वीर विवुह जण रे जण, मदमइ मान महाभय भंजण।
गुण गण वर्णन करीय बखाणु, यतो जण योगीय जोवन जाणु॥
मेह गेह गुह देश विदेहह, कुंडलपुर वर पुहवि सुदेहह।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ॥

अन्तिम भाग :—

सिद्धारथ सुत सिद्धि वृद्धि वांछित वर दायक,
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायक।
द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिंहांकसु मंडित,
चामीकर वर वर्ण शरण गोतम यती मंडित।
गर्भ दोष दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण,
'शुभचन्द्र' सूरि सेवित सदा पुहवि पाप पंकह हरण॥

२. विजयकीर्ति छन्द :

यह कवि की ऐतिहासिक कृति है। कवि द्वारा जिसमें अपने गुरू 'भ० विजयकीर्त्ति' की प्रशंसा में उक्त छन्द लिखा गया है। इसमें २६ पद्य हैं-जिसमें भट्टारक विजयकीर्त्ति को कामदेव ने किस प्रकार पराजित करना चाहा और उसमें उसे स्वयं को किस प्रकार मुंह की खानी पड़ी इसका अच्छा वर्णन दे रखा है। जैन-साहित्य में ऐसी बहुत कम कृतियां हैं जिनमें किसी एक सन्त के जीवन पर कोई रूपक काव्य लिखा गया हो।

रूपक काव्य की भाषा एवं वर्णन शैली दोनों ही अच्छी हैं। इसके नायक हैं 'भ० विजयकीर्त्ति' और प्रतिनायक कामदेव हैं। मत्सर, मद, माया, सप्त व्यसन आदि कामदेव की सेना के सैनिक थे तथा क्रोध मान, माया और लोभ उसकी सेना

के नायक थे। 'भ० विजयकीर्त्ति' कब घबराने वाले थे, उन्होंने शम, दम एवं यम की सेना को उनसे भिड़ा दिया। जीवन में पालित महाव्रत उनके अंग रक्षक थे तब फिर किसका साहस था, जो उन्हे पराजित कर सकता था। अन्त में इस लड़ाई में कामदेव बुरी तरह पराजित हुआ और उसे वहां से भागना पड़ा—

भागो रे मयण जाई अनंग वेगि रे थाई।
पिसिर मनर मांहि मुंकरे ठाम।

रीति र पायरि लागी मुनि काहने वर मागी,
दुखि र काटि र जांगी जंपई नाम ॥

मयण नाम र फेड़ी आपणी सेना रे तेड़ी,
आपइ ध्यानती रेडी यतीय वरो।

श्री विजयकीर्त्ति यति अभिनवो,
गछपति पूरव प्रकट कीनि मुकनिकरो ॥२८॥

३. गुरु छन्द :

यह भी ऐतिहासिक छन्द है जिसमें 'भ० विजयकीर्त्ति का' गुणानुवाद किया गया है। इस छन्द से विजयकीर्त्ति के माता-पिता का नाम कुंअरि एवं गंगासहाय के नामों का प्रथम बार परिचय मिलता है। छन्द में ११ पद्य हैं।

४. नेमिनाथ छन्द :

२५ पद्यों में निवद्ध इस छन्द में भगवान् नेमिनाथ के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा भी संस्कृत निष्ठ है। विवाह में किस प्रकार आभूषणों एवं वाद्य यन्त्रों के शब्द हो रहे थे—इसका एक वर्णन देखिये—

तिहां तड़ तड़ई तव लीय ना दिन वलीय भेद भंभावजाइ,
भंकारि रूडि सहित चूंडी भेर नादह गज्जइ।

झण झणण करतीं टणण धरती सद्ध वोल्लइ झल्लरी।
धुम धुमक करती कण हरती एहवज्जि सुन्दरी ॥ १८ ॥

तण तणण टंका नाद सुन्दर तांति मन्दर वण्णिया।
धम धमहं नादि घणण करती घुगघरी सुहकारीया।

झुंझुक वोलइ सद्धि सोहइ एह भुंगल सारयं।
कण कणण क्रों को नादि वादि सुद्ध सादि रम्मणं ॥ १९ ॥

५. दान छन्द :

यह एक लघु पद है, जिसमें कृपणता की निन्दा एवं दान की प्रशंसा की गई है। इसमें केवल २ पद्य हैं।

उक्त सभी पांचों कृतियाँ दि० जैन मन्दिर, पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत हैं।

६. तत्वसार दूहा :

'तत्वसार दूहा' की एक प्रति कुछ समय पूर्व जयपुर के ठोलियों के मन्दिर के शास्त्र भंडार में उपलब्ध हुई थी। रचना में जैन सिद्धान्त के अनुसार सात तत्वों का वर्णन किया गया है। इसलिए यह एक सैद्धान्तिक रचना है। तत्वों के अतिरिक्त साधारण जनता की समझ में आसकने वाले अन्य कितने ही विषयों को कवि ने अपनी इस रचना में लिया है। १६वीं शताब्दी में ऐसी रचनाओं के अस्तित्व से प्रकट होता है कि उस समय हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचलन था। तथा काव्य, कथा चरित, फागु, वेलि आदि काव्यात्मक विषयों के अतिरिक्त सैद्धान्तिक विषयों पर भी रचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी।

'तत्वसार दूहा' में ९१ दोहे एवं चौपई हैं। भाषा पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि भट्टारक शुभचन्द्र का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क था। यह रचना 'दुलहा' नामक श्रावक के अनुरोध से लिखी गयी थी। कवि ने उसके नाम का कितने ही पद्यों में उल्लेख किया है—

रोग रहित संगति सुखी रे, संपदा पूरण ठाण।
धर्म बुद्धि मन शुद्धडी 'दुल्हा' अनुक्रमिजाण ॥ ६ ॥

तत्वों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिनेन्द्र ही एक परमात्मा है और उनकी वाणी ही सिद्धान्त है। जीवादि सात तत्वों पर श्रद्धान करना ही सच्चा सम्यग्दर्शन है।

देव एक जिन देव रे, आगम जिन सिद्धान्त।
तत्व जीवादिक सद्दहण, होइ सम्मत अभ्रांत ॥ १७ ॥

मोक्ष तत्व का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

कर्म कलंक विकरनो रे, निःशेष होयि नाश।
मोक्ष तत्व श्री जिनकही, जाणवा भानु अन्यास ॥ २६ ॥

आत्मा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि किसी की आत्मा उच्च अथवा नीच नहीं है, कर्मों के कारण ही उसे उच्च एवं नीच की संज्ञा दी जाती है।

और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आत्मा तो राजा है-वह शूद्र कैसे हो सकती है।

उच्च नीच नवि अप्पा हुयि, कर्म कलंक तणो की तु सोई।
बंभण क्षत्रिय वैश्य न शुद्र, अप्पा राजा नवि होय शुद्र ॥ ७ ॥

आत्मा की प्रशंसा में कवि ने आगे भी लिखा है :—

अप्पा धनी नवि नवि निर्धन्न, नवि दुर्बल नवि अप्पा धन्न।
मूर्ख हर्ष द्वेष नविने जीव, नवि सुखी नवि दुखी अतीव ॥ ७१ ॥

× × × ×

सुक्ख अनंत बल वली, रे अनन्त चतुष्टय ठाम।
इन्द्रिय रहित मनो रहित, शुद्ध चिदानन्द नाम ॥ ७७ ॥

रचना काल :

कवि ने अपनी यह रचना कब समाप्त की थी-इसका उसने कोई उल्लेख नहीं किया है, लेकिन संभवतः ये रचनाएँ उनके प्रारम्भिक जीवन की रचनाएँ रही हों। इसलिए इन्हें सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना मानना ही उचित होगा। रचना समाप्त करते हुए कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

ज्ञान निज भाव शुद्ध चिदानन्द चींततो, मूको माया मेह गेह देहए।
सिद्ध तणां सुखजि मलहरहि, आत्मा भावि शुभ एहए।
श्री विजय कीर्ति गुरु मनी धरी, ध्याउ शुद्ध चिद्रूप।
भट्टारक श्री शुभचन्द्र भणि था तु शुद्ध सरूप ॥ ९१ ॥

कृति का प्रथम पद्य निम्न प्रकार है —

समयसार रस सांभलो, रे सम रवि श्री समिसार।
समयसार सुख सिद्धनां सीझि सुक्ख विचार ॥ १ ॥

मूल्यांकन

भ. शुभचन्द्र की संस्कृत एवं हिन्दी रचनायें एवं भाषा, काव्यतत्व एवं वर्णन शैली सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत भाषा के तो ये अधिकारी आचार्य थे ही हिन्दी काव्य क्षेत्र में भी वे प्रतिभावान कवि थे। यद्यपि हिन्दी भाषा में उन्होंने कोई

बड़ा काव्य नहीं लिखा किन्तु अपनी लघु रचनाओं में भी उन्होंने अपनी काव्य निर्माण प्रतिभा की स्पष्ट छाप छोड दी है। उनका कार्य क्षेत्र वागड़ प्रदेश एवं गुजरात प्रदेश का कुछ भाग था लेकिन इनकी रचनाओं में गुजराती भाषा का प्रभाव नहीं के बराबर रहा है। कवि के हिन्दी काव्यों की भाषा संस्कृत निष्ठ है। कितने ही संस्कृत के शब्दों का अनुस्वार सहित ज्यों का त्यों ही प्रयोग कर दिया गया हैं। वे किसी भी कथा एवं जीवन चरित को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने में दक्ष थे। महावीर छन्द, नेमिनाथ छन्द इसी श्रेणी की रचनायें हैं।

संस्कृत काव्यों की दृष्टि से तो शुभचन्द्र को किसी भी दृष्टि से महाकवि से कम नहीं कहा जा सकता। उनके जो विविध चरित काव्य हैं उनमें काव्यगत सभी गुण पाये जाते हैं। उनके सभी काव्य सर्गों में विभक्त हैं एवं चरित काव्यों में अपेक्षित सभी गुण इन काव्यों में देखने को मिलते हैं। काव्य रचना के साथ साथ ही उन्होंने कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत भाषा में टीका लिखकर अपने प्राकृत भाषा के ज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है। अध्यात्मतरंगिणी की रचना करके उन्होंने अध्यात्मवाद का प्रचार किया। वास्तव में जैन सन्तों की १७-१८ वीं शताब्दि तक यह एक विशेषता रही कि वे संस्कृत एवं हिन्दी में समान गति से काव्य रचना करते रहे। उन्होंने किसी एक भाषा का ही पल्ला नहीं पकड़ा किन्तु अपने समय की प्रमुख भाषाओं में ही काव्य रचना करके उनके प्रचार एवं प्रसार में सहयोगी बने। भ० शुभचन्द्र अत्यधिक उदार मनोवृत्ति के साधु थे। उन्होंने अपने गुरू विजयकीर्त्ति के प्रति विभिन्न लघु रचनाओं में भावभरी श्रद्धांजली अर्पित की है वह उनकी महानता का सूचक है। अब समय आगया है जब कवि के काव्यों की विशेषताओं का व्यापक अध्ययन किया जावे।

सन्त शिरोमणि वीरचन्द्र

भट्टारकीय बलात्कारगण शाखा के संस्थापक भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति थे, जो संत शिरोमणि भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्यों में से थे। जब देवेन्द्रकीर्त्ति ने सूरत में भट्टारक गादी की स्थापना की थी, उस समय भट्टारक सकलकीर्ति का राजस्थान एवं गुजरात में जबरदस्त प्रभाव था और संभवतः इसी प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से देवेन्द्रकीर्त्ति ने एक और नयी भट्टारक संस्था को जन्म दिया। भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति के पीछे एवं वीरचन्द्र के पहिले तीन और भट्टारक हुए जिनके नाम हैं विद्यानन्दि (सं० १४९९-१५३७), मल्लिभूषण (१५४४-५५) और लक्ष्मीचन्द्र (१५५६-८२)। 'वीरचन्द्र' भट्टारक लक्ष्मीचन्द के शिष्य थे और इन्हीं की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने थे। यद्यपि इनका सूरतगादी से सम्बन्ध था, लेकिन ये राजस्थान के अधिक समीप थे और इस प्रदेश में खूब विहार किया करते थे।

'सन्त वीरचन्द्र' प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। व्याकरण एवं न्याय शास्त्र के प्रकाण्ड वेत्ता थे। छन्द, अलंकार, एवं संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ थे। वे जहां जाते अपने भक्तों की संख्या बढ़ा लेते एवं विरोधियों का सफाया कर देते। वाद-विवाद में उनसे जीतना बड़े २ महारथियों के लिए भी सहज नहीं था। वे अपने साधु जीवन को पूरी तरह निभाते और गृहस्थों को संयमित जीवन रखने का उपदेश देते। एक भट्टारक पट्टावली में उनका निम्न प्रकार परिचय दिया गया है :—

"तदवंशमंडन-कंदर्पदर्पदलन-विश्वलोकहृदयरंजनमहाव्रतीपुरंदराणां, नवसहस्रप्रमुखदेशाधिपराजाधिराजश्रीअर्जुनजीवराजसभामध्यप्राप्तसन्मानानां, षोड़शवर्षपर्यन्तशाकपाकपक्वान्नशाल्योदनादिसर्पिप्रभृतिसरसहारपरिवर्जितानां, दुर्वारवादिसंगपर्वतीचूर्णीकरणवज्रायमानप्रथमवचनखंडनपंडितानां, व्याकरणप्रमेयकमलमार्त्तण्डछंदोलंकृतिसारसाहित्यसंगीतसकलतर्कसिद्धान्तागमशास्त्रसमुद्रपारंगतानां, सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमंडितविबुधवरश्रीवीरचन्द्रभट्टारकाणां ...."

उक्त प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वीरचन्द्र ने नवसारी के शासक अर्जुन जीवराज से खूब सम्मान पाया तथा १६ वर्ष तक नीरस अहार का सेवन किया। वीरचन्द्र की विद्वत्ता का इनके बाद होने वाले कितने ही विद्वानों ने उल्लेख किया है। भट्टारक शुभचन्द्र ने अपनी कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका में इनकी प्रशंसा में निम्न पद्य लिखा है :—

भट्टारकपदाधीशः मूलसंघे विदांवराः ।
रमावीरेन्दु-चिद्रूपः गुरवो हि गणेशिनः ॥१०॥

भ० सुमतिकीर्ति ने इन्हें वादियों के लिए अजेय स्वीकार किया है और उनके लिए वज्र के समान माना है। अपनी प्राकृत पंचसंग्रह की टीका में इनके यश को जीवित रखने के लिए निम्न पद्य लिखा है:—

दुर्वारिदुर्वादिकपर्वतानां वज्रायमानो वरवीरचन्द्रः ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराजः ॥

इसी तरह 'भ० वादिचन्द' ने अपनी सुभगसुलोचना चरित में वीरचन्द्र की विद्वत्ता की प्रशंसा की है और कहा है कि कौनसा मूर्ख उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर विद्वान् नहीं बन सकता।

वीरचन्द्रं समाश्रित्य के मूर्खा न विदो मथन् ।
तं (श्रये) त्यक्त सार्वन्न दीप्त्या निर्जितकाञ्चनम् ॥

'वीरचन्द्र' जवरदस्त साहित्य सेवी थे। वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं गुजराती के पारंगत विद्वान थे। यद्यपि अब तक उनकी केवल ८ रचनाएं ही उपलब्ध हो सकी हैं, लेकिन वे ही उनकी विद्वत्ता का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। इनकी रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. वीर विलास फाग
२. जम्बूस्वामी वेलि
३. जिन आंतरा
४. सीमंधरस्वामी गीत
५. संबोध सत्ताणु
६. नेमिनाथ रास
७. चित्तनिरोध कथा
८. वाहुवलि वेलि

१. वीर विलास फाग

'वीर विलास फाग' एक खण्ड काव्य है, जिसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की जीवन की एक घटना का वर्णन किया गया है। फाग में १३७ पद्य हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। यह प्रति संवत् १६८६ में भ० वीरचन्द्र के शिष्य भ० महीचन्द के उपदेश से लिखी गयी थी। ब्र० ज्ञानसागर इसके प्रतिलिपिकार थे।

रचना के प्रारम्भ में नेमिनाथ के सौन्दर्य एवं शक्ति का वर्णन किया गया है, इसके पश्चात् उनकी होने वाली पत्नि राजुल की सुन्दरता का वर्णन मिलता है। विवाह के अवसर पर नगर की शोभा दर्शनीय हो जाती है तथा वहां विभिन्न उत्सव

मनाये जाते हैं। नेमिनाथ की बारात बड़ी सजधज के साथ आती है लेकिन तोरण द्वार के निकट पहुँचने के पूर्व ही नेमिनाथ एक चौक में बहुत से पशुओं को देखते हैं और जब उन्हें सारथी द्वारा यह मालूम होता है कि वे सभी पशु बरातियों के लिए एकत्रित किये गए हैं तो उन्हें तत्काल वैराग्य हो जाता है और वे बंधन तोड़ कर गिरनार चले जाते हैं। राजुल को जब उनकी वैराग्य लेने की घटना का मालूम होता है, तो वह घोर विलाप करती है, बेहोश होकर गिर पड़ती है। वह स्वयं भी अपने सब आभूषणों को उतार कर तपस्वी जीवन धारण कर लेती है। रचना के अन्त में नेमिनाथ के तपस्वी जीवन का भी अच्छा वर्णन मिलता है।

फाग सरस एवं सुन्दर है। कवि के सभी वर्णन अनूठे हैं और उनमें जीवन है तथा काव्यत्व के दर्शन होते हैं। नेमिनाथ की सुन्दरता का एक वर्णन देखिये—

वेलि कमल दल कोमल, सामल वरण शरीर।
त्रिभुवनपति त्रिभुवन निलो, नीलो गुण गंभीर ॥७॥

माननी मोहन जिनवर, दिन दिन देह दिपंत।
प्रलंब प्रताप प्रभाकर, भवहर श्री भगवंत ॥८॥

लीला ललित नेमीश्वर, अलवेश्वर उदार।
प्रहसित पंकज पंखडी, अखंडी रूपि अपार ॥९॥

अति कोमल गल गंदल, अविमल वाणी विशाल।
अंगि अनोपम निरुपम, मदन·······निवास ॥१०॥

इसी तरह राजुल के सौन्दर्य वर्णन को भी कवि के शब्दों में पढ़िये—

कठिन सुपीन पयोधर, मनोहर अति उतंग।
चंपक वर्णी चंद्राननी, माननी सोहि सुरंग ॥१७॥

हरणी हरखी निज नयणोउ वयणोउ साह सुरंग।
दंत सुपंती दीपंती, सोहंती सिरवेणी बंध ॥१८॥

कनक केरी जसी पूतली, पातली पदमनी नारि।
सतीय शिरोमणि सुन्दरी, भवतरी अवनि मझारि ॥१९॥

ज्ञान–विज्ञान विचक्षणी, सुलक्षणी कोमल काय।
दान सुपात्रह पेखती, पूजंती श्री जिनवर पाय ॥२०॥

राजमती रलीयामणी, सोहामणि सुमधुरीय वाणि।
भमर म्योली भामिनी, स्वामिनी सोहि सुराणी ॥२१॥

रूपि रंभा सुतिलोत्तमा, उत्तम अंगि आचार ।
परणितु पुण्यवंती तेहनि, नेह करी नेमिकुमार ॥२२॥

'फाग' के अन्य सुन्दरतम वर्णनों में राजुल-विलाप भी एक उल्लेखनीय स्थल है । वर्णनों के पढ़ने के पश्चात् पाठकों के स्वयमेव आंसू बह निकलते हैं । इस वर्णन का एक स्थल देखिये:—

कन्कमि कंकण मोड़ती, तोड़ती मिणिमिहार ।
लूंचती केश-कलाप, विलाप करि अनिवार ॥७०॥
नयणि नीर काजलि गलि, टलवलि भामिनी भूर ।
किम करूं कहि रे साहेलड़ी, विहि नडि गयो मझनाह ॥७१॥

काव्य के अन्त में कवि ने जो अपना परिचय दिया है, यह निम्न प्रकार है:—

श्री मूल संघि महिमा निलो, जती तिलो श्री विद्यानन्द ।
सूरी श्री मल्लिभूषण जयो, जयो सूरी लक्ष्मीचन्द ॥१३५॥
जयो सूरी श्री वीरचन्द गुणिद, रच्यो जिणि फाग ।
गांतां सामलता ए मनोहर, सुखकर श्री वीतराग ॥१३६॥
जीहां मेदिनी मेरु महीधर, द्वीप सायर जगि जाम ।
तिहां लगि ए चदो, नंदो सदा फाग ए ताम ॥१३७॥

रचनाकाल

कवि ने फाग के रचनाकाल का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है । लेकिन यह रचना सं० १६०० के पहिले की मालूम होती है ।

२. जम्बूस्वामी वेलि

यह कवि की दूसरी रचना है । इसकी एक अपूर्ण प्रति लेखक को उदयपुर (राजस्थान) के खण्डेलवाल दि०जैन-मन्दिर के शास्त्र भंडार में उपलब्ध हुई थी । वह एक गुटके में संग्रहीत है । प्रति जीर्ण अवस्था में है और उसके कितने ही स्थलों से अक्षर मिट गए हैं। इसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है ।

जम्बूस्वामी का जीवन जैन कवियों के लिए आकर्षक रहा है । इसलिए संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं अन्य भाषाओं में उनके जीवन पर विविध कृतियां उपलब्ध होती हैं ।

'वेलि' की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है, जिस पर डिंगल का प्रभाव

है। यद्यपि वेलि काव्यत्व की दृष्टि से उतनी उच्चस्तर की रचना नहीं है, किन्तु भाषा के अध्ययन की दृष्टि से यह एक अच्छी कृति है। इसमें दूहा, त्रोटक एवं चाल छंदों का प्रयोग हुआ है। रचना का अन्तिम भाग जिसमें कवि ने अपना परिचय दिया है, निम्न प्रकार है :—

श्री मूलसंघे महिमा निलो, अने देवेन्द्र कीरति सूरि राय।
श्री विद्यानंदि वसुधां निलो, नरपति सेवे पाय ॥१॥

तेह वारें उदयो गति, लक्ष्मीचन्द्र जेण आण।
श्री मल्लिभूषण महिमा घणो, नमे ग्यासुदीन सुलतान ॥२॥

तेह गुरुचरणकमलनमी, अनें वेल्लि रची छे रसाल।
श्री वीरचन्द्र सूरींवर कहें, गांता पुण्य अपार ॥३॥

जम्बूकुमार केवली हवा, अमें स्वर्ग—मुक्ति दातार।
जे भवियण भावें भावसे, ते तरसे संसार ॥४॥

कवि ने इसमें भी रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है।

३. जिन आंतरा

यह कवि की लघु रचना है, जो उदयपुर के उसी गुटके में संग्रहीत है। इसमें २४ तीर्थंकरों के एक के बाद दूसरे तीर्थंकर होने में जो समय लगता है—उसका वर्णन किया गया है। काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से रचना सामान्य है। भाषा भी वही है, जो कवि की अन्य रचनाओं की है। रचना का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है:—

सत्य शासन जिन स्वामीनूं, जेहने तेहने रंग।
हो जाते वंशे भला, ते नर चतुर सुचंग ॥६॥

जगें जनम्यूं अन्य बेहनूं, तेहनूं जीव्यूं सार।
रंग लागे जेहने मनें, जिन शासनह मझार ॥७॥

श्री लक्ष्मीचन्द्र गुरु गच्छपती, तिस पाटें सार शृंगार।
श्री वीरचन्द्र गोरें कह्या, जिन आंतरा उदार ॥८॥

४. संबोध सत्ताणु भावना

यह एक उपदेशात्मक कृति है, जिसमें ५७ पद्य हैं तथा सभी दोहों के रुप में हैं। इसकी प्रति भी उदयपुर के उसी गुटके में संग्रहीत है जिसमें कवि की अन्य

रचनाएं हैं। भावना के अन्त में कवि ने अपना परिचय भी दिया है, जो निम्न प्रकार है:—

सूरि श्री विद्यानन्दि जयो, श्री मल्लिभूषण मुनिचन्द्र ।
तस पाटे महिमा निलो, गुरु श्री लक्ष्मीचन्द्र ॥९६॥

तेह कुलकमल दिवसपति, जपती यति वीरचन्द ।
सुणतां भणतां ए भावना, पामीइ परमानन्द ॥९७॥

भावना में सभी दोहे शिक्षाप्रद हैं तथा सुन्दर भावों से परिपूर्ण हैं। कवि की कहने की शैली सरल एवं अर्थगम्य है। कुछ दोहों का आस्वादन कीजिए:—

धर्म धर्म नर उच्चरे, न धरे धर्मनो मर्म ।
धर्म कारन प्राणि हणे, न गणे निष्ठुर कर्म ॥३॥

× × × ×

धर्म धर्म सहु को कहो, न गहे धर्म नूं नाम ।
राम राम पोपट पढे, बूझे न ते निज राम ॥६॥

× × × ×

धनपाले धनपाल ते, धनपाल नामें भिखारो ।
लाछि नाम लक्ष्मी तणूं, लाछि लाकड़ां वहे नारी ॥७॥

× × × ×

दया बीज विण जे क्रिया, ते सघली अप्रमाण ।
शीतल संजल जल भर्या, जेम चण्डाल न वाण ॥१९॥

× × × ×

धर्म मूल प्राणी दया, दया ते जीवनी माय ।
भाट भ्रांति न आणिए, भ्रांते धर्मनो पाय ॥२१॥

× × × ×

प्राणि दया विण प्राणी नें, एक न इछ्यूं होय ।
तेल न बेलू पलितां, सूप न तोय विलोय ॥२२॥

× × × ×

कंठ विहणूं गान जिम, जिम विण व्याकरणे वाणि ।
न सोहे धर्म दया विना, जिम भोयण विण पाणि ॥३२॥

× × × ×

नीचनी संगति परिहरो, वारो उत्तम आचार ।
दुर्लभ भव मानव तणो, जीव तूं आलिम हार ॥४०॥

५. सीमन्धर स्वामी गीत

यह एक लघु गीत है–जिसमें सीमन्धर स्वामी का स्तवन किया गया है ।

६. चित्तनिरोधक कथा

यह १५ छन्दों की एक लघु कृति है, जिसमें चित्त को वश में रखने का उपदेश दिया गया है । यह भी उदयपुर वाले गुटके में ही संग्रहीत है । अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सूरि श्री मल्लिभूषण जयो जयो श्री लक्ष्मीचन्द्र ।
तास वंश विद्यानिलु लाड़ नीति शृंगार ।
श्री वीरचन्द्र सूरी भणी, चित्त निरोध विचार ॥१५॥

७. बाहुबलि वेलि

इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है । यह एक लघु रचना है लेकिन इसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है । त्रोटक एवं राग सिंधु मुख्य छन्द हैं ।

८. नेमिकुमार रास

यह नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर एक लघु कृति है । इसकी प्रति उदयपुर के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है । रास की रचना संवत् १६७३ में समाप्त हुई थी जैसा कि निम्न छन्दों से ज्ञात होता है—

तेहनी भक्ति करी घणी, मुनि वीरचन्द दीधी वुधि ।
श्री नेमितणा गुण वर्णव्या, पामवा सघली रिधि ॥१६॥
संवत सोलताहोत्तरि, श्रावण सुदि गुरुवार ।
दशमी को दिन रुंपडो, रास रच्यो मनोहार ॥१७॥

इस प्रकार 'भ० वीरचन्द्र' को अब तक जो कृतियां उपलब्ध हुई हैं–वे इनके साहित्य-प्रेम का परिचय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त हैं । राजस्थान एवं गुजरात के शास्त्र-भण्डारों की पूर्ण खोज होने पर इनकी अभी और भी रचनाएं प्रकाश में आने की आशा है ।

संत सुमतिकीर्त्ति

'सुमतिकीर्त्ति' नाम वाले अब तक विभिन्न सन्तों का नामोल्लेख हुआ है, लेकिन इनमें दो 'सुमतिकीर्त्ति' एक ही समय में हुए और दोनों ही अपने समय के अच्छे विद्वान् माने जाते रहे। इन दोनों में एक का 'भट्टारक ज्ञान भूषण' के शिष्य रूप में और दूसरे का 'भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप में उल्लेख मिलता है। 'आचार्य सकलभूषण' ने 'सुमतिकीर्त्ति' का भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप में अपनी उपदेशरत्नमाला में निम्न प्रकार उल्लेख किया है :—

भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिस्तत्पट्टपंकेरुहतिग्मरश्मिः ।
त्रैविद्यवंद्यः सकलप्रसिद्धो वादीभसिंहो जयतात्धरित्र्यां ॥९॥

पट्टे तस्य प्रीणित प्राणिवर्गः शांतोदांतः शीलशाली सुधीमान् ।
जीयात्सूरिः श्रीसुमत्यादिकीर्त्तिः गच्छाधीशः कमुकान्तिकलावान् ॥१०॥

''सकल भूषण' ने 'उपदेशरत्नमाला' संवत् १६२७ में समाप्त कर दी थी और इन्होंने अपने–आपको 'सुमतिकीर्त्ति' का 'गुरु भाई' होना स्वीकार किया है:—

तस्याभूच्च गुरुभ्राता नाम्ना सकलभूषणः ।
सूरिर्जिनमते लीनमनाः संतोपपोषकः ॥८॥

'ब्रह्म कामराज' ने अपने 'जयकुमार पुराण' में भी 'सुमतिकीर्त्ति' को भ० शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है :—

तेभ्यः श्रीशुभचन्द्रः श्रीसुमतिकीर्त्ति संयमी ।
गुणकीर्त्याह्वया आसन् बलात्कारगणेश्वरः ॥८॥

इसके पश्चात् सं० १७२२ में रचित 'प्रद्युम्न–प्रबन्ध में भ० देवेन्द्र कीर्त्ति ने भी सुमतिकीर्त्ति को शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है—

तेह पट्ट कुमुद पूरण समी, शुभचन्द्र भवतार रे ।
न्याय प्रमाण प्रचंड थी, गुरुवादी जलदशमी रे ॥

तस पट्टोधर प्रगटीया श्री सुमतिकीर्त्ति जयकार रे ।
तस पट्ट धारक भट्टारक गुणकीर्त्ति गुण गण धार रे ॥४॥

एक दूसरे 'सुमतिकीर्त्ति' का उल्लेख भट्टारक ज्ञान भूषण के शिष्य के रूप

में मिलता है। सर्व प्रथम भट्टारक ज्ञानभूपरण ने कर्मकाण्ड टीका में सुमतिकीर्त्ति की सहायता से टीका लिखना लिखा है:—

तदन्वये दयांभोधि ज्ञानभूपो गुणाकरः ।
टीकां ही कर्मकांडस्य चक्रे सुमतिकीर्त्तियुक् ॥२॥

ये 'सुमतिकीर्ति' मूल संघ में स्थित नन्दिसंघ वलात्कारगण एवं सरस्वती गच्छ के भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे, जिनके पूर्व भट्टारक लक्ष्मीभूपरण, मल्लिभूपरण एवं विद्यानन्दि हो चुके थे। सुमतिकीर्ति ने 'प्राकृत पंचसंग्रह'–टीका को संवत् १६२० भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन ईडर के ऋपमदेव के मन्दिर में समाप्त की थी। इस टीका का संशोधन भी ज्ञानभूपरण ने ही किया था।[1] इस प्रकार दोनों 'सुमतिकीर्त्ति' का समय यद्यपि एक सा है, किन्तु इनमें एक भट्टारक सकलकीर्त्ति की परम्परा में होने वाले भ० शुभचन्द्र के शिष्य थे और दूसरे भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा में होने वाले भट्टारक ज्ञानभूपरण के शिष्य थे। 'प्रथम सुमतिकीर्त्ति' भट्टारक शुभचन्द्र के पश्चात् भट्टारक गादी पर वैठे थे, लेकिन दूसरे सुमतिकीर्त्ति संभवतः भट्टारक नहीं थे, किन्तु ब्रह्मचारी अथवा अन्य पद धारी व्रती होंगे। यदि ऐसा न होता तो वे 'प्राकृत पंचसंग्रह टीका' में भट्टारक ज्ञानभूपरण के पश्चात् प्रभाचन्द का नाम नहीं गिनाते—

भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूपरणः ।
तस्य महोदये भानुः प्रभाचन्द्रो वचोनिधिः ॥७॥

अव हम यहां 'भ० ज्ञानभूपरण' के शिष्य 'सन्त सुमतिकीर्त्ति' की 'साहित्य-साधना' का परिचय दे रहे है।

'सुमतिकीर्त्ति' सन्त थे, और भट्टारक पद की उपेक्षा करके 'साहित्य–साधना' में अपनी विशेष रुचि रखते थे। एक 'भट्टारक–विरुदावली' में 'ज्ञानभूषरण' की प्रशंसा करते समय जव उनके शिष्यों के नाम गिनाये तो सुमतिकीर्त्ति को सिद्धांतवेदि एवं निग्रन्थाचार्य इन दो विशेपरणों से निर्दिष्ट किया है। ये संस्कृत,प्राकृत, हिन्दी एवं राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। साधु वनने के पश्चात् इन्होंने अपना अधिकांश जीवन 'साहित्य–साधना' में लगाया और साहित्य–जगत को कितनी ही रचनाएं भेंट कर गये। इनकी अव तक निम्न रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं:—
टीका ग्रंथ—

१. कर्मकाण्ड टीका २. पंचसंग्रह टीका

---

१. देखिये—पं० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित 'प्रशस्ति संग्रह'–पृ० सं० ७५

हिन्दी रचनायें—

१. धर्म परीक्षा रास
२. जिनवर स्वामी वीनती
३. जिह्वा दंत विवाद
४. वसंत विद्या-विलास
५. पद-(काल अने तो जीव बहुं परिभ्रमतां)
६. शीतलनाथ गीत

उक्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न हैः—

१. कर्मकाण्ड टीका

आचार्य नेमिचन्द्र कृत कर्मकाण्ड (प्राकृत) की यह संस्कृत टीका है । जिसको लिखने में इन्होंने अपने गुरु भट्टारक ज्ञानभूषण को पूरी सहायता दी थी । यह भी अधिक संभव है कि इन्होंने ही इसकी टीका लिखी हो और भ० ज्ञानभूषण ने उसका संशोधन करके गुरु होने के कारण अपने नाम का प्रथम उल्लेख कर दिया हो । टीका सुन्दर है । इससे सुमतिकीर्त्ति की विद्वत्ता का पता लगता है ।[1]

२. प्राकृत पंचसंग्रह टीका

'पंचसंग्रह' नाम का एक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है, जो मूलतः पांच प्रकरणों को लिए हुए है, और जिस पर मूल के साथ भाष्य चूर्णि तथा संस्कृत टीका उपलब्ध है । आचार्य अमितिगति' ने सं० १०७३ में प्राकृत पंच संग्रह का संशोधन परिवर्द्धनादि के साथ पंच संग्रह नामक ग्रन्थ बनाया था । इस टीका का पता लगाने का मुख्य श्रेय पं० परमानन्दजी शास्त्री, देहली, को है ।[2]

३. धर्मपरीक्षा रास

यह कवि की हिन्दी रचना है, जिसका उल्लेख पं० परमानन्दजी ने भी अपने प्रशस्ति संग्रह की भूमिका में किया है । इस ग्रन्थ की रचना हांसोट नगर (गुजरात) में हुई थी । रास की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है, जैसा कि कवि की अन्य रचनाओं की भाषा है । रास का रचना काल संवत् १६२५ है । रास का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार हैः—[3]

---

१. प्रशस्ति संग्रहः पृ० ७ के पूरे दो पद्य
२. देखिये—पं० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित-प्रशस्ति संग्रह-पृ० सं० ७४
३. इसकी एक प्रति अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर (राजस्थान) में संग्रहीत है ।

पंडित हेमे प्रेर्‌या घणु वणाय गने वीरदास ।
हासोट नगर पूरो हुवो, धर्म परीक्षा रास ॥

संवत् सोल पंचवीसमे, मार्गसिर सुदि बीज वार ।
रास रुड़ो रलियामणो, पूर्ण किधो छे सार ॥

४. जिनवर स्वामी वीनती

यह एक स्तवन है, जिसमें २३ छन्द है । रचना साधारण है । एक पद्य देखिये—

धन्य हाथ ते नर तणा, जे जिन पूजन्त ।
नेत्र सफल स्वामी हवां, जे तुम निरखंत ॥

श्रवण सार वली ते कह्या, जिनवाणी सुणंत ।
मन रुडुं मुनिवर तणु जे तुम्ह ध्यायंत ॥

धारु रसना ते कहीए जे लीजे जिन नाम ।
जिन चरण कमल जे नमि, ते जाणो अभिराम ॥४॥

५. जिह्वादन्त विवादः—

यह एक लघु रचना है-जिसमें केवल ११ छन्द हैं । इसमें जीभ और दांत में एक दूसरे में होने वाले विवाद का वर्णन है । भाषा सरल है । एक उदाहरण देखिए—

कठिन क वचन न बोलीयि, रह्यां एकठा दोयरे ।
पंचलोका मांहि इम भणो, जिह्वा करे यने होयरे ॥२॥

अह्यो चार्वा चूरी रसकंसू, अह्यो करु अपरमादरे ।
कवण विचारी बापड़ी, विठी करेय सवाद रे ॥३॥

वसन्त विलास गीतः—

इसमें २२ छन्द हैं-जिनमें नेमिनाथ के विवाह प्रसंग को लेकर रचना की गई है । रचना साधारणतः अच्छी है ।

'सुमतिकीर्त्ति' १६–१७ वीं शताब्दि के विद्वान थे। गुजरात एवं राजस्थान दोनों ही प्रदेश इनके पद चिह्नों से पावन बने थे। साहित्य-सर्जन एवं आत्म-साधना ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था लेकिन इससे भी बढ़कर था इनका गाँव गांव में जन-जाग्रति पैदा करना। लोग अनपढ़ थे। मूढ़ताओं के चक्कर में फंसे हुए थे। वास्तविक धर्म की ओर से इनका ध्यान कम हो गया था और मिथ्याडम्बरों की ओर प्रवृत्ति होने लगी थी। यही कारण है कि 'धर्म परीक्षा रास' की सर्व प्रथम इन्होंने रचना की। यह इनकी सबसे बड़ी कृति है। जिससे 'अमितिगति आचार्य' द्वारा निबद्ध 'धर्म परीक्षा' का सार रूप में वर्णन है। कवि की अन्य रचनाएं लघु होते हुए भी काव्यत्व शक्ति से परिपूर्ण है। गीत, पद एवं संवाद के रूप में इन्होंने जो रचनाएं प्रस्तुत की हैं, वे पाठक की रुचि को जाग्रत करने वाली हैं। 'सुमति कीर्त्ति' का अभी और भी साहित्य मिलना चाहिए और वह हमारी खोज पर आधारित है।

'ब्रह्म रायमल्ल'

१७वीं शताब्दी के राजस्थानी विद्वानों में 'ब्रह्म रायमल्ल' का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। ये 'मुनि अनन्तकीर्ति' के शिष्य थे। 'अनन्तकीर्ति' के सम्बन्ध में अभी हमें दो लघु रचनाएं मिली हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये उस समय के प्रसिद्ध सन्त थे तथा स्थान-स्थान पर विहार करके जनता को उपदेश दिया करते थे। 'ब्रह्म रायमल्ल' ने इनसे कब दीक्षा ली, इसके विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु के संघ में न रहकर स्वतन्त्र रूप से परिभ्रमण किया करते थे।

'ब्रह्म रायमल्ल' हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी १३ रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं। ये सभी रचनाएं हिन्दी में हैं। अपनी अधिकांश रचनाओं के नाम इन्होंने 'रास' नाम से सम्बोधित किया है। सभी कृतियां कथा-काव्य हैं और उनमें सरल भाषा में विषय का वर्णन किया हुआ है। इनका साहित्यकाल संवत् १६१५ से आरम्भ होता है और वह संवत् १६३६ तक चलता है। अपने इक्कीस वर्ष के साहित्यकाल में १३ रचनाएं निवद्ध कर साहित्यिक जगत की जो अपूर्व सेवाएं की हैं वे चिरस्मरणीय रहेंगी। 'ब्रह्म रायमल्ल' के नाम से ही एक और विद्वान् मिलते हैं, जिन्होंने संवत् १६६७ में 'भक्तामर स्तोत्र' की संस्कृत टीका समाप्त की थी। ये रायमल्ल हूंवड़ जाति के श्रावक थे तथा माता-पिता का नाम चम्पा और महला था।[1] ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में इन्होंने उक्त रचना समाप्न की थी। प्रश्न यह है कि दोनों रायमल्ल एक ही विद्वान् हैं अथवा दोनों भिन्न २ विद्वान् हैं।

---

१. श्रीमद्हूंवड़वंशमंडनमणि म्र्ह्येति नामा वणिक्।
तद् भार्या गुणमंडिता व्रतयुता चम्पेति नामाभिधा ॥६॥
तत्पुत्रो जिनपादकंजमधुपो, रायादिमल्लो व्रती।
चक्रे वित्तिमिमां स्तवस्य नितरां, नत्वा श्री (सु) वादींदुकं ॥७॥
सप्तपष्ठ्यंकिते वर्षे षोडशाख्ये हि सेवते। (१६६७)।
आषाढ़ श्वेतपक्षस्य पञ्चम्यां बुधवारके ॥८॥
ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभागं समाश्रिते।
प्रोत्तुंग-दुर्ग संयुक्ते श्री चन्द्रप्रभ-सद्मनि ॥९॥
वर्णिनः कर्मसी नाम्नः वचनात् मयकाऽरचि।
भक्तामरस्य सद्वृत्तिः रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

हमारे विचार से दोनों भिन्न २ विद्वान हैं, क्योंकि 'भक्तामर स्त्रोत्र वृत्ति' में उन्होंने जो परिचय दिया है, वैसा परिचय अन्य किसी रचना में नहीं मिलता । हूंबड़ जातीय 'ब्रह्म रायमल्ल' ने अपने को अनन्तकीर्ति का शिष्य नहीं माना है और अपने माता-पिता एवं जाति का उल्लेख किया है । इस प्रकार दोनों ही रायमल्ल भिन्न २ विद्वान् हैं । इनमें भिन्नता का एक और तथ्य यह है कि भक्तामर स्तोत्र की टीका संवत् १६६७ में समाप्त हुई थी जबकि राजस्थानी कवि रायमल्ल ने अपनी सभी रचनाओं को संवत् १६३६ तक ही समाप्त कर दिया था । इन ३१ वर्षों में कवि द्वारा एक भी ग्रन्थ नहीं रचा जाना भी न्याय संगत मालूम नहीं होता । इस लिए १७वीं शताब्दी में रायमल्ल नाम के दो विद्वान् हुए । प्रथम राजस्थानी विद्वान् थे जिसका समय १७वीं शताब्दी का द्वितीय चरण तक सीमित था । दूसरे 'रायमल्ल' गुजराती विद्वान् थे और उनका समय १७वीं शताब्दी के दूसरे चरण से प्रारम्भ होता है । यहां हम राजस्थानी सन्त 'ब्रह्म रायमल्ल' की रचनाओं का परिचय दे रहे हैं । आलोच्य रायमल्ल ने जिन हिन्दी रचनाओं को निबद्ध किया था, उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

१. नेमीश्वर रास
२. हनुमन्त कथा रास
३. प्रद्युम्न रास
४. सुदर्शन रास
५. श्रीपाल रास
६. भविष्यदत्त रास
७. परमहंस चौपई
८. जम्बू स्वामी चौपई [1]
९. निर्दोष सप्तमी कथा
१०. आदित्यवार कथा [2]
११. चिन्तामणि जयमाल [3]
१२. छियालीस ठाणा [4]
१३. चन्द्रगुप्त स्वप्न चौपई

इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :—

१. नेमीश्वर रास

यह एक लघु कथा काव्य है, जो १३९ छन्दों में समाप्त होता है । इसमें 'नेमिनाथ स्वामी' के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है । भाषा राजस्थानी

---

१. इसकी एक प्रति मन्दिर, संघीजी, जयपुर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है ।
२. इसकी भी एक प्रति शास्त्र भण्डार मन्दिर संघीजी में सुरक्षित है ।
३. इसकी एक प्रति दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है ।
४. इसकी एक प्रति जयपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डर में सुर-क्षित है ।

है। कवि की वर्णन शैली साधारण है। 'रास' काव्यकृति न होकर कथाकृति है, जिसके द्वारा जनसाधारण तक 'भगवान् नेमिनाथ' के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी पहुंचाना है। कवि की यह संभवतः प्रथम कृति है, इसलिए इसकी भाषा में प्रौढ़ता नहीं आ सकी है। इसे संवत् १६१५ की श्रावण सुदी १३ के दिन समाप्त की थी। रचना स्थल पार्श्वनाथ का मन्दिर था। कवि ने अपना परिचय निम्न शब्दों में दिया है :—

अहो श्री मूल संघि मुनि सरस्वती गछि, छोड़ि हो चारि कषाइनि भछि।

अनन्तकीर्ति गुरु वंदितौ, अहो तास तणौ सखी कीयो बखाण।
राइमल ब्रह्म सो जाणिज्यो, स्वामि हो पारस नाथ को थान।।

श्री नेमि जिनेश्वर पाय नमौ ।।१३७।।

अहो सोलहसै पन्द्रहै रच्यो रास, सांवलि तेरसि सावण मास।
वार ते जी बुधवासर भलै, जैसी जी बुधि दिन्हो अवकास।
पंडित कोइ जी मति हंसौ, अहौ तैसि जि बुधि कियो परगास ।।१३८।।

रास की काव्य शैली का एक उदाहरण देखिये—

अहो रजमति अति किया हो उपाउ,
कामिणी चरित ते गिण्या हो न जाइ।

वात विचारि विनै धणै सुव,
चिद्रूपस्यौ दीनै हो ध्यान।

जैसे होविवु रत्ना जडिउ,

रागाक वचन सुणै नवि कानि।
श्री नेमि जिनेश्वर पाय ननूं ।।९७।।

रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रतियां राजस्थान के कितने ही भण्डारों में मिलती हैं। रास का दूसरा नाम 'नेमिश्वर फाग' भी है।

२. हनुमन्त कथा रास

यह कवि की दूसरी रचना, जो संवत् १६१६ वैशाख बुदी ९ शनिवार को समाप्त हुई थी अर्थात् प्रथम रचना के पश्चात् ९ महीने से भी कम समय में कवि ने जनता को दूसरी रचना भेंट की। यह उसकी साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। रचना एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें जैन पुराणों के अनुसार हनुमान का वर्णन किया गया है। यह एक सुन्दर काव्य है, जिसमें कवि ने कहीं २ अपनी विद्वत्ता का भी

परिचय दिया है। इसमें ८६५ पद्य हैं, जो वस्तुबंध, दोहा और चौपई छन्दों में विभक्त हैं। भाषा राजस्थानी है।

कवि ने रचना के अन्त में अपना वही परिचय दिया है, जो उसने प्रथम रचना में दिया था। केवल नेमिश्वर रास चन्द्रप्रभ चैत्यालय में समाप्त हुआ था और यह हनुमन्त रास, मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में। कवि ने रचना के प्रारम्भ में भी मुनिसुव्रतनाथ को ही नमस्कार किया है। काव्य शैली प्रवाहमय है और वह धारा प्रवाह चलती है। काव्य के बीच बीच में सूक्तियाँ भी वर्णित हैं।

दो उदाहरण देखिए—

पुरिष बिना जो कामिनी होई, ताकौ आदर करै न कोई।
चक्रवर्ती की पुत्री होई, पुरिष बिना दुःख पावै सोई ।।७०।।

× × × × ×

नाना विधि भुजै इक कर्म, सोग कलेस आदि बहु मर्म।
एकै जन्मै एकै मरै, एकै जाइ सिधि सचरै ।।४७।।

'रास' की भाषा का एक उदाहरण देखिए—

देखी सीता तरुनी छाह, रालि मुंदड़ी छोली माह।
पड़ी मुंदड़ी देखी सीया, अचिरज भयो जनक की धीया।।६०२।।

लई मुंदड़ी कंठ लगाई, जैसे मिलै बछनौ गाई।
चन्द्र वदन सीय भयो आनन्द, जानिकि मिलीया दशरथनन्द ।।६०३।।

३. प्रद्युम्न रास

कवि की यह तीसरी रचना है, जिसमें कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित्र वर्णित है। प्रद्युम्न १६९ पुण्य पुरुषों में से है। जन्म से ही उसके जीवन में विचित्र घटनाएं घटती हैं। अनेक विद्याओं का वह स्वामी बनता है। वर्षों तक सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त में आठों कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है। कवि ने प्रस्तुत कथा को १९५ कडा-बन्ध छन्दों में पूर्ण किया है। रास की रचना संवत् १६२८ भादवा सुदी २ को समाप्त हुई थी। रचना स्थान था गढ़ हरसौर– जिसे ब्रह्म रायमल्ल ने अपने धूलि कणों से पवित्र किया था। कवि के शब्दों में इस वर्णन को पढ़िये—

हो सोलासै अठवीस विचारो, भादव सुदि दुतिया बुधवारो।

गढ़ हरसौर महा भलोजी, तिहं मैं भला जिनेसुर थान ।
श्रावक लोग वसै भलाजी, देव शास्त्र गुरु राखै मान ॥१६४॥

यह लघु कृति है जिसमें मुख्यतः काव्यत्व की ओर ध्यान न देकर कथा भाग को ओर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रत्येक पद्य 'हो' शब्द से प्रारम्भ होता है : एक उदाहरण देखिए—

हो कंचन माला दोहो दुख पायो, विद्या दीन्हीं काम न सरीयो ।

बात दोउ करि बीगड़ी जी, पहली चिति न बात विचारी ॥
हरत परत दोन्यू गयाजी, कूकर खाबी टाकर मारो ॥११८॥

हो पुत्र पांचसै लीया बुलाय, मारो वेगि काम ने जाय ।
हो मन में हरष्या नयाजी, नैण लेय वन क्रीड़ा चल्या ॥
मांझि बावड़ी चंपियो जी, ऊपरि मोटो पाथर राल्यो तो ॥१८९॥

४. सुदर्शन रास

चारित्र के विषय में 'सेठ सुदर्शन' की कथा अत्यधिक प्रसिद्ध है ।'सेठ सुदर्शन' परम शांत एवं दृढ़ संयमी श्रावक थे । संयम से च्युत नहीं होने के कारण उन्हें शूली का आदेश मिला, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया । लेकिन अपने चरित्र के प्रभाव से शूली भी सिंहासन बन गई। कवि ने इस रास को संवत् १६२९ में समाप्त किया था । इसमें २०० से अधिक छन्द हैं । काव्य साधारणतः अच्छा है ।

५. श्रीपाल रास

रचनाकाल के अनुसार यह कवि की पांचवीं रचना है ।इसमें 'श्रीपाल राजा' के जीवन का वर्णन है । वैसे यह कथा 'सिद्ध चक्र पूजा' के महात्म्य को प्रकट करने के लिए भी कही जाती है । 'श्रीपाल' को सर्व प्रथम कुष्ट रोग से पीड़ित होने के कारण राज्य-शासन छोड़कर जंगल की शरण लेनी पड़ती है । दैवयोग से उसका विवाह मैना सुन्दरी से होता है, जिसे भाग्य पर विश्वास रखने के कारण अपने ही पिता का कोप- भाजन बनना पड़ता है । मैनासुन्दरी द्वारा उसका कुष्ट रोग दूर होने पर वह विदेश जाता है और अनेक राजकुमारियों से विवाह करके तथा अपार सम्पत्ति का स्वामी बनकर वापिस स्वदेश लौटता है । उसके जीवन में कितनी ही बाधाएं आती हैं, लेकिन वे सब उसके अदम्य उत्साह एवं सूझ-बूझ के कारण स्वतः ही दूर हो जाती हैं । कवि ने इसी कथा को अपने इस काव्य के २९७ पद्यों में छन्दोबद्ध किया है । रचना स्थान राजस्थान का प्रसिद्ध गढ़ रणथम्भोर है तथा

रचना काल है संवत् १६३० की अषाढ़ सुदी १३ शनिवार। गढ़ पर उस समय अकवर वादशाह का शासन था तथा चारों ओर सुखसम्पदा व्याप्त थी। इसी को कवि के शब्दों में पढ़िए—

हो सोलासै तीसौ शुभ वर्ष, मास असाढ़ भणै सुभ हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभिनी हो, अनुराधा नषित्र सुभ सर ॥
चरण जोग दीसै भला हो, भनै वार 'सनीसरवार ॥२९४॥
हो रणथंभमर सोभौक विलास भरिया नीर ताल चहु पास।
वाग विहर वावड़ी घणी, हो धन कन सम्पत्ति तणौ निधान ॥
साहि अकवर राजई, हो सोभा घणी जिसौ सुर थान ॥२९५॥

६. भविष्यदत्त रास

यह कवि का सवसे वड़ा रासक काव्य है, जिसमें भविष्यदत्त के जीवन का विस्तृत वर्णन है। 'भविष्यदत्त' एक श्रेष्ठि-पुत्र था। वह अपने सौतेले भाई वन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए विदेश गया। भविष्यदत्त ने वहां खूव धन कमाया। कितने ही देशों में वे दोनों भ्रमण करते रहे। किन्तु बन्धुदत्त और उसमें कभी नहीं वनी। उसने भविष्यदत्त को कितनी ही वार धोखा दिया और अन्त में उसको वन में अकेला छोड़ कर स्वदेश लौट आया। वहां आकर वह भविष्यदत्त की स्त्री से ही विवाह करना चाहा, लेकिन भविष्यदत्त के वहां समय पर पहुँच जाने पर उसका काम नहीं वन सका। इस प्रकार भविष्यदत्त का पूरा जीवन रोमान्चक कथाओं से परिपूर्ण है। वे एक के वाद एक इस रूप में आती हैं कि पाठकों की उत्सुकता कभी समाप्त नहीं होती है।

'भविष्यदत्त रास' में ९१५ पद्य हैं, जो दोहा चौपई आदि विविध छन्दों में विभक्त है। कवि ने इसका समाप्ति-समारोह सांगानेर (जयपुर) में किया था। उस समय जयपुर पर महाराजा भगवंतदास का शासन था। सांगानेर एक व्यापारिक नगर था। जहां जवाहरात का भी अच्छा व्यापार होता था। श्रावकों की वहां अच्छी वस्ती थी और वे धर्म ध्यान में लीन रहा करते थे। रास का रचनाकाल संवत् १६३३ कार्त्तिक सुदी १४ शनिवार है। इसी वर्णन को कवि के शब्दों में पढ़िये—

सौलह सै तेतीसै सार, कातिग सुदी चौदसि शनिवार।
स्वाति नक्षित्र सिद्धि सुभजोग, पीड़ा दुख न व्यापै रोग ॥९०८॥
देस ढूंढाहड़ सोभा घणी, पूजै तहां आलि मण तणी।
निर्मल तली नदी बहुफेरि, सुबस वसै वहु सांगानेरि ॥९०९॥

चहुं दिसि वण्या भला बाजार, भरे पटोला मोतीहार।
भवन उत्तंग जिनेसुर तणा, सौभे चंदवो तोरण घणा ॥६१०॥

राजा राजै भगवंतदास, राज कुंवर सेवहि बहुतास।
परिजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरवै आस ॥९११॥

श्रावग लोग वसै धनवंत, पूजा करहि जपहि अरहंत।
उपरा उपरी वैर न काय, जिम अहिमिन्द्र सुर्ग सुखदाय ॥९१२॥

पूरा काव्य चौपई छन्दों में है, लेकिन कहीं कहीं वस्तु बंध तथा दोहा छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा राजस्थानी है। वर्णन प्रवाहमय है तथा कथा रूप में लिखा हुआ है—

भवसदत राजा सुकमाल, सुख सो जातन जाणैं काल।
घोड़ा हस्ती रथ अति घणा, उंट पालिक घर सत खणा ॥६१९॥

दल बल देस अधिक भण्डार ठाड़ा सेवै राजकुंवार।
छत्र सिंघासण दासी दास, सेवक बहु खोसरा खवास ॥६२०॥

७. परमहंस चौपई

यह रचना संवत् १६३६ ज्येष्ठ वुदी १३ के दिन समाप्त हुई थी। कवि उस समय तक्षकगढ़ (टोड़ारायसिंह) में थे। यह एक रूपक काव्य है। छन्द संख्या ६५१ है। इसकी एक मात्र प्रति दौसा (जयपुर) के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। चौपई की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है:—

मूल संघ जग तारणहार, सरब गच्छ गरवो आचार।
सकलकीर्त्ति मुनिवर गुणवन्त, तास माहि गुणलहो न अन्त ॥६४०॥

तिहको अमृत नांव अतिचंग, रत्नकीर्त्ति मुनिगुणा अभंग।
अनन्तकीर्त्ति तास शिष्य जान, बोले मुख तै अमृतवान ॥६४१॥

तास शिष्य जिन चरणालीन, ब्रह्म राइमल्ल बुधि को हीन।
भाव-भेद तिहां थोड़ो लह्यो, परमहंस की चौपई कह्यो ॥६४२॥

अधिको वोछो अन्यो भाव, तिहको पंडित करो पसाव।
सदा होई सन्यासी मर्ण, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ॥६४३॥

सौलासै छत्तीस बखान, ज्येष्ठ सावली तेरस जान।
सोमैवार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभसार ॥६४४॥

देस भलो तिह नागर चाल, तक्षिक गढ़ अति वन्यौ विसाल ।
सोभैं वाड़ी बाग सुचंग, कूप बावड़ी निरमल अंग ।।६४५।।

चहु दिसि बन्या अधिकवाजार, भरचा पटंबर मोतीहार ।
जिन चैत्यालय बहुत उत्तंग, चंदवा तोरण धुजा सुभंग ।।६४६।।

८. चन्द्रगुप्त चौपई

इसमें भारत के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को जो १६ स्वप्न आये थे और उन्होंने जिनका फल अन्तिम श्रुतकेवली भद्रवाहु स्वामी से पूछा था, उन्हींका इस कृति में वर्णन दिया गया है। यह एक लघु कृति है। जिसमें २५ चौपई छन्द हैं। इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है।

९. निर्दोष सप्तमी व्रतकथा

यह एक व्रत कथा है। यह भादवा सुदी सप्तमी को किया जाता है और उस समय इस कथा को व्रत करने वालों को सुनाया जाता है। इसमें ५९ दोहा चौपई छन्द है। अन्तिम छन्द इस प्रकार है:—

नर नारी जो नीदुप करे, सो संसारं थोड़ो फिरै ।
जिन पुराण मही इम सुण्यौ, जिहि विधि ब्रह्म रायमल्ल भण्यो ।।५९।।

इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के संग्रहालय में है।

मूल्यांकन

'ब्रह्म रायमल्ल' महाकवि तुलसीदास के पूर्व कालीन कवि थे। जब कवि अपने जीवन का अन्तिम अध्याय समाप्त कर रहे थे, उस समय तुलसीदास साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश करने की परि कल्पना कर रहे होंगे। ब्र० रायमल्ल में काव्य रचना की नैसर्गिक अभिरुचि थी। वे ब्रह्मचारी थे, इसलिए जहां भी चातुर्मास करते, अपने शिष्यों एवं अनुयायियों को वर्षाकाल समाप्ति के उपलक्ष्य में कोई न कोई कृति अवश्य भेंट करते। वे साहित्य के आचार्य थे। लेकिन काव्य रचना करते थे सीधी-सादी जन भाषा में क्योंकि उनकी दृष्टि में क्लिष्ट एवं अलंकारों से ओत-प्रोत रचना का जन-साधारण की अपेक्षा विद्वानों के ही लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। अब तक उनकी १३ कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं और वे सभी कथा प्रधान रचनाएं हैं। इनकी भाषा राजस्थानी है। ऐसा लगता है कि स्वयं कवि अथवा उनके शिष्य इन कृतियों को जनता को सुनाया करते थे। कवि हरसौरगढ़, रणथम्भोर एवं सांगानेर में काव्य-रचना से पूर्व भी इसी तरह विहार करते रहे

थे। सांगानेर संभवतः उनका अन्तिम स्थान था, जहां से वे अन्य स्थान पर नहीं गये होंगे। जब वह सांगानेर आये थे, तो वह नगर धन-धान्य से परिपूर्ण था। उनके समय में भारत पर सम्राट अकबर का शासन था तथा आमेर का राज्य राजा भगवन्तदास के हाथ में था। इसलिए राज्य में अपेक्षाकृत शान्ति थी। जैनों का अच्छा प्रभाव भी कवि को सांगानेर में जीवन पर्यन्त ठहरने में सहायक रहा होगा। उनने यहां आकर आगे आने वाले विद्वानों के लिए काव्य रचना का मार्ग खोल दिया और १७ वीं शताब्दि के पश्चात् तत्कालीन आमेर एवं जयपुर राज्य में साहित्य की ओर जनता की रुचि बढायी। यह अधिकांश पाठकों से छुपी नहीं है।

'ब्रह्म रायमल्ल' के पश्चात् राजस्थान के इस भाग में विशेप रूप से साहित्यिक जाग्रति हुई। पाण्डे राजमल्ल भी इन्हीं के समकालीन थे। इसके पश्चात् १७ वीं, १८ वीं एवं १९ वीं शताव्दी में एक के पश्चात् दूसरा कवि एवं विद्वान होते रहे, और साहित्य-रचना की पावन-धारा में बराबर वृद्धि होती रही और वह महा पं० टोडरमल जी के समय में वह नदी के रूप में प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार ब्र० रायमल्ल का पूरे राजस्थान में हिन्दी भाषा की रचनाओं की वृद्धि में जो योगदान रहा, वह सदा स्मरणीय रहेगा।

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

वह विक्रमीय १७ वीं शताब्दी का समय था। भारत में बादशाह अकबर का शासन होने से अपेक्षाकृत शान्ति थी किन्तु वागड एवं मेवाड़ प्रदेश में राजपूतों एवं मुगल शासकों में अनवन रहने के कारण सदैव ही युद्ध का खतरा तथा धार्मिक संस्थानों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों के नष्ट किये जाने का भय वना रहता था। लेकिन वागड प्रदेश में भ० सकलकीर्ति ने १४ वीं शताब्दी में धर्म प्रचार तथा साहित्य प्रचार की जो लहर फैलायी थी वह अपनी चरम सीमा पर थी। चारों ओर नये नये मंदिरों का निर्माण एवं प्रतिष्ठा विधानों की भरमार थी। भट्टारकों, मुनियों, साधुओं, ब्रह्मचारियों एवं स्त्री सन्तों का विहार होता रहता था एवं अपने सदुपदेशों द्वारा जन मानस को पवित्र किया करते थे। गृहस्थों में उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी एवं जहां उनके चरण पड़ते थे वहां जनता अपनी पलकें विछाने को तैयार रहती थी। ऐसे ही समय में घोघा नगर के हूंवड जातीय श्रेष्ठी देवीदास के यहां एक वालक का जन्म हुआ।[1] माता सहजलदे विविध कलाओं से युक्त वालक को पाकर फूली नहीं समायी। जन्मोत्सव पर नगर में विविध प्रकार के उत्सव किये गये। वह वालक वड़ा होनहार था वचपन में उस वालक को किस नाम से पुकारा जाता था इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

जीवन एवं कार्य

वड़े होने पर वह विद्याध्यन करने लगा तथा थोड़े ही समय में उसने प्राकृत एवं संस्कृत ग्रंथों का गहरा अध्ययन कर लिया। एक दिन अकस्मात् ही उसका भट्टारक अभयनन्दि से साक्षात्कार हो गया। भट्टारक जी उसे देखते ही वड़े प्रसन्न हुये एवं उसकी विद्वता एवं वाक्चातुर्यता से प्रभावित होकर उसे अपना शिष्य वना लिया। अभयनंदि ने पहिले उसे सिद्धान्त, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष एवं

---

१. हुंवड वंशे विवुध विख्यात रे,
मात सेहेजलदे देवीदास तातरे।

कुंअर कलानिधि कोमल काय रे
पद पूजो प्रेम पातक पलाय रे।

रत्नकीर्ति गीत—गणेश कृत

आयुर्वेद आदि विपयों के ग्रंथों का अध्ययन करवाया ।[1] वह व्युत्पन्न मति था इसलिये शीघ्र ही उसने उन पर अधिकार पा लिया । अध्ययन समाप्त होने के बाद अभयनन्दि ने उसे अपना पट्ट शिष्य घोषित कर दिया । ३२ लक्षणों एवं ७२ कलाओं से सम्पन्न विद्वान युवक को कौन अपना शिष्य बनाना नही चाहेगा । संवत् १६४३ में एक विशेप समारोह के साथ उसका महाभिपेक कर दिया गया और उसका नाम रत्नकीर्ति रखा गया । इस पद पर वे संवत् १६५६ तक रहे । अतः इनका काल अनुमानतः संवत् १६०० से १६५६ तक का माना जा सकता है ।

सन्त रत्नकीर्ति उस समय पूर्ण युवा थे । उनकी सुन्दरता देखते ही बनती थी । जब वे धर्म-प्रचार के लिये विहार करते तो उनके अनुपम सौन्दर्य एवं विद्वता से सभी मुग्ध हो जाते । तत्कालीन विद्वान गणेश कवि ने भ० रत्नकीर्ति की प्रशंसा करते हुये लिखा है—

अरध शशि सम सोहे शुभ मालरे,
वदन कमल शुभ नयन विशाल रे

दशन दाडिम सम रसना रसाल रे,
अधर विवीफल विजित प्रवाल रे ।

कंठ कंवू सम रेखा त्रय राजे रे,
कर किसलिय सम नख छवि छाज रे ॥

वे जहां भी विहार करते सुन्दरियां उनके स्वागत में विविध मंगल गीत गाती । ऐसे ही अवसर पर गाये हुये गीत का एक भाग देखिये—

कमल वदन करुणालय कहीये,
कनक वरण सोहे कांत मोरी सहीय रे ।

कजल दल लोचन पापना मोचन
कलाकार प्रगटो विख्यात मोरी सहीय रे ॥

वलसाड नगर में संघपति मल्लिदास ने जो विशाल प्रतिष्ठा करवायी थी वह रत्नकीर्त्ति के उपदेश से ही सम्पन्न हुई थी । मल्लिदास हूंवड जाति के श्रावक

---

१. अभयनन्द पाटे उदयो दिनकर, पंच महाव्रत धारी ।
सास्त्र सिधांत पुराण ए जो, सो तर्क वितर्क विचारी ।
गोमटसार संगीत सिरोमणि, जाणो गोयम अवतारी ।
साहा देवदास केरो सुत सुख कर सेजलदे उरे अवतारी ।
गणेश कहे तम्हो वंदो रे, भवियण कुमति कुसंग निवारी ॥२॥

थे तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। इस प्रतिष्ठा में सन्त रत्नकीर्त्ति अपने संघ सहित सम्मिलित हुये थे तथा एक विशाल जल यात्रा हुई थी जिसका विस्तृत वर्णन तत्कालीन कवि जयसागर ने अपने एक गीत में किया है—

जलयात्रा जुगते जाय, त्याहा माननी मंगल गाय।
संघपति मल्लिदास सोहंत, संघवेण मोहणदे कंत।
सारी शृंगार सोलमु सार, मन धरयो हरषा अपार।
च्याला जलयात्रा काजे, बाजित बहु विध बाजे।
वर ढोल निशान नफेरी, दड गडी दमाम सुभेरी।
सणाई सरूपा साद, झल्लरी कसाल सुनाद।
वंधूक निशाण न फाट, वोले, विरद बहु विध भाट।
पालखी चामर शुभ छत्र, गजगामिनी नाचे विचित्र।
धाट चुनडी कुंभ सोहावे, चंद्राननी ओढीने आवे।

शिष्य परिवार

रत्नकीर्त्ति के कितने ही शिष्य थे। ये सभी विद्वान एवं साहित्य-प्रेमी थे। इनके शिष्यों की कितनी ही कविताएें उपलब्ध हो चुकी हैं। इनमें कुमुदचन्द्र, गणेश जय सागर एवं राघव के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। कुमुदचन्द्र को संवत् १६५६ में इन्होंने अपने पट्ट पर विठलाया। ये अपने समय के समर्थ प्रचारक एवं साहित्य सेवी थे। इनके द्वारा रचित पद, गीत एवं अन्य रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। कुमुदचन्द्र ने अपनी प्राय: प्रत्येक रचना में अपने गुरु रत्नकीर्त्ति का स्मरण किया है। कवि गणेश ने भी इनके स्तवन में बहुत से पद लिखे हैं— एक वर्णन पढिये—

वदने चंद हरावयो सीअले जीत्यो अनंग।
सुंदर नयण नीरखामे, लाजा मीन कुरंग।
जुगल श्रवण शुभ सोभतारे नास्या सूकनी चंच।
अधर अरूण रंगे ओपमा, दंत मुक्त परपंच।
जुहवा जतीणी जाणे सखी रे, अनोपम अमृत वेल।
ग्रीवा कंबु कोमलरी रे, उन्नत भुजनी वेल।

इसी प्रकार इनके एक शिष्य राघव ने इनकी प्रशंसा करते हुये लिखा है कि वे खान मलिक द्वारा सम्मानित भी किये गये थे—

लक्षण वत्तीस सकल अंगि बहोत्तरि
खान मलिक दिये मान जी।

कवि के रूप में

रत्नकीर्त्ति को अपने समय का एक अच्छा कवि कहा जा सकता है। अभी तक इनके ३६ पद प्राप्त हो चुके हैं। पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सन्त होते हुये भी रसिक कवि थे। अतः इनके पदों का विषय मुख्यतः नेमिनाथ का विरह रहा है। राजुल की तड़फन से ये बहुत परिचित थे। किसी भी बहाने राजुल नेमि का दर्शन करना चाहती थी। राजुल बहुत चाहती थी कि वे (नयन)नेमि के आगमन का इन्तजार न करें लेकिन लाख मना करने पर भी नयन उनके आगमन की वाट जोहना नहीं छोडते—

वरज्यो न माने नयन निठोर।
सुमिरि सुमिरि गुन भये सजल घन, उमंगी चले मति फोर ॥१॥

चंचल चपल रहत नहीं रोके, न मानत जु निहोर।
नित उठि चाहत गिरि को मारग, जेही विधि चंद्र चकोर ॥२॥ वरज्यो ॥

तन मन धन योवन नहीं भावत, रजनी न भावत भोर।
रत्नकीरति प्रभु वेगो मिलो, तुम मेरे मन के चोर ॥३॥ वरज्यो ॥

एक अन्य पद में राजुल कहती है कि नेमि ने पशुओं की पुकार तो सुन ली लेकिन उसकी पुकार क्यों नहीं सुनी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वे दूसरों का दर्द जानते ही नहीं हैं—

सखी री नेमि न जानी पीर।
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, संग लेई हलधर वीर ॥१॥

सखी री० ॥

नेमि मुख निरखी हरषी मनसूं, अब तो होइ मन धीर।
तामे पसूय पुकार सुनी करी, गयो गिरिवर के तीर ॥२॥

सखी री० ॥

चंदवदनी पोकारती डारती, मंडन हार उर चीर।
रतनकीरति प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो धीर ॥३॥

सखी री० ॥

एक पद में राजुल अपनी सखियों से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती है। वह कहती है कि नेमि के विना यौवन, चंदन, चन्द्रमा ये सभी फीके लगते हैं। माता-

पिता, सखियां एवं रात्रि सभी दुःख उत्पन्न करने वाली हैं इन्हीं भावों को रत्नकीर्ति के एक पद में देखिये—

सखि ! को मिलावे नेम नरिंदा ।
ता विन तन मन यौवन रजत हे, चारु चंदन अरु चंदा ।।१।।
सखि० ।।

कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुःसह मदन को फंदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दुःख को कंदा ।।२।।
सखि० ।।

तुम तो शंकर सुख के दाता, करम अति काए मंदा ।
रतनकीरति प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ।।३।।
सखि० ।।

अन्य रचनाएं

इनकी अन्य रचनाओं में नेमिनाथ फाग एवं नेमिनाथ बारहमासा के नाम उल्लेखनीय हैं। नेमिनाथ फाग में ५७ पद्य हैं। इसकी रचना हांसोट नगर में हुई थी। फाग में नेमिनाथ एवं राजुल के विवाह, पशुओं की पुकार सुनकर विवाह किये विना ही वैराग्य धारण कर लेना और अन्त में तपस्या करके मोक्ष जाने की अति संक्षिप्त कथा दी हुई है। राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है।

चन्द्रवदनी मृगलोचनी, मोचनी खंजन मीन ।
वासग जीत्यो वेणिइं, श्रेणिय मधुकर दीन ।

युगल गल दाये शशि, उपमा नाशा कीर ।
अधर विद्रुम सम उपता, दंतन निर्मल नीर ।

चिवुक कमल पर षट पद, आनंद करे सुधापान ।
ग्रीवा सुन्दर सोभती, कंबु कपोतने वान ।।१२।।

नेमिबारहमासा इनकी दूसरी बड़ी रचना है। इसमें १२ त्रोटक छन्द हैं। कवि ने इसे अपने जन्म स्थान घोघा नगर में चैत्यालय में लिखी थी। रचनाकाल का उल्लेख नहीं दिया गया है। इसमें राजुल एवं नेमि के १२ महिने किस प्रकार व्यतीत होते हैं यहीं वर्णन करना रचना का मुख्य उद्देश्य है।

अब तक कवि की ६ रचनायें एवं ३८ पदों की खोज की जा चुकी है।

इस प्रकार सन्त रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक एवं साहित्य सेवी विद्वान् थे। इनके द्वारा रचित पदों की प्रथम पंक्ति निम्न प्रकार है—

१. सारङ्ग ऊपर सारङ्ग सोहे सारङ्गत्यासार जी
२. सुण रे नेमि सामलीया साहेब क्यों बन छोरी जाय
३. सारङ्ग सजी सारङ्ग पर आवे
४. वृषभ जिन सेवो बहु प्रकार
५. सखी री सावन घटाई सतावे
६. नेम तुम कैसे चले गिरिनार
७. कारण कोउ पीया को न जाणे
८. राजुल गेहे नेमी जाय
९. राम सतावे रे मोही रावन
१०. अब गिरी वरज्यो न माने मोरो
११. नेमि तुम आयो घरिय घरे
१२. राम कहे अवर जया मोही भारी
१३. दशानन वीनती कहत होइ दास
१४. वरज्यो न माने नयन निठोर
१५. झीलते कहा कर्‌यो यदुनाथ
१६. सरदी की रयनि सुन्दर सोहात
१७. सुन्दरी सकल सिंगार करे गोरी
१८. कहा थे मंडन करु कजरा नैन भरु
१९. सुनो मेरी सयनी धन्य या रयनी रे
२०. रथडो नीहालती रे पूछति सहे सावन नी वाट
२१. सखी को मिलावो नेम नरिंदा
२२. सखी री नेम न जानी पीर
२३. वंदेहं जनता शरण
२४. श्रीराग गावत सुर किन्नरी
२५. श्रीराग गावत सारङ्गधरी
२६. आजु आली आये नेम नो साउरी

भक्ति में अधिक रुचि रखते थे इसलिए उन्होंने अपनी अधिकांश कृतियां इन्हीं दो पर आधारित करके लिखी। नेमिनाथ गीत एवं नेमिनाथ बारहमासा के अतिरिक्त अपने हिन्दी पदों में राजुल नेमि के सम्बन्ध को अत्यधिक भावपूर्ण भाषा में उपस्थित किया। सर्व प्रथम इन्होंने राजुल को एक नारी के रूप में प्रस्तुत किया। विवाह होने के पूर्व की नारी दशा को एवं तोरणद्वार से लौट जाने पर नारी हृदय को खोलकर अपने पदों में रख दिया। वास्तव में यदि रत्नकीर्त्ति के इन पदों का गहरा अध्ययन किया जावे तो कवि की कृतियों में हमें कितने ही नये चरणों की स्थापना मिलेगी। विवाह के पूर्व राजुल अपने पूरे शृंगार के साथ पति की बारात देखने के लिए महल की छत पर सहेलियों के साथ उपस्थित होती है इसके पश्चात पति के अकस्मात वैराग्य धारण कर लेने के समाचारों से उसका शृंगार वियोग में परिणत हो जाता है दोनों ही वर्णनों को कवि ने अपने पदों में उत्तम रीति से प्रस्तुत किया है।

भ० रत्नकीर्त्ति की सभी रचनायें भाषा, भाव एवं शैली सभी दृष्टियों से अच्छी रचनायें हैं। कवि हिन्दी के जबरदस्त प्रचारक थे। संस्कृत के ऊंचे विद्वान् होने पर भी उन्होंने हिन्दी भाषा को ही अधिक प्रश्रय दिया और अपनी कृतियाँ इसी भाषा में लिखी। उन्होंने राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात में भी हिन्दी रचनाओं का ही प्रचार किया और इस तरह हिन्दी प्रेमी कहलाने में अपना गौरव समझा। यही नहीं रत्नकीर्त्ति के सभी शिष्य प्रशिष्यों ने इस भाषा में लिखने का उपक्रम जारी रखा और हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना पूर्ण योग दिया।

———
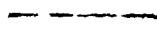
वारडोली के संत कुमुदचंद्र

बारडोली गुजरात का प्राचीन नगर है। सन् १९२१ में यहां स्व० सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह का विगुल बजाया था और बाद में वहीं की जनता द्वारा उन्हें 'सरदार' की उपाधि दी गई थी। आज से ३५० वर्ष पूर्व भी यह नगर अध्यात्म का केन्द्र था। यहां पर ही 'सन्त कुमुदचन्द्र' को उनके गुरु भ० रत्नकीर्त्ति एवं जनता ने भट्टारक-पद पर अभिषिक्त किया था। इन्होंने यहां के निवासियों में धार्मिक चेतना जाग्रत की एवं उन्हें सच्चरित्रता, संयम एवं त्यागमय जीवन अपनाने के लिए बल दिया। इन्होंने गुजरात एवं राजस्थान में साहित्य, अध्यात्म एवं धर्म की त्रिवेणी बहायी।

संत कुमुदचंद्र वाणी से मधुर, शरीर से सुन्दर तथा मन से स्वच्छ थे। जहां भी उनका विहार होता जनता उनके पीछे हो जाती। उनके शिष्यों ने अपने गुरु की प्रशंसा में विभिन्न पद लिखे हैं। संयमसागर ने उनके शरीर को बत्तीस लक्षणों से सुशोभित, गम्भीर बुद्धि के धारक तथा वादियों के पहाड़ को तोड़ने के लिए वज्र समान कहा है।[1] उनके दर्शनमात्र से ही प्रसन्नता होती थी। वे पांच महाव्रत तेरह प्रकार के चारित्र को धारण करने वाले एवं बाईस परीषह को सहने वाले थे।[2] एक दूसरे शिष्य धर्मसागर ने उनकी पात्रकेशरी, जम्बूकुमार, भद्रबाहु एवं गौतम गणधर से तुलना की है।[3]

उनके विहार के समय कुंकम छिडकने तथा मोतियों का चौक पूरने एवं बधावा गाने के लिए भी कहा जाता था।[4] उनके एक और शिष्य गणेश ने उनकी निम्न शब्दों में प्रशंसा की है:—

---

१. ते बहु कूंखि उपनो वीर रे, बत्तीस लक्षण सहित शरीर रे।
बुद्धि बहोत्तरि छे गंभीर रे, वादी नग खण्डन वज्र समधीर रे॥

२. पंच महाव्रत पाले चंग रे, त्रयोदश चारित्र छे अभंग रे।
बावीय परीसा सहे अंगि रे, दरशन दीठे रंग रे॥

३. पात्रकेशरी सम जांणियेरे, जाणों वे जंबु कुमार।
भद्रबाहु यतिवर जयो, कलिकाले रे गोयम अवतार रे॥

४. सुन्दरि रे सहु आवो, तह्मे कुंकम छडो देवडावो।
वार मोतिये चौक पूरावो, रूडा सह गुरु कुमुदचंदने बधावे॥

कला बहोत्तर अंग रे, सीयके जीत्यो अनंग ।
माहंत मुनी मूलसंघ के सेवो सुरतरुजी ॥

सेवो सज्जन आनंद धनि कुमुदचन्द्र मुणिंद,
रतनकीरति पाटि चंद के गछपति गुणनिलोजी ॥१॥

जीवों की दया करने के कारण लोग उन्हें दया का वृक्ष कहते थे । विद्याबल से उन्होंने अनेक विद्वानों को अपने वश में कर लिया था । इनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी तथा राजा महाराजा एवं नवाब उनके प्रशंसक बन गये थे ।

कुमुदचन्द्र का जन्म गोपुर ग्राम में हुआ था । पिता का नाम सदाफल एवं माता का नाम पद्मावाई था । इन्होंने मोढ वंश में जन्म लिया था ।[1] इनका जन्म का नाम क्या था, इसके विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता । ये जन्म से होनहार थे ।

बचपन से ही वे उदासीन रहने लगे और युवावस्था से पूर्व ही इन्होंने संयम धारण कर लिया । इन्द्रियों के ग्राम को उजाड़ दिया तथा कामदेव रूपी सर्प को जीत लिया ।[2] अध्ययन की ओर इनका विशेष ध्यान था । ये रात दिन व्याकरण, नाटक, न्याय, आगम एवं छंद अलंकार शास्त्र आदि का अध्ययन किया करते थे ।[3] गोम्मटसार आदि ग्रन्थों का इन्होंने विशेष अध्ययन किया था । विद्यार्थी अवस्था में ही ये भ० रत्नकीर्ति के शिष्य बन गये । इनकी विद्वत्ता, वाक्चातुर्यता एवं अगाध ज्ञान को देखकर भ० रत्नकीर्ति इन पर मुग्ध हो गये और इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बना लिया । धीरे २ इनकी कीर्ति बढ़ने लगी । रत्नकीर्ति ने बारडोली नगर में अपना पट्ट स्थापित किया था और संवत् १६५६ (सन् १५९९) वैशाख मास में

---

१. मोढ वंश शृंगार शिरोमणि, साह सदाफल तात रे ।
जायो जतिवर जुग जयवन्तो, पद्मावाई सोहात रे ॥

२. बालपणें जिणे संयम लीधो, धरीयो वेराग रे ।
इन्द्रिय ग्राम उजारया हेला, जीत्यो मद नाग रे ॥

३. अहनिशि छन्द व्याकरण नाटिक भणे,
न्याय आगम अलंकार ।

वादी गज केसरी विरुद्ध वारु वहे,
सरस्वती गच्छ सिणगार रे ॥

गीत धर्मसागर कृत

इनका जैनों के प्रमुख संत (भट्टारक) के पद पर अभिषेक कर दिया ।[1] यह सारा कार्य संघपति कान्ह जी, संघ वहिन जीवादे, सहस्त्रकरण एवं उनकी धर्मपत्नी तेजलदे, भाई मल्लदास एवं वहिन मोहनदे, गोपाल आदि की उपस्थिति में हुआ था । तथा इन्होंने कठिन परिश्रम् करके इस महोत्सव को सफल वनाया था ।[2] तभी से कुमुदचन्द वारडोली के संत कहलाने लगे ।

बारडोली नगर एक लंबे समय तक आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं धार्मिक गति-विधियों का केन्द्र रहा । संत कुमुदचन्द्र के उपदेशामृत को सुनने के लिए वहां धर्मप्रेमी सज्जनों का हमेशा ही आना जाना रहता । कभी तीर्थयात्रा करने वालों का संघ उनका आशीर्वाद लेने आता तो कभी अपने-अपने निवास-स्थान के रजकणों को संत के पैरों से पवित्र कराने के लिए उन्हें निमन्त्रण देने वाले वहां आते । संवत्

---

१. संवत् सोल छपन्ने वैशाखे प्रकट पटोधर थाप्या रे ।
रत्नकीर्त्ति गोर बारडोली वर सूर मंत्र शुभ आप्या रे ।
भाई रे मन मोहन मुनिवर सरस्वती गच्छ सोहंत ।
कुमुदचन्द भट्टारक उदयो भवियण मन मोहंत रे ।।

गुरु स्तुति गणेशकृत

वारडोली मध्ये रे, पाट प्रतिष्ठा कीध मनोहार ।
एक शत आठ कुम्भ रे, ढाल्या निर्मल जल अतिसार ।।
सूर मंत्र आपयो रे, सकलसंघ सानिध्य जयकार ।
कुमुदचन्द्र नाम कह्यं रे, संघवि कुटम्ब प्रतपो उदार ।।

गुरु गीत गणेश कृत

२. संघपति कहांन जी संघवेण जीवादेनो कन्त ।
सहेसकरण सोहे रे तरुणी तेजलदे जयवंत ।।
मल्लदास मनहरु रे नारी मोहन दे अति संत ।
रमादे वीर भाई रे गोपाल वेजलदे मन मोहन्त ।।६।।

गुरु-गीत

संघवी कहान जी भाइया वीर भाई रे ।
मल्लिदास जमला गोपाल रे ।।
छपने संवतसरे उछव अति करयो रे ।
संघ मेली बाल गोपाल रे ।।

गीत-गणेशकृत

१६८२ में इन्होंने गिरिनार जाने वाले एक संघ का नेतृत्व किया ।[1] इस संघ के संघपति नागजी भाई थे, जिनकी कीर्त्ति चन्द्र—सूर्य—लोक तक पहुंच चुकी थी। यात्रा के अवसर पर ही कुमुदचन्द्र संघ सहित घोघा नगर आये, जो उनके गुरु रत्नकीर्त्ति का जन्म—स्थल था। बारडोली वापस लौटने पर श्रावकों ने अपनी अपार सम्पत्ति का दान दिया ।[2]

कुमुदचन्द्र आध्यात्मिक एवं धार्मिक सन्त होने के साथ साथ साहित्य के परम आराधक थे। अब तक इनकी छोटी बड़ी २८ रचनाऐं एवं ३० से भी अधिक पद प्राप्त हो चुके हैं। ये सभी रचनाऐं राजस्थानी भाषा में हैं, जिन पर गुजराती का प्रभाव है। ऐसा ज्ञात होता है कि ये चिन्तन, मनन एवं धर्मोपदेश के अतिरिक्त अपना सारा समय साहित्य-सृजन में लगाते थे। इनकी रचनाओं में गीत अधिक हैं, जिन्हें ये अपने प्रवचन के समय श्रोताओं के साथ गाते थे ।[3] नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण करने की अदभुत घटना से ये अपने गुरु रत्नकीर्त्ति के समान बहुत प्रभावित थे, इसीलिए इन्होंने नेमिनाथ एवं राजुल पर कई रचना लिखी हैं। उनमें नेमिनाथ बारहमासा, नेमीश्वर गीत, नेमिजिन गीत, आदि के नाम उल्लेखनिय हैं। राजुल का सौन्दर्य वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है—

रूपे फूटडो मिटे जूठडी बोले मीठडीं वाणी ।
विद्रुम उठडो पल्लव गोठडी रसनी कोटडी वखांणी रे ।।

सारंग वयणी सारंग नयणी सारंग मनी श्यामा हरी ।
लंबी कटि भमरी बंकी शंकी हरिनी मार रे ।।

कवि ने अधिकांश छोटी रचनाऐं लिखी हैं। उन्हें कंठस्थ भी किया जा सकता है। बड़ी रचनाओं में आदिनाथ विवाहलो, नेमीश्वरहमची एवं भरत बाहुबलि

---

१. संवत् सोल व्यासीये संवच्छर गिरिनारि यात्रा कीधा ।
श्री कुमुदचन्द्र गुरु नामि संघपति तिलक कहवा ।।१३।।

गीत धर्मसागर कृत

२. इणि परिउछव करता आव्या घोघानगर मझारि ।
नेमि जिनेश्वर नाम जपंता उतर्या जलनिधिपार ।।

गाजते वाजते साहमा करीने आव्या बारडोली ग्राम ।
याचक जन सन्तोष्या भूतलि राख्यो नाम ।।

३. देश विदेश विहार करे गुरु प्रति बोध प्राणी ।
धर्म कथा रसने वरसन्ती. मीठी छे वाणी रे भाय ।।

छन्द हैं। शेष रचनाएं गीत एवं विनतियों के रूप में हैं। यद्यपि सभी रचनाएं सुन्दर एवं भाव पूर्ण हैं लेकिन भरत बाहुवलि छंद, आदिनाथ विवाहलो एवं नेमीश्वर हमची इनकी उत्कृष्ट रचनायें हैं। भरत बाहुबलि एक खण्ड काव्य है, जिसमें मुख्यत: भरत और बाहुवलि के युद्ध का वर्णन किया गया है। भरत चक्रवर्त्ति को सारा भूमण्डल विजय करने के पश्चात् मालूम होता है कि अभी उन के छोटे भाई बाहुबलि ने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की है तो सम्राट भरत बाहुबलि को समझाने को दूत भेजते हैं। दूत और बहुवलि का उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत सुन्दर हुआ है।

अन्त में दोनों भाइयों में युद्ध होता है, जिसमें विजय बाहुवलि की होती है। लेकिन विजयश्री मिलने पर भी बाहुबलि जगत से उदासीन हो जाते हैं और वैराग्य धारण कर लेते हैं। घोर तपश्चर्या करने पर भी "मैं भरत की भूमि पर खड़ा हुआ हूं," यह शल्य उनके मन से नहीं हटती और जब स्वयं सम्राट् भरत उनके चरणों में जाकर गिरते हैं और वास्तविक स्थिति को प्रगट करते हैं तो उन्हें तत्काल केवल ज्ञान प्राप्त होकर मुक्तिश्री मिल जाती है। पूरा का पूरा खण्ड काव्य मनोहर शब्दों में गुंथित है। रचना के प्रारम्भ में जो अपनी गुरु परम्परा दी है वह निम्न प्रकार है—

पणविवि पद आदीश्वर केरा, जेह नामें छूटे भव-फेरा।
ब्रह्म सुता समरू मतिदाता, गुण गण मंडित जग विख्याता ।।

वंदवि गुरू विद्यानंदि सूरी, जेहनी कीर्त्ति रही भर पूरी।
तस पट्ट कमल दिवाकर जाणु, मल्लिभूषण गुरु गुण वक्खाणु ।।

तस पट्टे पट्टोधर पंडित, लक्ष्मीचन्द महाजस मंडित।
अभयचंद गुरु शीतल वायक, सेहेर वंश मंडन सुखदायक ।।

अभयनंदि समरू मन मांहि, भव भूला बल गाडे बांहि।
तेह तणि पट्टे गुणभूषण, वंदवि रत्नकीरति गत दूषण ।।

भरत महिपति कृत मही रक्षण, बाहुवलि बलवंत विचक्षण।

बाहुबलि पोदनपुर के राजा थे। पोदनपुर धन धन्य, बाग बगीचा तथा झीलों का नगर था। भरत का दूत जब पोदनपुर पहुँचता है तो उसे चारों ओर विविध प्रकार के सरोवर, वृक्ष, लतायें दिखलाई देती हैं। नगर के पास ही गंगा के समान निर्मल जल वाली नदी बहती है। सात सात मंजिल वाले सुन्दर महल नगर की शोभा बढ़ा रहे हैं। कुमुदचन्द ने नगर की सुंदरता का जिस रूप में वर्णन किया है उसे पढिये—

चाल्यो दूत पयाणें रे हे तो, थोड़ो दिन पोयरापुरी पोहोतो ।
दीठी सीम सघन करण साजित, वापी कूप तडाग विराजित ।।

कलकारं जो नल जल कुंडी, निर्मल नीर नदी अति ऊंडी ।
विकसित कमल श्रमल दलपंती, कोमल कुमुद समुज्जल कंती ।।

वन वाडी आराम सुरंगा, श्रंब कदंब उदंबर तुंगा ।
करणा केतकी कमरख केली, नव नारंगी नागर वेली ।।

अगर तगर तरु तिंदुक ताला, सरल सोपारी तरल तमाला ।
वदरी वकुल मदाड बीजोरी, जाई जूई जंवु जंमीरी ।।

चंदन चंपक चाउरउली, वर वासंती वटवर सोली ।
रायराारा जंवु सुविशाला, दाडिम दमरागो द्राष रसाला ।।

फूला सुग्रुल्ल श्रमूल्ल गुलावा, नीपनी वाली तिंवुक निंबा ।
करण पर कोमल लंत सुरंगी, नालीपरी दीशे अति चंगी ।।

पाड़ल पनश पलाश महाधन, लवली लीन लवंग लताघन ।।

वाहुवलि के द्वारा अधीनता स्वीकार न किए जाने पर दोनो ओर की विशाल सेनायें एक दूसरे के सामने आ डटीं । लेकिन जब देवों और राजाओं ने दोनों भाइयों को ही चरम शरीरी जानकर यह निश्चय किया कि दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध न होकर दोनों भाइयों में ही जलयुद्ध मल्लयुद्ध एवं नेत्रयुद्ध हो जावे और उसमें जो जीत जावे उसे ही चक्रवर्ती मान लिया जावे । इस वर्णन को कवियों के शब्दों में पढिये :—

त्रण्य युद्ध त्यारे सहु वेढा, नीर नेत्र मल्लाह वपरंढ्या ।
जो जीते ते राजा कहिये, तेहनी आज विनयसुं वहिए ।
एह विचार करीनें नरवर, चल्या सहु साथे महर भर ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चाल्या मल्ल श्रखाडे वलीआ, सुर नर किन्नर जीवा मलीआ ।
काछ्या काछ कसी कड तांणी' बोले बांगड बोली वाणी ।

भुजा दंड मन सुंड समाना, ताड़ंता वंखारे नाना ।

हो हो कार करि ते धाया, वछो वच्छ पड्या ले राया ।
हक्कारे पच्चारे पाडे, वलगा वलग करी ते श्राडे ।
पग पडघा पोहोवी तल वाजे, कडकडता तरुवर से भाजे ।
नाठा वनचर श्राठा कायर, छूटा मयगल फूटा सायर ।।

गड गडता गिरिवर ते पडीआं, फूत फरंता फणिपति डरीआ ।
गढ गडगडीआ मन्दिर पडीआं, दिग दंतीव मक्या चल चकीआ ।
जन खलभली आवाल कछलीआ, भव-भीरू अवला कल मलीआ ।
तोपण ले धरणी धवदू के, लड पडता पडता नवि चूके ।

उक्त रचना आमेर शास्त्र भण्डार गुटका संख्या ५२ में पत्र संख्या ४० से ४८ पर है ।

२. आदिनाथ विवाहलो

इसका दूसरा नाम ऋषभ विवाहलो भी है । यह भी छोटा खण्ड काव्य है, जिसमें ११ ढालें हैं । प्रारम्भ में ऋषभदेव की माता को १६ स्वप्नों का आना, ऋषभदेव का जन्म होना तथा नगर में विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया गया । फिर ऋषभ के विवाह का वर्णन है । अन्त की ढाल में उनका वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त करना भी बतला दिया गया है ।

कुमुदचन्द्र ने इसे भी संवत् १६७८ में घोवा नगर में रचा था । रचना का एक वर्णन देखिये—

कछ महाकछ रायरे, जे हनु जग जश गायरे ।
तस कुंअरी रूपें सोहरे, जोतां जनमन मोहेरे ।
सुन्दर वेणी विशाल रे, अरघ शशी सम भाल रे ।
नयन कमल दल छाजे रे, मुख पूरणचन्द्र राजे रे ।
नाक सोहे तिलनु फूल रे, अधर सुरंग तणु नहि भूल रे ।

ऋषभदेव के विवाह में कौन-कौन सी मिठाइयां बनी थीं, उसका भी रसास्वादन कीजिए—

रुटि लागे घेवरने दीठा, कोल्हापाक पतासां मीठां ।
दूध पाक चणा सांकरीआ, सारा सकरपारा कर करीआ ।
मोटा मोती आमोद कलावे, दलीआ कसम सीआ भावे ।
अति सुरवर सेवईयां सुन्दर, आरोगे भोग पुरंदर ।
प्रीसे पापड गोटा तलीआ, पूरी आला अति ऊजलीआ ।

नेमिनाथ के विरह में राजुल किस प्रकार तड़फती थी तथा उसके बारह महीने किस प्रकार व्यतीत हुए, इसका नेमिनाथ बारहमासा में सजीव वर्णन किया

है। इसी तरह का वर्णन कवि ने प्रणय गीत एवं हिंडोलना-गीत में भी किया है।

फागुण केसु फूलीयो, नर नारी रमे वर फाग जी।
हास विनोद करे घणा, किम नाहे धरयो वैराग जी ॥

नेमिनाथ बारहमासा

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सीयालो सगलो गयो, पणि नावियो यदुराय।
तेह विना मुझने भूरतां, एह दीहडा रे वरसा सो थापके।

प्रणय–गीत

वणजारा गीत में कवि ने संसार का सुन्दर चित्र उतारा है। यह मनुष्य वणजारे के रूप में यों ही संसार से भटकता रहता है। वह दिन रात पाप कमाता है और संसार बंधन से कभी भी नहीं छूटता।

पाप करयां ते अनंत, जीवदया पाली नहीं।
सांचो न बोलियो बोल, भरम मो साबहु बोलिया ॥

शील गीत में कवि ने चरित्र प्रधान जीवन पर अत्यधिक जोर दिया है। मानव को किसी भी दिशा में आगे बढ़ने के लिए चरित्र-बल की आवश्यकता है। साधु संतों एवं संयमी जनों को स्त्रियों से अलग ही रहना चाहिए–आदि का अच्छा वर्णन मिलता है इसी प्रकार कवि की सभी रचनायें सुन्दर हैं।

पदों के रूप में कुमुदचन्द्र ने जो साहित्य रचा है वह और भी उच्च कोटि का है। भाषा, शैली एवं भाव सभी दृष्टियों से ये पद सुन्दर हैं। **"मैं तो नर भव वादि गवायो"** पद में कवि ने उन प्राणियों की सच्ची आत्मपुकार प्रस्तुत की है, जो जीवन में कोई भी शुभ कार्य नहीं करते है। अन्त में हाथ मलते ही चले जाते हैं।

'जो तुम दीनदयाल कहावत' पद भी भक्ति रस की सुस्न्दर रचना है। भक्ति एवं अध्यात्म-पदों के अतिरिक्त नेमि राजुल सम्बन्धी भी पद हैं, जिनमें नेमिनाथ के प्रति राजुल की सच्ची पुकार मिलती है। नेमिनाथ के बिना राजुल को न प्यास लगती है और न भूख सताती है। नींद नहीं आती है और बार-बार उठकर गृह का आंगन देखती रहती है। यहां पाठकों के पठनार्थ दो पद दिए जा रहे हैं—

राग-धनश्री

मैं तो नर भव वादि गमायो।
न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर, काम भलो न कमायो ॥
मैं तो....॥१॥

विकट लोभ तें कपट कूट करी, निपट विषय लपटाम्रो ।
विटल कुटिल शठ संगति बैठो, साधु निकट विघटायो ।।

मैं तो....।।२।।

कृपण भयो कछु दान न दीनों, दिन दिन दाम मिलायो ।
जब जोवन जंजाल पड्यो तब, पर त्रिया तनु चितलायो ।।

मैं तो....।।३।।

अन्त समय कोउ संग न आवत, झूठहि पाप लगायो ।
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही, प्रभु पद जस नहीं गायो ।।

मैं तो....।।४।।

पद राग–सारंग

सखी री अब तो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीति न विसरत, क्षण क्षण छीजत गात ।।

सखी... ।।१।।

नहि न भूख नहि तिसु लागत, घरहि घरहि मुरझात ।
मनतो उरझी रह्यो मोहन सुं, सेवन ही सुरझात ।।

सखी .. ।।२।।

नाहिने नींद परती निसिवासर, होत विसुरत प्रात ।
चन्दन चन्द्र सजल नलिनीदल, मन्द मारुत न सुहात ।।

सखी .. ।।३।।

गृह आंगन देख्यो नहीं भावत, दीनभई विललात ।
विरही वाउरी फिरत गिरि–गिरि, लोकन तें न लजात ।।

सखी० ।।४।।

पीउ विन पलक कल नहीं जीउकूं न रुचित रासिक गुबात ।
'कुमुदचन्द' प्रभु सरस दरस कूं, नयन चपल ललचात ।।

सखी० ।।५।।

व्यक्तित्व—

संत कुमुदचन्द्र संवत् १६५६ तक भट्टारक पद पर रहे। इतने लम्वे समय में इन्होंने देश में अनेक स्थानों पर विहार किया और जन-साधारण को धर्म एवं अध्यात्म का पाठ पढाया। ये अपने समय के असाधारण सन्त थे। उनकी गुजरात

तथा राजस्थान में अच्छी प्रतिष्ठा थी। जैन साहित्य एवं सिद्धान्त का उन्हें अप्रतिम ज्ञान था। वे संभवतः आशु कवि भी थे, इसलिए श्रावकों एवं जन साधारण को पद्य रूप में ही कभी २ उपदेश दिया करते थे। इनके शिष्यों ने जो कुछ इनके जीवन एवं गतिविधियों के बारे में लिखा है, वह इनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व की एक झलक प्रस्तुत करता है।

शिष्य परिवार

वैसे तो भट्टारकों के बहुत से शिष्य हुआ करते थे जिनमें आचार्य, मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिका आदि होते थे। अभी जो रचनाएं उपलब्ध हुई हैं, उनमें अभय चंद्र, ब्रह्मसागर, धर्मसागर, संयमसागर, जयसागर एवं गणेशसागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी शिष्य हिन्दी एवं संस्कृत के भारी विद्वान थे और इनकी बहुत सी रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। अभयचन्द्र इनके पश्चात् भट्टारक बने। इनके एवं इनके शिष्य परिवार के विषय में आगे प्रकाश डाला जावेगा।

कुमुदचन्द्र की अब तक २८ रचनाऐं एवं पद उपलब्ध हो चुके हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं:—

मूल्यांकन :

'भ० रत्नकीर्ति' ने जो साहित्य-निर्माण की पावन-परम्परा छोड़ी थी, उसे उनके उत्तराधिकारी 'भ० कुमुदचन्द्र' ने अच्छी तरह से निभाया। यही नहीं 'कुमुद चन्द्र' ने अपने गुरु से भी अधिक कृतियां लिखीं और भारतीय समाज को अध्यात्म एवं भक्ति के साथ साथ शृंगार एवं वीर रस का भी आस्वादन कराया। 'कुमुदचन्द्र' के समय देश पर मुगल शासन था, इसलिए जहां-तहां युद्ध होते रहते थे। जनता में देश रक्षा के प्रति जागरूकता थी, इसलिए कवि ने भरत–बाहुबलि छन्द में जो युद्ध–वर्णन किया है– वह तत्कालीन जनता की मांग के अनुसार था। इससे उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि जैन–कवि यद्यपि साधारणतः आध्यात्म एवं भक्ति परक कृतियां लिखने में ही अधिक रुचि रखते हैं– लेकिन आवश्यकता हो तो वे वीर रस प्रधान रचना भी देश एवं समाज के समक्ष उपस्थित कर सकते हैं।

'कुमुदचन्द्र' के द्वारा निबद्ध 'पद–साहित्य' भी हिन्दी–साहित्य की उत्तम निधि है। उन्होंने "जो तुम दीनदयाल कहावत" पद में अपने हृदय को भगवान के समक्ष निकाल कर रख लिया है और वह अपने भक्तों के प्रति की जाने वाली उपेक्षा की ओर भी प्रभु का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है और फिर "अनाथनि कुं कछु दीजे" के रूप में प्रभु और भक्त के सम्बन्धों का बखान करता है। 'मैं तो नर भव

वादि गमायो"—पद में कवि ने उन मनुष्यों को चेतावनी दी है, जो जीवन का कोई सदुपयोग नहीं करते और यों ही जगत में आकर चल देते हैं। यह पद अत्यधिक सुन्दर एवं भावपूर्ण है। इसी तरह 'कुमुदचन्द्र' ने 'नेमिनाथ–राजुल' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। "सखी री अब तो रह्यो नहि जात"—में राजुल की मनोदशा का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। इसी तरह "आली री अ विरखा ऋतु आजु आई"—में राजुल के रूप में- विरहिणीनारी के मन में उठने वाले भावों को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'कुमुदचन्द्र' ने अपने पद-साहित्य में अध्यात्म, भक्ति एवं वैराग्य परक पद रचना के अतिरिक्त 'राजुल-नेमि' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी हिन्दी-पद-साहित्य एवं विशेषतः जैन-साहित्य में एक नई परम्परा को जन्म देने वाला रहा था। आगे होने वाले कवियों ने इन दोनों कवियों की इस शैली का पर्याप्त अनुसरण किया था।

कवि की अब तक उपलब्ध कृतियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

१.	त्रेपन क्रिया विनती	१४ पद्य
२.	आदिनाथ विवाहलो	१४ ,,
३.	नेमिनाथ द्वादशमासा	१४ ,,
४.	नेमीश्वर हमची	८७ ,,
५.	त्रण्य रति गीत	१७ ,,
६.	हिंदोला गीत	३१ ,,
७.	वणजारा गीत	२१ ,,
८.	दश लक्षण धर्मव्रत गीत	११ ,,
९.	शील गीत	१० ,,
१०.	सप्त व्यसन गीत	१३ ,,
११.	अठाई गीत	१४ ,,
१२.	भरतेश्वर गीत	७ ,,
१३.	पार्श्वनाथ गीत	१९ ,,
१४.	अन्धोलड़ी गीत	१३ ,,
१५.	आरती गीत	७ ,,
१६.	जन्म कल्याणक गीत	८ ,,
१७.	चिंतामणि पार्श्वनाथ गीत	१३ ,,

१८. दीपावली गीत ६ ,,

१९. नेमि जिन गीत ११ ,,

२०. चौवीस तीर्थंकर देह प्रमाण चौपई १७ ,,

२१. गौतम स्वामी चौपई ८ ,,

२२. पार्श्वनाथ की विनती १७ ,,

२३. लोडण पार्श्वनाथ जी ३० ,,

२४. आदीश्वर विनती १० ,,

२५. मुनिसुव्रत गीत ७ ,,

२६. गीत १० ,,

२७. जीवडा गीत ९ ,,

२८. भरत वाहुवलि छन्द

२९. परदारो परशील सज्भाप

३०. भरत वाहुवलि छन्द

इनके अतिरिक्त उनके रचे हुए कितने ही पद मिले हैं। इन पदों में से ३३९ वीं प्रथम पंक्ति निम्न प्रकार है—

पद

१. म करीस पर नारी को संग।

२. संघ जी नाग जी गीत।

३. जागो रे भवियण उंघ नवि करीजे।

४. जागि हो भवियण सफल विहांणु।

५. जागि हो भवियण उंघीये नहीं घणूं।

६. उदित दिन राज रुचि राज सुवि भांत।

७. आवो रे साहेली जइत यादव मणी।

८. जय जय आदि जिनेश्वर राय।

९. थेई थेई थेई नृत्यति भमरी।

१०. विनज वदन रुचि र रदन काम।

११. श्याम वरण सुगति करण सर्व सौख्यकारी।

१२. आस्यु रे इम कोंव माहरा नेमजी।

१३. वंदेहं शीतलं चरणं ।

१४. अवसर आजू हेरे हवे दान पुण्य कांइ कीजे ।

१५. लाला को मुझ चारित्र चूनड़ी ।

१६. ए संसार भमंतडां रे व लहको धर्म विचार ।

१७. वालि वालि तुं वालिय सजनी ।

१८. लाल लाल लाल तु मां जास रे ।

१९. सगति कीजे रे साधु तणी वली ।

२०. आज सवनि में हूं वड़ भागी ।

२१. आजु मैं देखे पास जिनंदा ।

२२. आली री अ विरखा ऋतु आजु आई ।

२३. आवो रे सहिय सहिलड़ी संगे ।

२४. चेतन चेतन किउं बांवरे ।

२५. जनम सफल भयो, भयो सुका जरे ।

२६. जागि हो, भोर भयो कहर सोवत ।

२७. जो तुम दीन दयाल कहावत ।

२८. नाथ अनाकनि कूं कछु दीजे ।

२९. प्रभु मेरे तुमकुं ऐसी न चाहिये ।

३०. मैं तो नर-भव वादि गमायो ।

३१. सखी री अब तो रह्यो नहिं जात ।

मुनि अभयचन्द्र

'अभयचन्द्र' नाम के दो भट्टारक हुए हैं। 'प्रथम अभयचन्द्र' भ० लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे, जिन्होंने एक स्वतंत्र 'भट्टारक–संस्था' को जन्म दिया। उनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दि का द्वितीय चरण था। दूसरे 'अभयचन्द्र' इन्हीं की परम्परा में होने वाले 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे। यहां इन्हीं दूसरे 'अभयचन्द्र' का परिचय दिया जा रहा है।

'अभयचन्द्र' भट्टारक थे और 'कुमुदचन्द्र' की मृत्यु के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे। यद्यपि 'अभयचन्द्र' का गुजरात से काफी निकट का सम्बन्ध था, लेकिन राजस्थान में भी इनका बराबर विहार होता था और ये गांव–गांव, एवं नगर-नगर में भ्रमण करके जनता से सीधा सम्पर्क बनाये रखते थे। 'अभयचन्द्र' अपने गुरु के योग्यतम शिष्य थे। उन्होंने भ० रत्नकीर्त्ति एवं भ० कुमुदचन्द्र का शासनकाल देखा था और देखी थी उनकी 'साहित्य-साधना'। इसलिए जब ये स्वयं प्रमुख सन्त बने तो इन्होंने भी उसी परम्परा को बनाये रखा। संवत् १६८५ की फाल्गुन सुदी ११ सोमवार के दिन बारडोली नगर में इनका पट्टाभिषेक हुआ और इस पद पर संवत् १७२१ तक रहे।

'अभयचन्द्र' का जन्म सं० १६४० के लगभग 'हूंबड' वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम 'श्रीपाल' एवं माता का नाम 'कोड़मदे' था। बचपन से ही बालक 'अभयचन्द्र' को साधुओं की मंडली में रहने का सुअवसर मिल गया था। हेमजी-कुंअरजी इनके भाई थे–ये सम्पन्न घराने के थे। युवावस्था के पहिले ही इन्होंने पांचों महाव्रतों का पालन प्रारम्भ किया था।[1] इसीके साथ इन्होंने संस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थों का उच्चाध्ययन किया। न्याय-शास्त्र में पारगतता प्राप्त की तथा अलंकार–शास्त्र एवं नाटकों का गहरा अध्ययन किया।[2] अच्छे वक्ता तो ये प्रारम्भ से ही थे, किन्तु विद्वता के होने से सोने-सुगंध का सा सुन्दर समन्वय होगया।

जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया, तो त्याग एवं तपस्या के प्रभाव से

---

१. हूंबड वंशे श्रीपाल साह तात, जनम्यो रूड़ी रतन कोड़मदे मात।
लघु पणें लीधो महाव्रत भार, मनवश करी जीत्यो दुर्द्धरभार॥

२. तर्क नाटक आगम अलंकार, अनेक शास्त्र भण्यां मनोहार।
भट्टारक पद ए हने छाजे, जेहवे यश जग मां वास गाजे॥

इनकी मुखाकृति स्वयमेव आकर्षक बन गई और जनता के लिए ये आध्यात्मिक जादूगर बन गये। इनके सैकड़ों शिष्य थे—जो स्थान-स्थान पर ज्ञान-दान किया करते थे। इनके प्रमुख शिष्यों में गणेश, दामोदर, धर्मसागर, देवजी व रामदेव के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। जितनी अधिक प्रशंसा शिष्यों द्वारा इनकी (भ० अभयचन्द्र) की गई, संभवतः अन्य भट्टारकों की उतनी अधिक प्रशंसा देखने में अभी नहीं आयी। एक बार 'भ० अभयचन्द्र' का 'सूरत नगर' में पदार्पण हुआ—वह संवत् १७०६ का समय था। सूरत-नगर-निवासियों ने उस समय इनका भारी स्वागत किया। घर-घर उत्सव किये गये, कुंकुम छिड़का गया और अंग—पूजा का आयोजन किया गया। इन्हीं के एक शिष्य 'देवजी'—जो उस समय स्वयं वहां उपस्थित थे, ने निम्न प्रकार इनके सूरत नगर-आगमन का वर्णन किया है:—

राग धन्यासी :

आज आणंद मन अति घणो ए, काई वरत यो जय जयकार।
अभयचन्द्र मुनि आवया ए, काई सुरत नगर मझार रे॥ आज आणंद ॥१॥

घरे घरे उछव अति घणाए, काई माननी मंगल गाय रे।
अंग पूजा ने उवराणा ए, काई कुंकुम छडादेवडाय रे॥२॥ आज०॥

श्लोक वखाणें गोर सोभता रे, वाणी मीठी अपार साल रे।
धर्मकथा ये प्राणी ने प्रतिवोधे ए, कांई कुमति करे परिहार रे॥३॥

संवत् सतर छलोतरे, कांई हीरजी प्रेमजीनी पूगी आस रे।
रामजी ने श्रीपाल हरखीया ए, कांई वेलजी कुंअरजी मोहनदास रे॥४॥

गौतम समगोर सोभतो ए, काई वूधे जयो अभयकुमार रे।
सकल कला गुण मंडणो ए, काई 'देवजी' कहे उदयो उदार रे॥ आज०॥५॥

'श्रीपाल' १८ वीं शताब्दी के प्रमुख साहित्य—सेवी थे। इनकी कितनी ही हिन्दी रचनाएं अभी लेखक को कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई थी। स्वयं कवि श्रीपाल 'भ० अभयचन्द्र' से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिए स्वयं भट्टारकजी महाराज की प्रशंसा में लिखा गया कवि का एक पद देखिये। इस पद के अध्ययन से हमें 'अभयचन्द्र' के आकर्षक व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। पद निम्न प्रकार है:—

राग धन्यासी :

चन्द्रवदनी मृग लोचनी नारि।
अभयचन्द्र गछ नायक वांदो, सकल संघ जयकारि॥१॥ चन्द्र०॥

मदन माहामद मोडे ए मुनिवर, गोयम सम गुणधारी ।
क्षमावंतवि गंभिर विचक्षण, गरुयो गुण भण्डारी ।।चन्द्र०।।२।।

निखिलकला विवि विमल विद्या निधि विकटवादी हठहारी ।
रम्य रूप रंजित नर नायक, सज्जन जन सुखकारी ।।चन्द्र०।।३।।

सरसति गछ शृंगार शिरोमणी, मूल संघ मनोहारी ।।
कुमुदचन्द्र पदकमल दिवाकर, 'श्रीपाल' तुम बलीहारी ।।चन्द्र० ।।४।।

'गणेश' भी अच्छे कवि थे। इनके कितने ही पद, स्तवन एवं लघु कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं। 'भ० अभयचन्द्र' के आगमन पर कवि ने जो स्वागत गान लिखा था और जो उस समय संभवतः गाया भी गया था, उसे पाठकों के अवलोकनार्थ यहां दिया जा रहा है —

आजु भले आये जन दिन धन रयणी ।
शिवया नंदा वंदी रत तुम, कनक कुसुम वधावो मृगनयनी ।।१।।

उज्जल गिरि पाय पूजी परमगुरु सकल संघ सहित संग सयनी ।
मृदंग बजावते गावते गुनगनी, अभयचन्द्र पटधर आयो गजगयनी ।।२।।

अब तुम आये भली करी, घरी घरी जय शब्द भविक सब कहेनी ।
ज्यों चकोरी चन्द्र कुं इयत, कहत गणेश विशेषकर वयनी ।।३।।

इसी तरह कवि के एक और शिष्य 'दामोदर' ने भी अपने गुरु की भूरि २ प्रशंसा की है। गीत में कवि के माता–पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा लिखा है कि 'भ० अभयचन्द्र' ने कितने ही शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की थी। पूरा गीत निम्न प्रकार है —

वांदो वांदो सखी री श्री अभयचन्द्र गोर वांदो ।
मूल संग मंडण दुरित निकंदन, कुमुदचन्द्र पगी वंदो ।।१।।

शास्त्र सिद्धान्त पूरण ए जाण, प्रतिबोधे भवियण अनेक ।
सकल कला करी विश्वने रंजे, भंजे वादि अनेक ।।२।।

हूंबड़ वंश विख्यात वसुधा श्रीपाल साधन तात ।
जायो जननींइ पतिय शवन्तो, कोड़मदे धन मात ।।३।।

रतनचन्द पाटि कुमुदचन्दयति, प्रेमे पूजो पाय ।
तास पाटि श्री अभयचन्द्र गोर 'दामोदर' नित्य गुणगाय ।।४।।

उक्त प्रशंसात्मक गीतों से यह तो निश्चित सा जान पड़ता है कि अभयचन्द्र की जैन-समाज में काफी अधिक लोकप्रियता थी। उनके शिष्य साथ रहते थे और जनता को भी उनका स्तवन करने की प्रेरणा किया करते थे।

'अभयचन्द्र' प्रचारक के साथ-साथ साहित्य-निर्माता भी थे। यद्यपि अभी तक उनकी अधिक रचनाएं उपलब्ध नही हो सकी हैं, लेकिन फिर भी उन प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी कोई बड़ी रचना भी मिलनी चाहिए। कवि ने लघु गीत अधिक लिखे हैं। इसका प्रमुख कारण तत्कालीन साहित्यिक वातावरण ही था। अब तक इनकी निम्न कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१.	वासुपूज्यनी धमाल	१० पद्य
२.	चंदागीत	२६ ,,
३.	सूखड़ी	३७ ,,
४.	चतुर्विंशति तीर्थंकर लक्षण गीत	११ ,,
५.	पद्मावती गीत	११ पद्य
६.	गीत	
७.	गीत	
८.	नेमीश्वरनु ज्ञान कल्याणक गीत	
९.	आदीश्वरनाथनु पञ्चकल्याणक गीत	
१०,	बलभद्र गीत	

उक्त कृतियों के अतिरिक्त कवि के कुछ पद भी मिल चुके हैं। इन पदों की संख्या आठ है।

ये सभी रचनाएं लघु कृतियां हैं। यद्यपि काव्यत्व, शैली एवं भाषा की दृष्टि से ये उच्चस्तरीय रचनाएं नहीं है, लेकिन तत्कालीन समय जनता की मांग पर ये रचनाएं लिखी गई थीं। इसलिए इनमें कवि का काव्य-वैभव एवं सौष्ठव प्रयुक्त होने की अपेक्षा प्रचार का लक्ष्य अधिक था। भाषा की दृष्टि से भी इनका अध्ययन आवश्यक है। राजस्थानी भाषा की ये रचनाएं हैं तथा उसका प्रयोग कवि ने अत्यधिक सावधानी से किया है। गुजराती भाषा का प्रयोग तो स्वभावतः ही हो गया है। कवि की कुछ प्रमुख कृतियों का परिचय निम्न प्रकार है—

१. चंदागीत

इस गीत में कालिदास के मेघदूत के विरही यक्ष की भांति स्वयं राजुल अपना सन्देश चन्द्रमा के माध्यम से नेमिनाथ के पास भेजती है। सर्व प्रथम चन्द्रमा से अपने उद्देश्य के बारे निम्न शब्दों में वर्णन करती है—

विनयकरी राजुल कहे, चंदा वीनतड़ी अव धारो रे।
उज्ज्वल गिरि जई वीनवो, चंदा जिहां दे प्राण आधार रे॥

गगने गमन ताहरु रुवडूं, चंदा अमीय वरषे अनन्त रे।
पर उपगारी तू भनो, चंदा वलि वलि वीनवूं संत रे॥

राजुल ने इसके पश्चात् भी चन्द्रमा के सामने अपनी यौवनावस्था की दुहाई दी तथा विरहाग्नि का उसके सामने वर्णन किया।

विरह तणां दुख दोहिला, चंदा ते किम में सहे वाय रे।
जल विना जेम माछली, चंदा ते दुःख में बाप रे॥

राजुल अपने सन्देश-वाहक से कहती है कि यदि कदाचित नेमिकुमार वापिस चले आवें तो वह उनके आगमन पर वह पूर्ण शृंगार करेगी। इस वर्णन में कवि ने विभिन्न अंगों में पहिने जाने वाले आभूषणों का अच्छा वर्णन किया है।

२. सूखड़ी :

यह ३७ पद्यों की लघु रचना है, जिसमें विविध व्यञ्जनों का उल्लेख किया गया है। कवि को पाकशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। 'सूखड़ी' से तत्कालीन प्रचलित मिठाइयों एवं नमकीन खाद्य सामग्री का अच्छी तरह परिचय मिलता है। शान्तिनाथ के जन्मावसर पर कितने प्रकार की मिठाइयां आदि बनायी गयीं थी—इसी प्रसंग को बतलाने के लिए इन व्यञ्जनों का नामोल्लेख किया गया है। एक वर्णन देखिए—

जलेबी खाजला पूरी, पतासां फीणा संजूरी।
दहीपरां फीणी मांहि, साकर भरी॥३॥

× × × ×

सकरपारा सुंहाली, तल पापड़ी सांकली।
थापडास्यु थीणुं घीय, आलू जीवली॥५॥

मरकीने चांदखानि, द्रोठांने दही वड़ा सोनी।
वावर घेवर श्रीसो, अनेक वांनी॥६॥

इस प्रकार 'कविवर अभयचन्द्र' ने अपनी लघु रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य की जो महती सेवा की थी, वह सदा स्मरणीय रहेगी।

ब्रह्म जयसागर

जयसागर भ० रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यों में से थे। ये ब्रह्मचारी थे और जीवन भर इसी पद पर रहते हुए अपना आत्म विकास करते रहे थे। भ० रत्नकीर्ति जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है साहित्य के अनन्य उपासक थे इसलिए जयसागर भी अपने गुरु के समान ही साहित्याराधना में लग गये। उस समय हिन्दी का विकास हो रहा था। विद्वानों एवं जनसाधारण की रुचि हिन्दी ग्रन्थों को पढने में अधिक हो रही थी इसलिए जयसागर ने अपना क्षेत्र हिन्दी रचनाओं तक हो सीमित रखा।

जयसागर के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। इन्होंने अपनी सभी रचनाओं में भ० रत्नकीति का उल्लेख किया है। रत्नकीर्ति के पश्चात होने वाले भ० कुमुदचन्द्र का कहीं भी नामोल्लेख नहीं किया है इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनका भ० रत्नकीर्ति के शासनकाल में ही स्वर्गवास हो गया था। रत्नकीर्ति संवत् १६५६ तक भट्टारक रहे इसलिए ब्रह्म जयसागर का समय संवत् १५८० से १६५५ तक का माना जा सकता है। घोघा नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था।

कवि की अब तक जितनी रचनाओं की खोज हो सकी है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. नेमिनाथ गीत
२. नेमिनाथ गीत
३. जसोधर गीत
४. पंचकल्याणक गीत
५. चुनड़ी गीत
६. संघपति मल्लिदास नी गीत
७. संकट हर पार्श्वजिन गीत
८. क्षेत्रपाल गीत
९. भट्टारक रत्नकीर्ति पूजा गीत
१०. शीतलनाथ नी विनती
११-२० विभिन्न पद एवं गीत

जयसागर लघु कृतियां लिखने में विशेष रुचि रखते थे। इनके गुरु स्वयं रत्नकीर्ति भी लघु रचनाओं को ही अधिक पसन्द करते थे इसलिए इन्होंने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। इनकी कुछ प्रमुख रचनाओं का परिचय निम्न प्रकार है।

१. पंचकल्याणक गीत

यह कवि की सबसे बड़ी कृति है जो पांच कल्याणकों की दृष्टि से पांच ढालों में विभक्त है। इसमें शान्तिनाथ के पांचों कल्याणकों का वर्णन है। जन्म कल्याणक ढाल में सबसे अधिक पद्य हैं। जिनकी संख्या २० है। पूरे गीत में ७१ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है। तथा वर्णन सामान्य है। एक उदाहरण देखिए।

श्री शान्तिनाथ केवली रे, व्यावहार करे जिनराय।
समोवसरण सहित भल्या रे, वंदित अमर सु पाय ॥

द्रुपद : नरनारी सुख कर सेवियै रे, सोलमो श्री शान्तिनाथ।
अविचल पद जे पामयो रे, मुझ मन राखो तुझ साथ ॥१॥

सम्मेद सिखर जिन आवयोरे, समोसरण करी दूर।
ध्यानवनो क्रम क्षय करीरे, स्थानक गया सु प्रसीघ ॥२॥

श्री घोघा रूप पूरयलुं रे, चन्द्रप्रभ चैत्याल।
श्री मूलसंघ मनोहर करे, लक्ष्मीचन्द्र गुणमाल ॥३॥

श्री अभेचन्द पदेशोहे रे, अभयसुनन्दि सुनन्द।
तस पाटे प्रगट हवोरे, सुरी रत्नकीरति मुनी चन्द ॥४॥

तेह तणा चरण कमलनयनिरे, पंचकल्याणक किध।
ब्रह्म जयसागर इम कहे, नर नारी गाउ सु प्रसिद्ध ॥५॥

२. जसोधर गीत

इसमें यशोधर चरित की कथा का संक्षिप्त सार दिया गया है जिसमें केवल १८ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है।

जीव हिंसा हूं नवि करूं, प्राण जाय तो जाय।
हद देखी चन्द्र मती कहे, पीवनी करीये काय ॥६॥

मौन करी राजा रह्यो, पाठकु कडो कीघ।
माता सहित जसोवरे, देवीने वल दीव ॥७॥

३. गुर्वावलि गीत

यह एक ऐतिहासिक गीत है जिसमें सरस्वती गच्छ की बलात्कारगण शाखा के भ० देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा में होने वाले भट्टारकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। गीत सरल एवं सरस भाषा में निबद्ध है।

तस पद कमल दिवाकर, मल्लिभूषण गुण सागर।
आगार विद्या विनय तणो भलो ए।

पद्मावती साधी एणें, ग्यासदीन रंज्यो तेणें।
जग जेणें जिन शासुन सोहावीयो ए ॥८॥

४. चुनड़ी गीत

यह एक रूपक गीत है जिसमें नेमिनाथ के वन चले जाने पर उन्होंने अपने चारित्र रूपी चुनड़ी को किस रूप में धारण किया इसका संक्षिप्त वर्णन है। वह चारित्र की चुनड़ी नव रंग की थी। मूल गुणों का उसमें रंग था, जिनवाणी का उसमें रस घोला गया था। तप रूपी तेज से जो सूख रही थी। जो उसमें से पानी टपक रहा था वह मानो उत्तर गुणों के कारण चौरासी लाख योनियों से छुट-कारा मिल रहा था। पांच महाव्रत, पांच समिति एवं तीन गुप्ति को जीवन में उतारने के कारण उस चुनड़ी का रंग ही एक दम बदल गया था। बारह प्रतिमा के धारण करने से वह फूल के समान लगने लगी थी। इसी चुनड़ी को ओढकर राजुल स्वर्ग गई। इस गीत को अविकल रूप से आगे दिया जा रहा है।

५. रत्नकीर्ति गीत

ब्रह्म जयसागर रत्नकीर्ति के कट्टर समर्थक थे। उनके प्रिय शिष्य तो थे ही लेकिन एक रूप में उनके प्रचारक भी थे। इन्होंने रत्नकीर्ति के जीवन के सम्बन्ध में कई गीत लिखे और उनका जनता में प्रचार किया। रत्नकीर्ति जहां भी कहीं जाते उनके अनुयायी जयसागर द्वारा लिखे हुए गीतों को गाते। इसके अतिरिक्त इन गीतों में कवि ने रत्नकीर्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं को छन्दोबद्ध कर दिया है। यह सभी गीत सरल भाषा में लिखे हुए हैं जो गुजराती से बहुत दूर एवं राज-स्थानी के अधिक निकट हैं।

मलय देश भव चंदन, देवदास केरो नंदन।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

अक्षत शोभन साल ए, सहेजलदे सुत गुणमाल रे विशाल।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

इस प्रकार जयसागर ने जीवन पर्यन्त साहित्य के विकास में जो अपना अपूर्व योग दिया वह इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा।

आचार्य चन्द्रकीर्ति

'भ० रत्नकीर्ति' ने साहित्य-निर्माण का जो वातावरण बनाया था तथा अपने शिष्य-प्रशिष्यों को इस ओर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था, इसी के फल-स्वरूप ब्रह्म-जयसागर, कुमुदचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, संयमसागर, गणेश और धर्म-सागर जैसे प्रसिद्ध सन्त, साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। 'आ. चन्द्रकीर्ति' 'भ० रत्नकीर्ति' के प्रिय शिष्यों में से थे। ये मेधावी एवं योग्यतम शिष्य थे तथा अपने गुरु के प्रत्येक कार्यों में सहयोग देते थे।

'चन्द्रकीर्ति' के गुजरात एवं राजस्थान प्रदेश प्रमुख क्षेत्र थे। कभी-कभी ये अपने गुरु के साथ और कभी स्वतन्त्र रूप से इन प्रदेशों में विहार करते थे। वैसे वारडोली, भड़ौच, डूंगरपुर, सागवाड़ा आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के स्थान थे। अब तक इनकी निम्न कृतियां उपलब्ध हुई हैं :—

१. सोलहकारण रास
२. जयकुमाराख्यान,
३. चारित्र-चुनड़ी,
४. चौरासी लाख जीवजोनि वीनती।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनके कुछ हिन्दी पद भी उपलब्ध हुए हैं।

१. सोलहकारण रास

यह कवि की लघु कृति है। इसमें षोड़शकारण व्रत का महात्म्य बतलाया गया है। ४६ पद्यों वाले इस रास में राग-गौडी देशी, दूहा, राग-देशाख, त्रोटक, चाल, राग-धन्यासी आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने रचनाकाल का उल्लेख तो नहीं किया है, किन्तु रचना-स्थान 'भड़ौच' का अवश्य निर्दिष्ट किया है। 'भड़ौच' नगर में जो शांतिनाथ का मन्दिर था— वही इस रचना का समाप्ति -स्थान था। रास के अन्त में कवि ने अपना एवं अपने पूर्व गुरुओं का स्मरण किया है। अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार हैं—

श्री भरुयच नगरे सोहामणुं श्री शांतिनाथ जिनराय रे।
प्रासादे रचना रचि, श्री चन्द्रकीरति गुण गायरे ॥४४॥

ए व्रत फल गिरता जो जो, श्री जीवन्धर जिनराय जी ।
भवियरण तिहां जइ भावज्ये, पातिग दुरे पालाय रे ।।४५।।

पूर्व छापो

चौतीस अतिस अतिसय भला, प्रतिहार्य वसू होय ।
चार चतुष्टय जिनवरा, ए छेतालीस पद जोय ।।४६।।

२. जयकुमार आख्यान

यह कवि का सबसे बड़ा काव्य है जो ४ सर्गों में विभक्त है। 'जयकुमार' प्रथम तीर्थंकर 'भ० ऋषभदेव' के पुत्र सम्राट भरत के सेनाध्यक्ष थे। इन्हीं जय कुमार का इसमें पूरा चरित्र वर्णित है। आख्यान वीर-रस प्रधान है। इसकी रचना बारडोली नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में संवत् १६५५ की चैत्र शुक्ला दसमी के दिन समाप्त हुई थी।

'जयकुमार' को सम्राट भरत सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करके शांति पूर्वक जीवन बिताने लगे। जयकुमार ने अपने युद्ध-कौशल से सारे साम्राज्य पर अखण्ड शासन स्थापित किया। वे सौन्दर्य के खजाने थे। एक बार वाराणसी के राजा 'अकम्पन' ने अपनी पुत्री 'सुलोचना' के विवाह के लिए स्वयम्वर का आयोजन किया। स्वयम्वर में जयकुमार भी सम्मिलित हुए। इसी स्वयम्बर में 'सम्राट भरत' के एक राजकुमार 'अर्ककीर्ति' भी गये थे, लेकिन जब 'सुलोचना' ने जयकुमार के गले में माला पहिना दी, तो वह अत्यन्त क्रोधित हुये। अर्ककीर्ति एवं जयकुमार में युद्ध हुआ और अन्त में जयकुमार का सुलोचना के साथ विवाह हो गया।

इस 'आख्यान' के प्रथम अधिकार में 'जयकुमार–सुलोचना–विवाह' का वर्णन है। दूसरे और तीसरे अधिकार में जयकुमार के पूर्व भवों का वर्णन और चतुर्थ एवं अन्तिम अधिकार में जयकुमार के निर्वाण-प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

'आख्यान' में वीर-रस, शृंगार-रस एवं शान्त रस का प्राधान्य है। इसकी भाषा राजस्थानी डिंगल है। यद्यपि रचना-स्थान बारडोली नगर है, लेकिन गुजराती शब्दों का बहुत ही कम प्रयोग किया गया है– इससे कवि का राजस्थानी प्रेम झलकता है।

'सुलोचना' स्वयम्वर में वरमाला हाथ में लेकर जब आती है, तो उस समय उसकी कितनी सुन्दरता थी, इसका कवि के शब्दों में ही अवलोकन कीजिए—

जाणिए सोल कला शीश, मुखचन्द्र सोमासी कहु ।
अधर विद्रुम राजतारा, दन्त मुक्ताफल लहु ।।

कमल पत्र विशाल नेत्रा, नाशिका सुक चंच ।
अष्टमी चन्द्रज भाल सोहे, वेणी नाग प्रपंच ।।

सुन्दरी देखी तेह राजा, चिन्तमें मन मांहि ।
ए सुन्दरी सूर सूंदरी, किन्नरी किम केह वाम ।।

सुलोचना एक एक राजकुमार के पास आती और फिर आगे चल देती । उस समय वहां उपस्थित राजकुमारों के हृदय में क्या-क्या कल्पनाएं उठ रहीं थी- इसको भी देखिये :—

एक हंसता एक खीजे, एक रंग करे नवा ।
एक जांणे मुझ वरसे, प्रेम धरता जुज वा ।।

एक कहे जो नहीं करें, तो अभ्यो तपवन जायसु ।
एक कहतो पुण्य यो भी, एय वलययासूं ।।

एक कहे जो आवयातो, विमासण सहु परहरो ।
पुण्य फल ने वातणोए, ठाम सूभ है थडे धरै ।।

लेकिन जब 'सुलोचना' ने 'अर्ककीर्ति' के गले में वरमाला नहीं डाली, तो जयकुमार एवं अर्ककीर्ति में युद्ध भड़क उठा । इसी प्रसंग में वर्णित युद्ध का दृश्य भी देखिए :—

मला कटक विकट कवहूं सुभट सूं,
धीर धीर हमीर हठ विकट सूं ।

करी कोप कूटे बूटे सरवहू,
चक्र तो ममर खड़ग मूंके सहु ।।

गयो गम गोला गणनांगणे,
अंगो अंग आवे वीर इम भणे ।

मोहो मांहि मूके मोटा महीपती,
चोट खोट न आवे ज्यमरती ।।

वयो थवा करी वेहदूंडसूं,
कोपे करतां कूटे अखंड सूं ।

धरी धीर धरणी ढोली नांखता,
कोपि कड़कड़ी लाजन राखता ।।

हस्ती हस्ती संघाते आथंडे,
रथो रथ सूभट सहू इम भडे ।

हय हयारव जब छजयो,
नीसांण नादें जग गज्जयो ।।

कवि ने अन्त में जो अपना वर्णन किया है, वह निम्न प्रकार है :—

श्री मूल संघ सरस्वती गछे रे, मुनीवर श्री पदमनन्द रे ।
देवेन्द्रकीरति विद्यानंदी जयो रे, मल्लीभूषण पुण्य कंद रे ।।

श्री लक्ष्मीचंद्र पाटे थापया रे, अभय सुचंद्र मुनीन्द्र रे ।
तस कुल कमलें रवि समोरे, अभयनंदी नमें नरचन्द्र रे ।।

तेह तणे पाटें सोहावयो रे, श्री रत्नकीरति सुगुण भंडार रे ।
तास शीष सुरी गुणें मंडयो रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

एक मनां एह भणें सांमले रे, लखे भलु एह आख्यान रे ।।
मन रे वांछति फलते लहे रे, नव भवें लहे बहु मान रे ।

संवत सोल पंचावनें रे, उजाली दशमी चैत्र मास रे ।।
बाडोरली नयरे रचना रची रे, चन्द्रप्रभ सुभ आवास रे ।

नित्य नित्य केवली जे जपे रे, जय-जयनाम प्रसीधरे ।।
गणधर आदिनाथ केर डोरे, एकत्तरमो बहु रिध रे ।

विस्तार आदि पुराण पांडवे भणोरे, एह संक्षेपे कही सार रे ।।
भणे सुणे भवि ते सुख लहे रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

समय :

कवि ने इसे संवत् १६५५ में समाप्त किया था। इसे यदि अन्तिम रचना भी माना जावे तो उसका समय संवत् १६६० तक का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने गुरु के रूप में केवल 'रत्नकीर्ति' का ही नामोल्लेख किया है, जबकि संवत् १६६० तक तो रत्नकीर्ति के पश्चात् कुमुदचन्द्र भी भट्टारक हो गए थे, इसलिए यह भी निश्चित सा है कि कवि ने रत्नकीर्ति से ही दीक्षा ली थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे संघ से अलग ही रहने लगे थे। ऐसी अवस्था में

कवि का समय यदि संवत् १६०० से १६६० तक मान लिया जावे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

अन्य कृतियां :

जयकुमाराख्यान एवं सोलह कारण रास के अलावा अन्य सभी रचनाएं लघु रचनाएं हैं। किन्तु भाव एवं भाषा की दृष्टि से वे सभी उल्लेखनीय हैं। कवि का एक पद देखिए :—

राग प्रभाति :

आगता जिनवर जे दिन निरख्यो,
　　धन्य ते दिवस चिन्तामणि सरिखो।

सुप्रभाति मुख कमल जु दीठु,
　　वचन अमृत थकी अधिकजु मीठु ॥१॥

सफल जनम हवो जिनवर दीठा,
　　करण सफल सुण्या तुम्ह गुण मीठा ॥२॥

धन्य ते जे जिनवर पद पूजे,
　　श्री जिन तुम्ह विन देव न दूजो ॥३॥

स्वर्ग मुगति जिन दरसनि पांमे,
　　'चन्द्रकीरति' सूरि सीसज नामे ॥४॥

भट्टारक शुभचंद्र (द्वितीय)

'शुभचन्द्र' के नाम से कितने ही भट्टारक हुए हैं। 'भट्टारक-सम्प्रदाय' में '४ शुभचन्द्र' गिनाये गये हैं:—

१. 'कमल कीर्त्ति' के शिष्य 'भ० शुभचन्द्र'
२. 'पद्मनन्दि' के शिष्य- ,,
३. 'विजयकीर्त्ति' के शिष्य- ,,
४. 'हर्षचन्द' के शिष्य- ,,

इनमें प्रथम काष्ठा संघ के माथुर गच्छ और पुष्कर गण में होने वाले 'भ० कमलकीर्त्ति' के शिष्य थे। इनका समय १६वीं शताब्दि का प्रथम-द्वितीय चरण था। 'दूसरे शुभचन्द्र' भ० पद्मनन्दि के शिष्य थे, जिनका भ० काल स० १४५० से १५०७ तक था। तीसरे 'भ० शुभचन्द्र' भ० विजयकीर्त्ति के शिष्य थे-जिनका हम पूर्व पृष्ठों में परिचय दे चुके हैं। 'चोथे शुभचन्द्र' भ० हर्षचन्द के शिष्य बताये गये हैं—इनका समय १७२३ से १७४६ माना गया है। ये भट्टारक भुवन कीर्त्ति की परम्परा में होने वाले भ० हर्षचन्द (सं. १६९८-१७२३) के शिष्य थे। लेकिन 'आलोच्य भट्टारक शुभचन्द्र' 'भ०-अभयचन्द्र' के शिष्य थे-जो भ० रत्नकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे जिनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है-—

'भट्टारक अभयचन्द्र' के पश्चात् संवत् १७२१ की ज्येष्ठ वुदी प्रतिपदा के दिन पोरबन्दर में एक विशेष उत्सव किया गया। देश के विभिन्न भागों से अनेक साधु-सन्त एवं प्रतिष्ठित श्रावक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए नगर में आये। शुभ मुहूर्त में 'शुभचन्द्र' का 'भट्टारक गादी' पर अभिषेक किया गया। सभी उपस्थित श्रावकों ने 'शुभचन्द्र' की जयकार के नारे लगाये। स्त्रियों ने उनकी दीर्घायु के लिए मंगल गीत गाये। विविध वाद्य यन्त्रों से सभा-स्थल गूंज उठा और उपस्थित जन-समुदाय ने गुरु के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित की।[2]

'शुभचन्द्र' ने भट्टारक बनते ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया।

---

१. देखिये-'भट्टारक-सम्प्रदाय'-पृ. सं०....३०६

२. तब सज्जन उलट अंग धरे, मधुरे स्वरे माननी गांन करे॥११॥
ताहां बहु विध वाजित्र वाजंता, सुर नर मन मोहो निरखंता ॥१२॥

यद्यपि अभी वे पूर्णतः युवा थे।[3] उनके अंग प्रत्यंग से सुन्दरता टपक रही थी, लेकिन उन्होंने अपने आत्म–उद्धार के साथ-साथ समाज के अज्ञानान्धकार को दूर करने का बीड़ा उठाया और उन्हें अपने इस मिशन में पर्याप्त सफलता भी मिली। उन्होंने स्थान-स्थान पर विहार किया। राजस्थान से उन्हें अत्यधिक प्रेम था इसलिए इस प्रदेश में उन्होंने बहुत भ्रमण किया और अपने प्रवचनों द्वारा जन-साधारण के नैतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योग दान दिया।

'शुभचन्द्र' नाम के ये पांचवे भट्टारक थे, जिन्होंने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में विशेष रुचि ली। 'शुभचन्द्र' गुजरात प्रदेश के जलसेन नगर में उत्पन्न हुए। यह नगर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र था तथा हूंबड़ जाति के श्रावकों का वहाँ प्रभुत्व था। इन्हीं श्रावकों में 'हीरा' भी एक श्रावक थे जो धन धान्य से पूर्ण तथा समाज द्वारा सम्मानित व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम 'माणिक दे' था। इन्हीं की कोंख से एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम 'नवल राम' रखा गया। 'बालक नवल' अत्यधिक व्युत्पन्न-मति थे-इसलिए उसने अल्पायु में ही व्याकरण, न्याय, पुराण, छन्द–शास्त्र, अष्टसहस्री एवं चारों वेदों का अध्ययन कर लिया।[1] १८ वीं शताब्दी में भी गुजरात एवं राजस्थान में भट्टारक साधुओं का अच्छा प्रभाव था। इसलिए नवल राम को बचपन से ही इनकी संगति में रहने का अवसर मिला। 'भ० अभयचन्द्र' के सरल जीवन से ये अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए उन्होंने भी गृहस्थ जीवन के चक्कर में न पड़कर आजन्म साधु-जीवन का परिपलन करने का निश्चय कर लिया। प्रारम्भ में 'अभयचन्द्र' से 'ब्रह्मचारी पद' की शपथ ली और इसके पश्चात् वे भट्टारक बन गए।

'शुभचन्द्र' के शिष्यों में पं. श्रीपाल, गणेश, विद्यासागर, जयसागर, आनन्दसागर आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। 'श्रीपाल' ने तो शुभचन्द्र के

---

३. छण रजनी कर वदन विलोकित, अर्द्ध ससी सम भाल।
पंकज पत्र समान सुलोचन, ग्रीवा कंबु विशाल रे ॥८॥

नाशा शुक–चंची सम सुन्दर, अधर प्रवाली वृंद।
रक्त वर्ण द्विज पंक्ति विराजित नीरखंता आनन्द रे ॥९॥

दिम दिम मद्दल तबलन फेरी, तत्तायेई करंत।
पंच शब्द वाजित्र ते वाजे, नादे नभ गज्जंत रे ॥२१॥

१. व्याकर्ण तर्क वितर्क अनोपम, पुराण पिंगल भेद।
अष्टसहस्री आदि ग्रंथ अनेक जु च्हों बिद जाणो वेद रे॥

—श्रीपाल कृत एक गीत

कितने ही पदों में प्रशंसात्मक गीत लिखे हैं –जो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों प्रकार के हैं।

'भ० शुभचन्द्र' साहित्य-निर्माण में अत्यधिक रूचि रखते थे। यद्यपि उनकी कोई बड़ी रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है, लेकिन जो पद साहित्य के रूप में इनकी कृतियाँ मिली हैं, वे इनकी साहित्य-रसिकता की ओर पर्याप्त प्रकाश डालने वाली हैं। अब तक इनके निम्न पद प्राप्त हुए हैं:—

१. पेखो सखी चन्द्रसम मुख चन्द्र
२. आदि पुरुष भजो आदि जिनेन्दा
३. कोन सखी सुध ल्यावे श्याम की
४. जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार
५. पावन मति मात पद्मावति पेखतां
६. प्रात समये शुभ ध्यान धरीजे
७. वासु पूज्य जिन विनती–सुणो वासु पूज्य मेरी विनती
८. श्री सारदा स्वामिनी प्रणमि पाय, स्तवू वीर जिनेश्वर विबुध राय।
९. अज्झारा पार्श्वनाथनी वीनती

उक्त पदों एवं विनतियों के अतिरिक्त अभी 'भ० शुभचन्द्र' की और भी रचनाएँ होंगी, जो किसी गुटके के पृष्ठों पर अथवा किसी शास्त्र–भण्डार में स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में अज्ञातावस्था में हुए पड़ी अपने उद्धार की बाट जोह रहीं होंगी।

पदों में कवि ने उत्तम भावों को रखने का प्रयास किया है। ऐसा मालूम होता है कि 'शुभचन्द्र' अपने पूर्ववर्ती कवियों के समान 'नेमि-राजुल' की जीवन-घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए एक पद में उन्होंने "कौन सखी सुध-ल्यावे श्याम की" मार्मिक भाव भरा। इस पद से स्पष्ट है कि कवि के जीवन पर मीरां एवं सूरदास के पदों का प्रभाव भी पड़ा है:—

कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की।
मधुरी धुनी मुखचंद विराजित, राजमति गुण गावे ।।श्याम.।।१।।

अंग विभूषण मनीमय मेरे, मनोहर माननी पावे।
करो कछू तंत मंत मेरी सजनी, मोहि प्रान नाथ मीलावे ।।श्याम.।।२।।

गज गमनी गुण मन्दिर स्यामा, मनमथ मान सतावे।
कहा अवगुन अब दीन दयाल छोरि मुगति मन भावे ।।श्याम.।।३।।

सब सखी मिली मन मोहन के ढिग, जाई कथा जु सुनावे ।
सुनो प्रभु श्री शुभचन्द्र के साहिब, कामिनी कुल क्यों लजावे ॥स्याम.॥४॥

कवि ने अपने प्रायः सभी पद भक्ति-रस प्रधान लिखे हैं । उनमें विभिन्न तीर्थंकरों का स्तवन किया गया है । आदिनाथ स्तवन का एक पद देखिए—

आदि पुरुष भजो आदि जिनेंदा ॥टेक॥
सकल सुरासुर शेष सु व्यंतर, नर खग दिनपति सेवित चंदा ॥१॥

जुग आदि जिनपति भये पावन, पतित उदारण नाभि के नंदा ।
दीन दयाल कृपा निधि सागर, पार करो अध-तिमिर दिनेंदा ॥२॥

केवल ग्यान थे सब कछु जानत, काह कहू प्रभु मो मति मंदा ।
देखत दिन-दिन चरण सरणते, विनती करत यो सूरि शुभ चंदा ॥३॥

समय :

'शुभचन्द्र' संवत् १७४५ तक भट्टारक रहे । इसके पश्चात् 'रत्नचन्द्र' को भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया । 'भ० रत्नचन्द्र' का एक लेख सं. १७४८ का मिला है, जिसमें एक गीत की प्रतिलिपि पं. श्रीपाल के परिवार के सदस्यों के लिए की गई थी–ऐसा उल्लेख किया गया है । इस तरह 'भ० शुभचन्द्र' ने २४–२५ वर्ष तक देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करके साहित्य एवं संस्कृति के पुनरुत्थान का जो अलख जगाया था–वह सदैव स्मरणीय रहेगा ।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

१७ वीं शताब्दि में राजस्थान में 'आमेर-राज्य' का महत्व बढ़ रहा था। आमेर के शासकों का मुगल बादशाहों से घनिष्ट सम्बन्ध के कारण यहां अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसके अतिरिक्त आमेर के शासन में भी जैन दीवानों का प्रमुख हाथ था। वहां जैनों की अच्छी बस्ती थी और पुरातत्व एवं कला की दृष्टि से भी आमेर एवं सांगानेर के मन्दिर राजस्थान-भर में प्रसिद्धि पा चुके थे। इसलिए देहली के भट्टारकों ने भी अपनी गादी को दिल्ली से आमेर स्थानान्तरित करना उचित समझा और इसमें प्रमुख भाग लिया 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' ने; जिनका पट्टाभिषेक संवत् १६६२ में चाटसू में हुआ था। इसके पश्चात् तो आमेर, सांगानेर, चाटसू और टोडारायसिंह आदि नगरों के प्रदेश इन भट्टारकों की गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बन गये। इन सन्तों की कृपा से यहां संस्कृत एवं हिन्दी-ग्रन्थों का पठन-पाठन ही प्रारम्भ नहीं हुआ, किन्तु इन भाषाओं में ग्रन्थ रचना भी होने लगी और आमेर, सांगानेर, टोड़ा-रायसिंह और फिर जयपुर में विद्वानों की मानों एक कतार ही खड़ी होगयी। १७ वीं शताब्दी तक प्रायः सभी विद्वान् 'सन्त' हुआ करते थे, लेकिन १८ वीं श० से गृहस्थ भी साहित्य-निर्माता बन गये। अजयराज पाटणी, खुशालचन्दकाला, जोधराज गोदीका, दौलतराम कासलीवाल, महा पं० टोडरमलजी व जयचन्दजी छाबड़ा जैसे उच्चस्तरीय विद्वानों को जन्म देने का गर्व इसी भूमि को है।

'आमेर-शास्त्र-भण्डार' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ-संग्रहालय की स्थापना एवं उसमें अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी-ग्रन्थों की प्राचीनतम प्रतिलिपियों का संग्रह इन्हीं सन्तों की देन है। आमेर शास्त्र भण्डार में अपभ्रंश का जो महत्वपूर्ण संग्रह है, वैसा संग्रह नागौर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार को छोड़कर राजस्थान के किसी भी ग्रन्थ-संग्रहालय में नहीं है। वास्तव में इन सन्तों ने अपने जीवन का लक्ष्य आत्म-विकास की ओर निहित किया। उनका यह लक्ष्य साहित्य-संग्रह एवं उसके प्रचार की ओर भी था। इन्हीं सन्तों की दूरदर्शिता के कारण देश का अमूल्य साहित्य नष्ट होने से बच सका। अब यहां आमेर गादी से सम्बन्धित तीन सन्तों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है:—

१. भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

'नरेन्द्रकीर्त्ति' अपने समय के जबरदस्त भट्टारक थे। ये शुद्ध 'वीस पंथ' को मानने वाले थे। ये खण्डेलवाल श्रावक थे और 'सौगाणी' इनका गोत्र था। एक

भट्टारक पट्टावली के अनुसार ये संवत् १६६१ में भट्टारक बने थे। इनका पट्टाभिषेक सांगानेर में हुआ था। इसकी पुष्टि वख्तराम साह ने अपने बुद्धि-विलास' में निम्न पद्य से की है:—

> नरेन्द्र कीरति नाम, पट इक सांगानेरि मैं।
> भये महागुन धाम, सोलह सै इक्याणवै ॥६६२॥

ये 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' के शिष्य थे, जो आमेर गादी के संस्थापक थे। सम्पूर्ण राजस्थान में ये प्रभावशाली थे। मालवा, मेवात तथा दिल्ली आदि के प्रदेशों में इनके भक्त रहते थे और जब वे जाते, तब उनका खूब स्वागत किया जाता। एक भट्टारक पट्टावली[1] में नरेन्द्रकीर्त्ति की आम्नायका-जहां २ प्रचार था, उसका निम्न पद्यों में नामोल्लेख किया है:—

> आमनाइ ढिलीय मंडल मुनिवर, अवर मरहट देसयं।
> वणीए वत्तीसी विख्यात, वदि वैराठस वेसयं ॥
>
> मेवात मंडल सवै सुणीए, धरम तिण बांधै वरा।
> परसिध पचवारौस मुणिए, खलक वंदे अतिखरा ॥११८॥
>
> वर प्रकट ढुंढा इडर ढाढ़ो, अवर अजमेरो भणा।
> मुरधर संदेश करैं महोछा, मंड चवरासी घणा ॥
>
> सांभरि सुथान सुद्रग सुणीजै, जुगत इहरै जाण ए।
> अविकार ऐती धरा वोपै, विरुद अधिक वखाणए ॥११९॥
>
> नरसाह नागरचाल निसचल वहोत खैराड़ा वरै।
> मेवाड़ देस चीतौड़ मोटो, महैपति मंगल करै ॥
>
> मालवै देसि वड़ा महाजन, परम सुखकारी सुणा।
> आग्या सुवाल सुधुम सव विधि, भाव अंगि मोटा भणा ॥१२०॥
>
> मांडौर मांडिल अजव, वून्दी, परसि पाटण थानयं।
> सीलोर कोटो व्रह्मवार, मही रिणथंभ मानयं ॥
>
> दीरव चदेरी चाव निस्चल, महंत धरम सुमंडणा।
> विडदैत लाखैहेरी विराजै, अधिक उणियारा तणा ॥१२१॥

---

1. इसकी एक प्रति महावीर भवन, जयपुर के संग्रहालय में है।

दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरह पंथ की उत्पत्ति भी इन्हीं के समय में हुई थी। यह पंथ सुधारवादी था और उसके द्वारा अनेक कुरीतियों का जोरदार विरोध किया था। बख्तराम साह ने अपने मिथ्यात्व खण्डन में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है:—

भट्टारक आंवैरिके, नरेन्द्र कीरति नाम।
यह कुपंथ तिनकै समै, नयो चल्यो अघ धाम ॥२४॥

इस पद्य से ज्ञात होता है कि 'नरेन्द्रकीर्त्ति' का अपने समय ही से विरोध होने लगा था और इनकी मान्यताओं का विरोध करने के लिए कुछ सुधारकों ने तेरहपंथ नाम से एक पंथ को जन्म दिया। लेकिन विरोध होते हुए भी नरेन्द्रकीर्त्ति अपने मिशन के पक्के थे और स्थान २ पर घूमकर साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार किया करते थे। यह अवश्य था कि ये सन्त अपने आध्यात्मिक उत्थान की ओर कम ध्यान देने लगे थे तथा लौकिक रूढ़ियों में फंसते जा रहे थे। इसलिए उनका धीरे-धीरे विरोध बढ़ रहा था, जिसने महापंडित टोडरमल के समय में उग्र रूप धारण कर लिया और इन सन्तों के महत्व को ही सदा के लिए समाप्त कर दिया।

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने अपने समय में आमेर के प्रसिद्ध भट्टारकीय शास्त्र भण्डार को सुरक्षित रखा और उसमें नयी २ प्रतियां, लिखवाकर विराजमान कराई गई।

"तीर्थंकर चौबीसना छप्पय" नाम से एक रचना मिली है, जो संभवत: इन्हीं नरेन्द्रकीर्त्ति की मालूम होती है। इस रचना का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

एकादश वर अंग, चउद पूरव सहु जाणउ।
चउद प्रकीर्णक शुद्ध, पंच चूलिका वखाणु ॥

अरि पंच परिकर्म सूत्र, प्रथमह दिनि योगह।
तिहनां पद शत एक, अधकि द्वादश कोटिगह ॥

आसी लक्ष अधिक वली, सहस्र अठावन पंच पद।
इम आचार्य नरेन्द्रकीरति कहइ, श्रीश्रुत ज्ञान पठधरीय मुदं ॥

संवत् १७२२ तक ये भट्टारक रहे और इसी वर्ष महापंडित–'आशाधर' कृत प्रतिष्ठा पाठ की एक हस्त लिखित प्रति इनके शिष्य आचार्य श्रीचन्द्रकीर्त्ति, घासीराम, पं० भीवसी एवं मयाचन्द के पठनार्थ भेंट की गई।

कितने ही स्तोत्रों की हिन्दी-गद्य टीका करने वाले 'अखयराज' इन्हीं के शिष्य थे। संवत् १७१७ में संस्कृत मंजरी की प्रति इन्हें भेंट की गई थी। टोड़ारायसिंह

के प्रसिद्ध पंडित कवि जगन्नाथ इन्हीं के शिष्य थे। पं० परमानन्दजी ने नरेन्द्रकीर्ति के विषय में लिखते हुए कहा है कि इनके समय में टोड़ारायसिंह में संस्कृत पठन-पाठन का अच्छा कार्य चलता था। लोग शास्त्रों के अभ्यास द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। यहां शास्त्रों का भी अच्छा संग्रह था। लोगों को जैनधर्म से विशेष प्रेम था। अष्टसहस्री और प्रमाण-निर्णय आदि न्याय-ग्रन्थों का लेखन, प्रवचन, पञ्चास्तिकाय आदि सिद्धान्त ग्रन्थों आदि का प्रति लेखन कार्य तथा अनेक नूतन ग्रन्थों का निर्माण हुआ था। कवि जगन्नाथ ने श्वेताम्बर-पराजय में नरेन्द्रकीर्ति का मंगलाचरण में निम्न प्रकार उल्लेख किया है:—

पदांबुज-मधुव्रतो भुवि नरेन्द्रकीर्त्तिगुरोः।
सुवादि पद भृद्ध्रुवः प्रकरणं जगन्नाथ वाक् ॥२॥

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने कितनी ही प्रतिष्ठाओं का नेतृत्व भी किया था। पांवापुर (सं० १७००), गिरनार (१७०८), मालपुरा (१७१०), हस्तिनापुर (सं० १७१६) में होने वाली प्रतिष्ठाएं इन्हीं की देख-रेख में सम्पन्न हुई थीं।

सुरेन्द्रकीर्त्ति

सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति के शिष्य थे। इनकी ग्रहस्थ अवस्था का नाम दामोदरदास था तथा ये कालागोत्रीय खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। ये बडे भारी विद्वान् एवं संयमी श्रावक थे। प्रारम्भ से ही उदासीन रहते एवं शास्त्रों का पठन पाठन भी करते थे। एक वार भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति का सांगानेर में आगमन हुआ तो उनका दामोदरदास से साक्षात्कार हुआ। प्रथम भेट में ही ये दामोदरदास की विद्वत्ता एवं वाक् चातुर्य पर प्रभावित हो गये और उन्हें अपना प्रमुख शिष्य बनाने को उद्यत हो गये। जब इन्हें अपने स्वयं के शेष जीवन पर अविश्वास होने लगा तो शीघ्र ही भट्टारक गादी पर दामोदरदास को बिठाने की योजना बनाई गई। एक भट्टारक पट्टावलि में इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

श्रीय गुर सांगानइरि मधि, आयो करण प्रकास।
मुझ काया तो एम गति, देखि दामोदरदास ॥१२५॥

हूं भला कहौ तुम संभलौ, कथौ दोस मति कोई।
जो दिख्या मनि दिढ करौ, तो अवसि पाटि अव होइ ॥१२६॥

तव पंडित समझावियो, तुम चिरजीव मुनिराज।
इसी वात किम उचरौ, श्री गछपति सिरताज ॥१२७॥

घणा दीह आरोगि घणा, काया तुम अवीचार।
च्यारि मास पीछे ग्रहो, यौ जिण धरम आचार ॥१२८॥

इया वचन पंडित कहै, आगम तणा अरथ।
तव गुर नरिंद सुजाणियो, इहै पाट समरथ ॥१२९॥

सांगानेर एवं आमेर के प्रमुख श्रावकों ने एक स्वर से दामोदरदास को भट्टारक बनाने की अनुमति दे दी। वे उसके चरित्र एवं विनय तथा पांडित्य की निम्न शब्दों में प्रशसा करने लगे—

वडौ जोग्य पंडित सु अपरवल, सुन्दर सील काइ अतिनूमल।
यो जैनिधरम लाइक परमाण, ऐम कह्यौ संगपति कलियांण ॥१३७॥

दामोदररास को सांगानेर से बड़े ठाट वाट के साथ आमेर लाया गया और उन्हें संवतु १७२२ में विधि-वत् भट्टारक वना दिया गया। अव दामोदररास से

उनका नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति हो गया। इनका पाटोत्सव बड़ी धूम धाम से हुआ। स्वर्ण कलश से स्नान कराया गया तथा सारे राजस्थान में प्रतिष्ठित श्रावकों ने इस महोत्सव में भाग लिया। सुरेन्द्रकीर्त्ति की प्रशंसा में लिखा हुआ एक पद्य देखिये—

सत्रासै साल भणं वाइसे संजम सावण मधि ग्रह्यौ
सुभ आठै मंगलवार सही जोतिग मिले पखि किसन कह्यौ।

मारयौ मद मोह मिथ्यातम हर भउ रुप महा वैराग धरयौ।
धर्मवंत धरारत नागर सागर गोतम सौ गुण ग्यान भरयौ।

तप तेज सुकाइ अनंत करे सवक तणौ तिन माण हणं,
थीर थंभण पाट नरिंद तणौ सुरीयंद भट्टारिक साध भणं ॥१६६॥

सुरेन्द्रकीर्त्ति की योग्यता एवं संयम की चारों ओर प्रशंसा होने लगी और शीघ्र ही इन्होंने सारे राजस्थान पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ये केवल ११ वर्ष भट्टारक रहे लेकिन इस अल्प समय में ही इन्होंने सब ओर विहार करके समाज सुधार एवं साहित्य प्रचार का वडा भारी कार्य किया। इन्हें कितने ही स्थानों से निमन्त्रण मिलते। जब ये अहार के लिये जाते तो श्रावक इन पर सोने चांदी का सिक्के न्योछावर करते और इनके आगमन से अपने घर को पवित्र समझते। वास्तव में समाज में इन्हें अत्यधिक आदर एवं सत्कार मिला।

सुरेन्द्रकीर्त्ति साहित्यिक भी थे। इनके काल में आमेर शास्त्र भण्डार की अच्छी प्रगति रही। कितनी ही नवीन प्रतियां लिखवायी गयी और कितने ही ग्रंथों का जीर्णोद्धार किया गया।

———

भट्टारक जगत्कीर्त्ति

जगत्कीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध एवं लोक प्रिय भट्टारक रहे हैं। ये संवत् १७३३ में सुरेन्द्रकीर्त्ति के पश्चात् भट्टारक बने। इनका पट्टाभिषेक आमेर में हुआ था जहां आमेर और सांगानेर एवं अन्य नगरों के सैंकड़ों हजारों श्रावकों ने इन्हें अपना गुरु स्वीकार किया था। तत्कालीन पंडित रत्नकीर्त्ति, महीचन्द, एवं यशःकीर्त्ति ने इनका समर्थन किया। ये शास्त्रों के ज्ञाता एवं सिद्धान्त ग्रंथों के गम्भीर विद्वान थे। मंन्त्र शास्त्र में भी इनका अच्छा प्रवेश था। एक भट्टारक पट्टावली में इनके पट्टाभिषेक का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

महो मूलसंघ गच्छपति मारिण धारी, आतमक जीवइ राग धरं।
आराध मन्त्र विद्या, वरवाइक, अमृत मुखि उचार करं।

सत सील धर्म सारी परिस कहय, वसुधा जस तिरण विसतरीय।
श्रीय जगतकीरति भट्टारिक जग गुर, श्रीय सुरियंद पाट सउधरीय।१४।

आंवैरि नइरि नृप राम राज मधि, विमलदास विधि सहैत कीयं।
परिमल भरि पंच कलस अति कुंदन पंचमिलि कल्याण कीयं।

अंजलि काइसर दास भेलि करि, अति आनंद उछव करीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जग गुर, श्रीय सुरिइंद पाटिउ धरिय ॥१५॥

सांखोण्या वंसि सिरोमरिण सव विधि, दुनीया ध्रम उपदेस दीय।
उपगार उदार वडो व्रद छाजत, लोभ्या मुखि मुखि सुजस लीय।

देवल पतिस्ट संग उपदेसै, अमृत वारिण सउचरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जगगुर, श्रीय सुरिइंद पाटिउ धरिय ॥१६॥

संवत सत्रासै अर तेतीसै, सावरण वदि पंचमी भरिण।
पदवी भट्टारक अचल विराजित, धरण दान धरण राजतरणं।

महिमा महा सवै करै मिलि श्रावक, सीख साखा आनंद धरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारिक जगतगुर, श्रीसुरिइदं पाट सउ धरीय ॥१७॥

जगतकीर्ति एक लम्बे समय तक भट्टारक रहे और इन्होंने अपने इस काल को राजस्थान में स्थान स्थान में बिहार करके जन साधारण के जीवन को सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टि से ऊंचा उठाया। संवत् १७४१ में आपने

लवाण (जयपुर) ग्राम में विहार लिया। उस अवसर पर यहां के एक श्रावक हरनाम ने सोलहकारण व्रतोद्यापन के समय भट्टारक सोमसेन कृत रामपुराण ग्रंथ की प्रति इनके शिष्य शुभचन्द्र को भेंट दी थी, इसी तरह एक अन्य अवसर पर संवत् १७४५ में श्रावकों ने मिल कर इनके शिष्य नाथूराम को सकलभूषण के उपदेश रत्न माला की प्रति भेंट की थी।

इनका एक शिष्य नेमिचन्द्र अच्छा विद्वान् था। उसने संवत् १७६९ में हरिवंशपुराण की रचना समाप्त की थी। इसकी ग्रंथ प्रशस्ति में भट्टारक जगत कीर्ति की प्रशंसा में कवि ने निम्न छन्द लिखा है—

> भट्टारक सब उपरै, जगतकीरती जगत जोति अपारतो।
> कीरति चहुं दिसि विस्तरी, पांच आचार पालै सुभ सारतो।
>
> प्रमत्त मैं जीतै नहीं, चहुं दिसि में ताकी आणतो।
> खिमा खडग स्यौं जीतिया, चोराणवै पटनायक माणतो ॥२०॥

पूर्व भट्टारकों के समान इन्होंने भी कितनी ही प्रतिष्ठाओं में भाग लिया। संवत् १७४१ में नरवर में प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसी वर्ष तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह) में भी प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ। संवत् १७४६ में चांदखेडी में जो विशाल प्रतिष्ठा हुई उसका सञ्चालन इन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस प्रतिष्ठा समारोह में हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई थी और आज वे राजस्थान के विभिन्न मन्दिरों में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार संवत् १७७० तक भट्टारक जगतकीर्त्ति ने जो साहित्य एवं संस्कृति की जो साधना की वह चिरस्मरणीय रहेगी।

अवशिष्ट संत

राजस्थान में हमारे आलोच्य समय (संवत् १४५० से १७५० तक) में सैकड़ों ही जैन संत हुए जिन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व द्वारा देश,समाज एवं साहित्य की बडी भारी सेवायें की थी। मुस्लिम शासन काल में भारत के प्रत्येक भू भाग पर युद्ध एवं अशान्ति के वादल सदैव छाये रहते थे। शासन द्वारा यहां के साहित्य एवं संस्कृति के विकास में कोई रुचि नहीं ली जाती थी ऐसे संक्रमण काल में इन सन्तों ने देश के जीवन को सदा ऊंचा उठाये रखा एवं यहां की संस्कृति एवं साहित्य को विनाश होने से बचाया ऐसे २० सन्तों का हम पहिले विस्तृत परिचय दे चुके हैं लेकिन अभी तो सैकड़ों एसे महान् सन्त हैं जिनकी सेवाओं का स्मरण करना वास्तव में भारतीय संस्कृति को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना है। ऐसे ही कुछ सन्तों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है—

---

१. मुनि महनन्दि

मुनि महनंदि भ० वीरचन्द के शिष्य थे इनकी एक कृति वारक्खडी दोहा मिली है। इसका अपर नाम पाहुडदोहा भी है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में संवत् १६०२ की संग्रहीत है जो चंपावती (चाटसू) के पार्श्वनाथ चैत्यालय में लिखी गई थी। प्रति शुद्ध एवं सुपाठ्य है। लिपि के अनुसार रचना १५ वीं शताब्दी की मालूम होती है। कवि की यद्यपि अभी तक एक ही कृति मिली है लेकिन वही उच्च कृति है। भाषा अपभ्रंश प्रभावित है तथा काव्यगत गुणों से पूर्णतः युक्त है।

कवि ने रचना में के आदि अन्त भाग में अपना निम्न प्रकार नामोल्लेख किया है—

> वारह विउणा जिण णवमि किय वारह अक्खरकक्क।
> महयंदिण भवियायण हो, णिसुणहु थिरमण थक्क ॥२॥
>
> भवदुक्खह निव्विणएण, वीरचन्द सिस्सेण।
> भवियह पडिवोहण कया, दोहा कव्व मिसेण ॥३॥

वारहखड़ी में य ष, श, ङ, ञ और ण इन वर्णों पर कोई दोहा नहीं है। इसमें ३३३ दोहा है जिनकी विभिन्न रूप से कवि ने निम्न प्रकार संख्या दी है।

एक्कु या रु ष शारदुइ ङ ण तिन्निवि मिल्लि।
चउवीस गल तिण्णिसय, विरइए दोहा वेल्लि ।।४।।

तेतीसह छह छंडिया, विरइय सत्तावीस।
वारह गुणिया त्तिण्णिसय, हुअ दोहा चउवीस ।।५।।

सो दोहा अप्पाणयहु, दोहो जोण मुणेइ।
मुणि महयदिण भासियउ, सुणिवि ण चित्ति धरेइ ।।६।।

प्रारम्भ में कवि ने अहिंसा की महत्ता वतलाते हुये लिखा है कि अहिंसा ही धर्म का सार है—

किजइ जिणवर भासियऊ, धम्मु अहिंसा सारु।
जिम छिजइ रे जीव तुहु, अवलीढउ संसारु ।।६।।

रचना वहुत सुन्दर है। इसे हम उपदेशात्मक, अध्यात्मिक एवं नीति रसात्मक कह सकते हैं। कवि ने छोटे छोटे दोहों में सुन्दर भावों को भरा है। वह कहता है कि जिस प्रकार दूध में घी तिल से तेल तथा लकड़ी में अग्नि रहती है उसी प्रकार शरीर में आत्मा निवास करती है—

खीरह मज्झह जेम घिउ, तिलह मंज्झि जिम तिलु।
कट्ठिहु वासणु जिम वसइ, तिम देहहि देहिल्लु ।।२२।।

कृति में से कुछ चुने हुये दोहों को पाठकों के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं—

दमु दय संजमु णियमु तउ, आजं मुवि किउ जेण।
तासु मर तहं कवण भऊ, कहियउ महइ देण ।।१७५।।

दाणु चउविहु जिणवरहं, कहियउ सावय दिज्ज।
दय जीवहं चउसंघहवि, भोयणु ऊसह विज्ज ।।१७६।।

पीडहि काउ परीसहहिं, जइ ण वियंभइ चित्तु।
मरणयालि असि आउसा, दिढ चित्तडइ धरंतु ।।२१४।।

फिरइ फिरकंहि चक्कु जिम, गुण उणलद्धउ स लोहु।
णरय तिरिक्खहिं जीवडउ, अमु चंतउ तिय मोहु ।।२२५।।

बाल मरण मुणि परिहरहिं, पंडिय मरणु मरेहि ।
बारह जिण सासणि कहिय, अणु वेक्खउ सुमरेहि ॥२२६॥

× × × × ×

रूव गंध रस फसडा, सद्द लिग गुण हीणु ।
अछइसी देहडि यसउ, घिउ जिम खीरह लीणु ॥२७६॥

अन्तिम पद्य—

जो पढइ पढावइ संभलइ, देविणु दवि लिहावइ ।
महयंदु भणंइ सो नित्तुलउ, अक्खइ सोक्खु परावइ ॥३३३॥

इति दोहा पाहुड समाप्त ॥शुभं भवतु॥

---

२. भुवनकीर्ति

भुवनकीर्त्ति भ० सकलकीर्त्ति के शिष्य थे ।[1] सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने लेकिन ये भट्टारक किस संवत् में बने इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है । भट्टारक सम्प्रदाय में इन्हें संवत् १५०८ में भट्टारक होना लिखा है ।[2] लेकिन अन्य भट्टारक पट्टावलियों[3] में सकलकीर्ति के पश्चात् धर्मकीर्त्ति एवं विमलेन्द्र-कीर्त्ति के भट्टारक होने का उल्लेख आता हैं। इन्हीं पट्टावलियों के अनुसार धर्मकीर्त्ति २४ वर्ष तथा विमलेन्द्रकीर्त्ति १८ वर्ष भट्टारक रहे । इस तरह सकलकीर्त्ति के ३३ वर्ष के पश्चात् भुवनकीर्त्ति को अर्थात् संवत् १५३२ में भट्टारक होना चाहिए, लेकिन भुवनकीर्त्ति के पश्चात् होने वाले सभी विद्वानों एवं भट्टारकों ने उक्त दोनों भट्टारकों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया इसलिये यही मान लिया जाना

---

१. आदि शिष्य आचारि जूहि गुरि दीखियाभूतलिभुवनकीर्त्ति—
सकलकीर्त्ति रास

२. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ संख्या १५८

३. त्यारपुठे सकलकीर्त्ति ने पाटै श्री धर्मकीर्ति आचार्य हुआ ते सागवाडा हता तेणे श्री सागवाडो जुने देहरे आदिनाथ नो प्रासाद करावीनै । पाछे नोगामो नै संघे पर स्थापना करि है । पाछै सागवाडे जाई ने पिता ने पुत्रकने प्रतिष्ठा करावी पौतोपुर मंत्र दीधो ते धर्मकीर्त्ति ये वर्ष २४ पाट भोग्यो पछै परोक्ष थया । पुठे पोताने दी करे ।

चाहिए कि इन भट्टारकों को भट्टारक सकलकीर्त्ति की परम्परा के भट्टारक स्वीकार नहीं किया गया और भुवनकीर्त्ति को ही सकलकीर्त्ति का प्रथम शिष्य एवं प्रथम भट्टारक घोषित कर दिया गया। इन्हें भट्टारक पद पर संवत् १४९९ के पश्चात् किया भी समय अभिषिक्त कर दिया होगा।

भुवनकीर्त्ति को श्रांतरी ग्राम में भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया। इस कार्य में संघवी सोमदास का प्रमुख हाथ था।

"पाछै गांम आत्रीये संघवी सोमजी ने समस्त संघ मिली नैं भट्टारक भुवनकीर्त्ति थाप्या"

भट्टारक पट्टावलि डूंगरपुर शास्त्र भंडार।

× + × ×

"पछे समस्त श्री संघ मली ने श्रांतरी नगर मध्ये संघवी सोमदास भट्टारक पदवी भुवनकीर्त्ति स्वामी थाप्या।

भट्टारक पट्टावलि ऋषभदेव शास्त्र भंडार।

जूना देहरानैं सन्मुखनि सही करावी। पछै धर्मकीर्त्ति नैं पाटै नोगांमाने संघ श्री विमलेन्द्रकीर्त्ति स्थापना करी तेणे वर्ष १२ पाट भोगव्यो।

भट्टारक पट्टावली–डूंगरपुर शास्त्र भंडार

+ + + +

स्वामी सकलकीर्त्ति ने पाटे धर्म्मकीर्त्ति स्वामी नौतनपुर संघे थाप्या। सागवाडा नाहाता अंगारी आ कहावे हेता प्रथम प्रथम प्रासाद करावीने श्री आदीनाथनो। पीछे दीक्षा लीधी हती ते वर्ष २४ पाट भोगव्यो पोताने हाथी प्रतिष्टाचार करि प्रासादानी पछे अंत समे समाधीमरण करता देहरा सामीनसि करावी दी करे करानी सागवाडे। पछे स्वामी धर्मकीर्ति ने पाटे नौतनपुर ने संघ समस्त मिली ने वीमलेन्द्रकीर्ति आचार्य पद थाप्पा ते गोलालारनी न्यात हती। ते स्वामी वीमलेन्द्रकीर्त्ति दक्षण पोहतां कुंदणपुर प्रतिष्ठा करावा सारु ते वीमलेन्द्रकीर्त्ति स्वामीदक्षण जे परो जे परोक्ष थपा। स्वामी प्रष्टा प्रसादा बंवनी ४ तथा ५ वागड मध्ये करि वर्ष १२ पाट भोगव्यो। एतला लगेण आचारय पाट चाल्या।

भ० पट्टावली भ० यशःकीर्त्ति शास्त्र भंडार (ऋषभदेव)

व्यक्तित्व—

संत भुवनकीर्त्ति विविध शास्त्रों के ज्ञाता एवं प्राकृत, संस्कृत तथा राजस्थानी के प्रबल विद्वान थे। शास्त्रार्थ करने में वे अति चतुर थे। वे सम्पूर्ण कलाओं में पारगत तथा पूर्ण अहिंसक थे। जिधर भी आपका विहार होता था, वहां आपका अपूर्व स्वागत होता। ब्रह्म जिनदास के शब्दों में इनकी कीर्त्ति विश्व विख्यात हो गयी थी। वे अनेक साधुओं के अधिपति एवं मुक्ति–मार्ग उपदेष्टा थे। विद्वानों से पूजनीय एवं पूर्ण संयमी थे। वे अनेक काव्यों के रचयिता एवं उत्कृष्ट गुणों के मंदिर थे।[1]

ब्रह्मजिनदास ने अपने रामचरित्र काव्य में इन्हीं भट्टारक भुवनकीर्त्ति का गुणानुवाद करते हुये लिखा है कि वे अगाध ज्ञान के वेत्ता तथा कामदेव को चूर्ण करने वाले थे। संसार पाश को त्यागने वाले एवं स्वच्छ गुणों के धारक थे। अनेक साधुओं के पूजनीय होने से वे यतिराज कहलाते थे।[2]

भुवनकीर्त्ति के बाद होने वाले सभी भट्टारकों ने इनका विविध रूप से

---

१. जयति भुवनकीर्त्ति विश्वविख्यातकीर्त्ति

बहुयतिजनयुक्तो, मुक्तिमार्गप्रणेता।
कुसमशरविजेता, भव्यसन्मार्गनेता ॥३॥

विबुधजननिषेव्यः सत्कृतानेककाव्य।
परमगुणनिवासः, सद्कृताली विलासः

विजितकरणमारः प्राप्तसंसारपारः
सभवतु गतदोषः शर्म्मणे वा सतोषः ॥४॥

जम्बूस्वामी चरित्र (ब्र० जिनदास)

२. पट्टे तदीये गुणावान् मनीषी क्षमानिधाने भुवनादिकीर्त्तिः।
जीयाच्चिरं भव्यसमूहवंद्यो नानायतिव्रातनिषेवणीयः ॥१८५॥

जगति भुवनकीर्तिभूर्तलख्यातकीर्त्तिः,
श्रुतजलनिधिवेत्ता अनंगमानप्रभेता।

विमलगुणनिवासः छिन्नसंसारपाशः
सजयति यतिराजः साधुराजि समाजः ॥१८६॥

रामचरित्र (ब्र० जिनदास)

गुणानुवाद गया है। इनके व्यक्तित्व एवं पांडित्य से सभी प्रभावित थे। भट्टारक शुभचन्द्र ने इनका निम्न शब्दों में स्मरण किया है।

तत्पट्टधारी भुवनादिकीर्त्तिः, जीयाच्चिरं धर्मधुरीणदक्षः।

चन्द्रप्रभचरित्र

शास्त्रार्थकारी खलु तस्य पट्टे भट्टारकभुवनादिकीर्तिः।

पार्श्वकाव्यपंजिका

भट्टारक सकलभूषण ने अपनी उपदेशरत्न माला में आपका निम्न शब्दों में उल्लेख किया है।

भुवनकीर्त्तिगुरुस्तत उर्जितो भुवनभासनशासनमंडनः।
अजनि तीव्रतपश्चरणक्षमो, विविधधर्म्मसमृद्धिसुदेशकः ॥३॥

भट्टारक रत्नचंद्र ने भुवनकीर्त्ति को सकलकीर्त्ति की आम्नाय का सूर्य मानते हुये उन्हें महा तपस्वी एवं वनवासी शब्द से सम्बोधित किया है:—

गुरुभुवनकीर्त्याख्यस्तत्पट्टोदयभानुमान्।
जातवान् जनितानन्दो वनवासी महातपः ॥४॥

इसी तरह भ० ज्ञानकीर्त्ति ने अपने यशोधर चरित्र में इनका कठोर तपस्या के कारण उत्कृष्ट कीर्ति वाले साधु के रूप में स्तवन किया है—

पट्टे तदीये भुवनादिकीर्त्तिः
तपो विधानाप्तसुकीर्त्तिमूर्त्तिम्

भुवनकीर्त्ति पहिले मुनि रहे और भट्टारक सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् किसी समय भट्टारक बने। भट्टारक बनने के पश्चात् इनके पांडित्य एवं तपस्या की चर्चा चारों ओर फैल गयी। इन्होंने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य जनता को सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से जाग्रत करने का बनाया और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इन्होंने अपने शिष्यों को उत्कृष्ट विद्वान एवं साहित्य–सेवी के रूप में तैयार किया।

भ० भुवनकीर्त्ति की अब तक जितनी रचनायें उपलब्ध हुई हैं उनमें जीवन्धररास, जम्बूस्वामीरास, अजंनाचरित्र आपकी उत्तम रचनाये हैं। साहित्य रचना के अतिरिक्त इन्होंने कितने ही स्थानों पर प्रतिष्ठा विधान सम्पन्न कराये तथा प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया।

१. संवत् १५११ में इनके उपदेश से हूंबड जातीय श्रावक करमण एवं उसके परिवार ने चौबीसी की प्रतिमा (मूल नायक प्रतिमा शांतिनाथ स्वामी) स्थापित की थी।

२. सवत् १५१३ में इनकी देखरेख में चतुर्विंशति प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई गयी।

३. संवत् १५१५ में गंधारपुर में प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई तथा फिर इन्हीं के उपदेश से जूनागढ में एक शिखर वाले मंदिर का निर्माण करवाया गया और उसमें धातु पीतल) की आदिनाथ की प्रतिमा की स्थापना की गई। इस उत्सव में सौराष्ट्र के छोटे वडे राजा महाराजा भी सम्मिलित हुये थे। भ० भुवनकीर्ति इसमें मुख्य अतिथि थे।

४. संवत् १५२५ में नागद्रहा ज्ञातीय श्रावक पूजा एवं उसके परिवार वालों ने इन्हीं के उपदेश से आदिनाथ स्वामी की धातु की प्रतिमा स्थापित की।

---

१. संवत् १५११ वर्षे वैशाख बुदी ५ तिथौ श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूबड जातीय श्री करमण भार्या सूल्हो सुत हरपाल भार्या खाडी सुत आसाधर एते श्री शांतिनाथ नित्यं प्रणमंति।

२. संवत् १५१३ वर्षे वैशाख बुदि ४ गुरौ श्री मूलसंघे भ० सकलकीर्ति तत्पट्टे भुवनकीर्त्ति—देवड भार्या लाडी सुत जगपाल भार्या सुत जाइया जिणदास एते श्री चतुर्विंशतिका नित्यं प्रणमंति। शुभंभवतु।

३. प्रतख्य पनर पनरोत्तरिइं गुरु श्री गंधारपुरीः प्रतिष्ठा संघवइ रागरिए ॥१९॥
जूनीगढ गुरु उपदेसइं सिखरबंध अतिसव।
सखि ठाकर अदराज्यस्संघ राजिप्रासाद मांडीउए ॥२०॥
मंडलिक राइ बहू मानीउ देश व देशी ज व्यापीसु।
पतीलमइ आदिनाथ थिर थापीया ए ॥२१॥

सकलकीर्त्तिनुरास

४. संव्रत् १५२५ वर्षे ज्येष्ठ वदी ८ शुक्रे श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये श्री सकलकीर्त्तिदेवा तत् पट्टे भ० भुवनकीर्त्ति गुरूपदेशात् नागद्रहा ज्ञातीयश्रेष्ठि पूजा भार्या वाछू सुत तोल्हा भार्या वारु सुत काला; तोल्हा सुत वेला-एते श्री आदिनाथं नित्यं प्रणमंति।

५. संवत् १५२७ वैशाख बुदि ११ को आपने एक और प्रतिष्ठा करवाई। इस अवसर पर हूंबड जातीय जयसिंह आदि श्रावकों ने धातु की रत्नत्रय चौबीसी की प्रतिष्ठा करवाई।

३. भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक जिनचन्द्र १६ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक एवं जैन सन्त थे। भारत की राजधानी देहली में भट्टारकों की प्रतिष्ठा बढाने में इनका प्रमुख हाथ रहा था। यद्यपि देहली में ही इनकी भट्टारक गादी थी लेकिन वहां से ही ये सारे राजस्थान का भ्रमण करते और साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार करते। इनके गुरु का नाम शुभचन्द्र था और उन्हीं के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् १५०७ की जेष्ठ कृष्णा ५ को इनका बडी धूम-धाम से पट्टाभिषेक हुआ। एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार इन्होंने १२ वर्ष की आयु में ही घर बार छोड़ दिया और भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य बन गये। १५ वर्ष तक इन्होंने शास्त्रों का खूब अध्ययन किया। भाषण देने एवं वाद विवाद करने की कला सीखी तथा २७ वें वर्ष में इन्हें भट्टारक पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। जिनचन्द्र ६४ वर्ष तक इस महत्वपूर्ण पद पर आसीन रहे। इतने लम्बे समय तक भट्टारक पद पर रहना बहुत कम सन्तों को मिल सका है। ये जाति से बघेरवाल जाति के श्रावक थे।

जिनचन्द्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं देहली प्रदेश में खूब विहार करते। जनता को वास्तविक धर्म का उपदेश देते। प्राचीन ग्रन्थों की नयी नयी प्रतियां लिखवा कर मन्दिरों में विराजमान करवाते, नये २ ग्रंथों का स्वयं निर्माण करते तथा दूसरों को इस ओर प्रोत्साहित करते। पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाते तथा स्थान स्थान पर नयी २ प्रतिष्ठायें करवा कर जैन धर्म एवं संस्कृति का प्रचार करते। आज राजस्थान के प्रत्येक दि० जैन मन्दिर में इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक दो मूर्त्तियां अवश्य ही मिलेंगी। संवत् १६४८ में जीवराज पापडीवाल ने जो बड़ी भारी प्रतिष्ठा करवायी थी वह सब इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई थी। उस प्रतिष्ठा में सैकड़ों ही नहीं हजारों मूर्त्तियां प्रतिष्ठापित करवा कर राजस्थान के अधिकांश मन्दिरों में विराजमान की गयी थी।

---

५. संवत् १५२७ वर्षे वैशाख बदी ११ बुधे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूंबड ब्र० जयसिंग भार्या भूरी सुत धर्मा भार्या हीरु भ्राता वीरा भार्या मरगदी सुत माड्या भूधर खीमा एते श्री रत्नत्रयचतुर्विंशतिका नित्यं प्रणमंति ।

आवां (टोंक, राजस्थान) में एक मील पश्चिम की ओर एक छोटी सी पहाड़ी पर नासियां हैं जिसमें भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र की निषेधिकायें स्थापित की हुई हैं ये तीनों निषेधिकाएं संवत् १५९३ ज्येष्ठ सुदी ३ सोमवार के दिन भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य मंडलाचार्य धर्मचन्द्र ने साह कालू एवं इसके चार पुत्र एवं पौत्रों के द्वारा स्थापित करायी थी। भट्टारक जिनचन्द्र की निषेदिका की ऊंचाई एवं चौड़ाई १४½ फीट × ९ इंच है।

इसी समय आवां में एक वड़ी भारी प्रतिष्ठा भी हुई थी जिसका ऐतिहासिक लेख वहीं के एक शांतिनाथ के मन्दिर में लगा हुआ है। लेख संस्कृत में है और उसमें भ० जिनचन्द का निम्न शब्दों में यशोगान किया गया है—

तत्पट्टस्थपरो धीमान् जिनचन्द्रः सुतत्ववित्।
अभूतो ऽस्मिन् च विख्यातो ध्यानार्थी दग्धकर्मक ॥

साहित्य सेवा—

जिनचन्द्र का प्राचीन ग्रंथों का नवीनीकरण की ओर विशेष ध्यान था इसलिये इनके द्वारा लिखवायी गयी कितनी ही हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। संवत् १५१२ की अषाढ कृष्ण १२ को नेमिनाथ चरित की एक प्रति लिखी गयी थी जिसे इन्हें घोघा वन्दगाह में नयनन्दि मुनि ने समर्पित की थी।[1] सवत् १५१५ में नैणवा नगर में इनके शिष्य अनन्तकीर्त्ति द्वारा नरसेनदेव की सिद्धचक्र कथा (अपभ्रंश) की प्रतिलिपि श्रावक नाराइण के पठनार्थ करवायी। इसी तरह संवत् १५२१ में ग्वालियर में पउमचरिउ की प्रतिलिपि करवा कर नेत्रनन्दि मुनि को अर्पण की गयी।[2] संवत् १५५८ की श्रावण शुल्क १२ को इनकी आम्नाय में ग्वालियर में महाराजा मानसिंह के शासन काल में नागकुमार चरित की प्रति लिखवायी गयी।

मूलाचार की एक लेखक प्रशस्ति में भट्टारक जिनचन्द्र की निम्न शब्दों में प्रशंसा की गयी है—

तदीयपट्टांवरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली।
भट्टारकश्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकानां भुवि योस्ति सीमा ॥

इसकी प्रति को संवत् १५१६ में झुंझुनु (राजस्थान) में साह पार्श्व के पुत्रों

१. देखिये भट्टारक पट्टावली पृष्ठ संख्या १०८
२. वहीं

ने श्रुतपंचमी उद्यापन पर लिखवायी थी। सं. १५१७ में झुंझुणु में ही तिलोयपण्णत्ति की प्रति लिखवायी गयी थी। पं० मेघावी इनका एक प्रमुख शिष्य था जो साहित्य रचना में विशेष रुचि रखता था। इन्होंने नागौर में धर्मसंग्रहश्रावकाचार की संवत् १५४१ में रचना समाप्त की थी इसकी प्रशस्ति में विद्वान् लेखक ने जिनचंद्र की निम्न शब्दों में स्तुति की है—

> तस्मान्नीरनिधेरिवेंदुरभवच्छ्रीमज्जिनेंद्रगणी ।
> स्याद्वादांवरमंडलैः कृतगतिर्दिगवाससां मंडनः ॥
>
> यो व्याख्यानमरीचिभिः कुवलये प्रल्हादनं चक्रिवान् ।
> सद्वृत्तः सकलकलंकविकलः षट्तर्कनिष्णातधी ॥१२॥

स्वयं भट्टारक जिनचन्द्र की अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है लेकिन देहली, हिसार, आगरा आदि के शास्त्र भण्डारों की खोज के पश्चात् संभवतः कोई इनकी बड़ी रचना भी उपलब्ध हो सकें। अब तक इनकी जो दो रचनायें उपलब्ध हुई हैं उनके नाम है सिद्धान्तसार और जिनचतुर्विंशतिस्तोत्र। सिद्धान्तसार एक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है और उसमें जिनचन्द्र के नाम से निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है—

> पवयणपमाणलक्खण छंदालंकार रहियहियएण ।
> जिणइंदेण पउत्तं इणमागमभत्तिजुत्तेण ॥७८॥

(माणिकचन्द्र ग्रंथमाला बम्बई)

जिनचतुर्विंशति स्तोत्र की एक प्रति जयपुर के विजयराम पांड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है। रचना संस्कृत में है और उसमें चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है।

साहित्य प्रचार के अतिरिक्त इन्होंने प्राचीन मन्दिरों का खूब जीर्णोद्धार करवाया एवं नवीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें करवा कर उन्हें मन्दिरों में विराजमान किया गया। जिनचन्द्र के समय में भारत पर मुसलमानों का राज्य था इसलिये वे प्रायः मन्दिरों एवं मूर्त्तियों को तोड़ते रहते थे। किन्तु भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिवर्ष नयी नयी प्रतिष्ठायें करवाते और नये नये मन्दिरों का निर्माण कराने के लिये श्रावकों को प्रोत्साहित करते रहते। संवत् १५०९ में संभवतः उन्होंने भट्टारक बनने के पश्चात् प्रथम बार घौपे ग्राम में शान्तिनाथ की मूर्त्ति स्थापित की थी। सं. १५१७ मंगसिर शुक्ल १० को उन्होंने चौवीसी की प्रतिमा स्थापित की। इसी तरह १५२३ में भी चौवीसी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करके स्थापना की गयी। संवत् १५४२,

१५४३, १५४८ आदि वर्षों में प्रतिष्ठापित की हुई कितनी ही मूर्त्तियां उपलब्ध होती हैं। संवत् १५४८ में जो इनकी द्वारा शहर मुंडासा (राजस्थान) में प्रतिष्ठा की गयी थी। उसमें सैकड़ों ही नहीं किन्तु हजारों की संख्या में मूर्त्तियां प्रतिष्ठापित की गयी थी। यह प्रतिष्ठा जीवराज पापडीवाल द्वारा करवायी गयी थी। भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिष्ठाचार्य थे।

भ० जिनचन्द्र के शिष्यों में रत्नकीर्त्ति, सिंहकीर्त्ति, प्रभाचन्द्र, जगतकीर्त्ति, चारुकीर्त्ति, जयकीर्त्ति, भीमसेन, मेधावी के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। रत्नकीर्त्ति ने संवत् १५७२ में नागौर (राजस्थान) में भट्टारक गादी स्थापित की तथा सिंहकीर्त्ति ने अटेर में स्वतंत्र भट्टारक गादी की स्थापना की।

इस प्रकार भट्टारक जिनचन्द्र ने अपने समय में साहित्य एवं पुरातत्व की जो सेवा की थी वह सदा ही स्वर्णाक्षरों में लिपिबद्ध रहेगी।

४. भट्टारक प्रभाचन्द्र

प्रभाचन्द्र के नाम से चार प्रसिद्ध भट्टारक हुये। प्रथम भट्टारक प्रभाचन्द्र बालचन्द के शिष्य थे जो सेनगण के भट्टारक थे तथा जो १२ वीं शताब्दी में हुये थे। दूसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे जो गुजरात की बलात्कारगण-उत्तर शाखा के भट्टारक बने थे। ये चमत्कारिक भट्टारक थे और एक बार इन्होंने अमावस्या को पूर्णिमा कर दिखायी थी। देहली में राघो चेतन में जो विवाद हुआ था उसमें इन्होंने विजय प्राप्त की थी। अपनी मन्त्र शक्ति के कारण ये पालकी सहित आकाश में उड़ गये थे। इनकी मन्त्र शक्ति के प्रभाव से बादशाह फिरोजशाह की मलिका इतनी अधिक प्रभावित हुई कि उन्हें उसको राजमहल में जाकर दर्शन देने पड़े। तीसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य थे और चौथे प्रभाचन्द्र भ० ज्ञानभूषण के शिष्य थे। यहां भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र के जीवन पर प्रकाश डाला जावेगा।

एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे और वैद इनका गोत्र था। ये १५ वर्ष तक ग्रहस्थ रहे। एक बार भ० जिनचन्द्र विहार कर रहे थे कि उनकी दृष्टि प्रभाचन्द्र पर पड़ी। इनकी अपूर्व सूझ-बूझ एवं गम्भीर ज्ञान को देख कर जिनचन्द ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। यह कोई संवत् १५५१ की घटना होगी। २० वर्ष तक इन्हें अपने पास रख कर खूब विद्याध्यन कराया और अपने से भी अधिक शास्त्रों का ज्ञाता तथा वादविवाद में पटु बना दिया। संवत् १५७१ की फाल्गुण कृष्णा २ को इनका दिल्ली में धूमधाम से पट्टाभिषेक हुआ। उस समय ये पूर्ण युवा थे। और अपनी अलौकिक वाक् शक्ति

एवं साधु स्वभाव से बरबस हृदय को स्वतः ही आकृष्ट कर लेते थे। एक भट्टारक पट्टावलि के अनुसार ये २५ वर्ष तक भट्टारक रहे। श्री वी० पी० जोहरापुरकर ने इन्हें केवल ९ वर्ष तक भट्टारक पद पर रहना लिखा है।[1] भट्टारक बनने के पश्चात् इन्होंने अपनी गद्दी को दिल्ली से चित्तौड़ (राजस्थान) में स्थानान्तरित कर लिया और इस प्रकार से भट्टारक सकलकीर्त्ति की शिष्य परम्परा के भट्टारकों के सामने कार्यक्षेत्र में जा डटे। इन्होंने अपने समय में ही मंडलाचार्यो की नियुक्ति की इनमें धर्मचन्द को प्रथम मंडलाचार्य बनने का सौभाग्य मिला। संवत् १५९३ में मंडलाचार्य धर्मचन्द द्वारा प्रतिष्ठित कितनी ही मूर्त्तियां मिलती है। इन्होंने ने आंवा नगर में अपने तीन गुरुओं की निषेधिकायें स्थापित की जिससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्र का इसके पूर्व ही स्वर्गवास हो गया था।

प्रभाचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध एवं समर्थ भट्टारक थे। एक लेख प्रशस्ति में इनके नाम के पूर्व पूर्वाचलदिनमणि, षड्तर्कतार्किकचूड़ामणि, वादिमदकुद्दल, अबुध-प्रतिबोधक आदि विशेषण लगाये हैं जिससे इनकी विद्वत्ता एवं तर्कशक्ति का परिज्ञान होता है।

साहित्य सेवा

प्रभाचन्द्र ने सारे राजस्थान में विहार किया। शास्त्र-भण्डारों का अवलोकन किया और उनमें नयी-नयी प्रतियां लिखवा कर प्रतिष्ठापित की। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में इनके समय में लिखी हुई सैकड़ों प्रतियां सग्रहीत है और इनका यशोगान गाती है। संवत् १५७५ की मांगशीर्ष शुक्ला ४ को बाई पार्वती ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रति लिखवायी और भट्टारक प्रभाचन्द्र को भेंट स्वरूप दी।[2]

संवत् १५७९ के मंगसिर मास में इनका टोंक नगर में विहार हुआ। चारों ओर आनन्द एवं उत्साह का वातावरण छा गया। इसी विहार की स्मृति में पंडित नरसेनकृत "सिद्धचक्रकथा" की प्रतिलिपि खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न टोंग्या गोत्र वाले साह धरमसी एवं उनकी भार्या खातू ने अपने पुत्र पौत्रादि सहित करवायी और उसे बाई पदमसिरी को स्वाध्याय के लिये भेंट दी।

संवत् १५८० में सिकन्दराबाद नगर में इन्हीं के एक शिष्य ब्र० बीडा को खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न साह दोदू ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रतिलिपि लिखवा कर भेंट की। उस समय भारत पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन

---

१. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ ११०.

२. देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ संख्या १८३.

था। उसके दो वर्ष पश्चात् संवत् १५८२ में घटियालीपुर में इन्हीं के आम्नाय के एक मुनि हेमकीर्त्ति को श्रीचन्दकृत रत्नकरण्ड की प्रति भेंट की गयी। भेंट करने वाली थी बाई भोली। इसी वर्ष जब इनका चंपावती (चाटसू) नगर में विहार हुआ तो वहां के साह गोत्रीय श्रावकों द्वारा सम्यक्त्व-कौमुदी की एक प्रति ब्रह्म बूचा (बूचराज) को भेंट दी गयी। ब्रह्म बूचराज भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। संवत् १५८३ की अषाढ शुक्ला तृतीया के दिन इन्हीं के प्रमुख शिष्य मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से महाकवि श्री यशःकीर्त्ति विरचित 'चन्दप्पहचरित' की प्रतिलिपि की गयी जो जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

संवत् १५८४ में महाकवि धनपाल कृत बाहुबलि चरित की बघेरवाल जाति में उत्पन्न साह माधो द्वारा प्रतिलिपि करवायी गयी और प्रभाचन्द्र के शिष्य ब्र० रत्नकीर्त्ति को स्वाध्याय के लिये भेंट दी गयी। इस प्रकार भ० प्रभाचन्द्र ने राजस्थान में स्थान-स्थान में विहार करके अनेक जीर्ण ग्रन्थों का उद्धार किया और उनकी प्रतियां करवा कर शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत की। वास्तव में यह उनकी सच्ची साहित्य सेवा थी जिसके कारण सैकड़ों ग्रन्थों की प्रतियां सुरक्षित रह सकी अन्यथा न जाने कब ही काल के गाल में समा जाती।

प्रतिष्ठा कार्य

भट्टारक प्रभाचन्द्र ने प्रतिष्ठा कार्यों में भी पूरी दिलचस्पी ली। भट्टारक गादी पर बैठने के पश्चात् कितनी ही प्रतिष्ठाओं का नेतृत्व किया एवं जनता को मन्दिर निर्माण की ओर आकृष्ट किया। संवत् १५७१ की ज्येष्ठ शुक्ला २ को षोडश-कारण यन्त्र एवं दशलक्षण यन्त्र की स्थापना की। इसके दो वर्ष पश्चात् संवत् १५७३ की फाल्गुन कृष्णा ३ को एक दशलक्षण यन्त्र स्थापित किया। संवत् १५७८ की फाल्गुण सुदी ९ के दिन तीन चौबीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी और इसी तरह संवत् १५८३ में भी चौबीसी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई। राजस्थान के कितने ही मन्दिरों में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तियां मिलती हैं।

संवत् १५९३ में मंडलाचार्य धर्मचन्द्र ने आंवा नगर में होने वाले बड़े प्रतिष्ठा महोत्सव का नेतृत्व किया था उसमें शान्तिनाथ स्वामी की एक विशाल एवं मनोज्ञ मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गयी थी। चार फीट ऊंची एवं ३॥ फीट चौड़ी श्वेत पाषाण की इतनी मनोज्ञ मूर्त्ति इने गिने स्थानों में ही मिलती हैं। इसी समय के एक लेख में धर्मचन्द्र ने प्रभाचन्द्र का निम्न शब्दों में स्मरण किया है—

तत्पट्टस्थ श्रुतावारी प्रभाचन्द्रः श्रियांनिधिः ।
दीक्षितो योलसत्कीर्त्तिः प्रचंडः पंडिताग्रणी ।

प्रभाचन्द्र ने राजस्थान में साहित्य तथा पुरातत्व के प्रति जो जन साधारण में आकर्षण पैदा किया था वह इतिहास में सदा चिरस्मरणीय रहेगा । ऐसे सन्त को शतशः प्रणाम ।

५. ब्र० गुणकीर्त्ति

गुणकीर्त्ति ब्रह्म जिनदास के शिष्य थे । ये स्वयं भी अच्छे विद्वान् थे और ग्रंथ रचना में रुचि लिया करते थे । अभी तक इनकी रामसीतारास की नाम एक राजस्थानी कृति उपलब्ध हुई है जिनके अध्ययन के पश्चात् इनकी विद्वत्ता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री ब्रह्मचार जिणदास तु, परसाद तेह तणोए ।
मन वांछित फल होइ तु, बोलीइ किस्यु घणुए ।।३६।।

गुणकीरति कृत रास तु, विस्तारु मनि रलीए ।
वाई धनश्री ज्ञानदास नु, पुण्यमती निरमलीए ।।३७।।

गावउ रली रंमि रास तु, पावउ रिद्धि वृद्धिए ।
मन वांछित फल होइ तु, संपजि नव निधिए ।।३८।।

'रामसीतारास' एक प्रवन्ध काव्य है जिसमें काव्यगत सभी गुण मिलते हैं । यह रास अपने समय में काफी लोकप्रिय रहा था इसलिये इसकी कितनी ही प्रतियां राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध होती है । ब्रह्म जिनदास की रचनाओं की समकक्ष की यह रचना निश्चय ही राजस्थानी साहित्य के इतिहास में एक अमूल्य निधि है ।

६. आचार्य जिनसेन

आचार्य जिनसेन भ० यशःकीर्त्ति के शिष्य थे । इनकी अभी एक कृति नेमिनाथ रास मिली है जिसे इन्होंने संवत् १५५८ में जवाछ नगर में समाप्त की थी । उस नगर में १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चैत्यालय था उसी पावन स्थान पर रास की रचना समाप्त हुई थी ।

नेमिनाथ रास में भगवान नेमिनाथ के जीवन का ९३ छन्दों में वर्णन किया गया है । जन्म, वरात, विवाह कंकण को तोड़कर वैराग्य लेने की घटना, कैवल्य प्राप्ति

एवं निर्वाण इन सभी घटनाओं का कवि ने संक्षिप्त परिचय दिया है। रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव झलकता है।

रास एक प्रबन्ध काव्य है लेकिन इसमें काव्यत्व के इतने दर्शन नहीं होते जितने जीवन की घटनाओं के होते हैं, इसलिये इसे कथा कृति का नाम भी दिया जा सकता है। इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन बडा मंदिर तेहरपंथी के शास्त्र भंडार में संग्रहीत है। प्रति में $१०\frac{१}{२}'' \times ४\frac{१}{२}''$ आकार वाले ११ पत्र हैं। यह प्रति संवत् १६१३ पौष सुदि १५ की लिखी हुई है।

ग्रंथ का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है:—

आदि भाग—

सारद सामिणि मांगु माने, तुझ चलणे चित लागू ध्याने।
अविरल अक्षर आलु दाने, मुझ मूरख मनि अविशांत रे।

गाउं राजा रलीयामणु रे, यादवना कुल मंडणसार रे।
नामि नेमीश्वर जाणि ज्यो रे, तसु गुण पुहुवि न लाभि पार रे।

राजमती वर रुयडू रे, नवह भवंतर मगीय भूंतरे।
दशमि दुरधर तप लीउ रे, आठ कर्म चउमी आणु अंत रे॥

अन्तिम भाग—

श्री यशकिरति सूरीनि सूरीश्वर कहीइ, महीपलि महिमा पार न लही रे।
तात रूपवर वरसि नित वाणी, सरस सकोमल अमीय सयाणी रे।

तास चलणे चित लाइउ रे, गाइउ राइ अपूरव रास रे।
जिनसेन युगति करी दे, तेह ना वयण तणउ वली वास रे॥९१॥

जा लगि जलनिधि नवसिनी रे, जा लगि अचल मेरि गिरि धी रे।
जा गयण गणि चंदनि सूर, ता लगि रास रहू भर करि रे।

प्रगति सहित यादव तणु रे, भाव सहित भणसि नर नारि रे।
तेहनि प्रणय होसि घणो रे, पाप तणु करसि परिहार रे॥९२॥

चंद्र वाण संवच्छर कीजि, पंचाणु पुण्य पासि दीजि।
माघ सुदि पंचमी भणीजि, गुरुवारिं सिद्ध योग ठवीजिरे।

जावछ नयर जगि जाणीइ रे, तीर्थंकर वली कहींइ सार रे।
शांतिनाथ तिहां सोलमु रे, कस्यु राम तेह भवण मझार रे॥९३॥

७. ब्रह्म जीवन्धर

ब्रह्म जीवंधर भ० सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं भ० यशःकीर्त्ति के शिष्य थे। सोमकीर्त्ति का परिचय पूर्व पृष्ठों में दिया जा चुका है। इसके अनुसार ब्र० जीवंधर का समय १६ वीं शताब्दि होना चाहिए। अभी तक इनकी एक 'गुणठाणा वेलि' कृति ही प्राप्त हो सकी है अन्य रचनाओं की खोज की अत्यधिक आवश्यकता है। गुणठाणा वेलि में २८ छन्द है जिसका अन्तिम चरण निम्न प्रकार है —

चौदि गुणठाणां सुण्या जे भण्या श्रीजिनराइ जी,
सुरनर विद्याधर समा पूजीय वंदीय पाय जी।

पाय पूजी मनहर जी भरत राजा संचर्या,
अयोध्यापुरी राज करवा सयल सज्जन परवर्या।

विद्या गणधर उदय भूधर नित्य प्रकटन भास्कर,
भट्टारक यशकीरति सेवक भणिय ब्रह्म जीवंवर ॥२२॥

वेलि की भाषा राजस्थानी है तथा इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के संग्रह में है।

८. ब्रह्मधर्म रुचि

भ० लक्ष्मीचन्द्र की परम्परा मे दो अभयचन्द्र भट्टारक हुए। एक अभयचन्द्र (सं० १५४८) अभयनन्दि के गुरु थे तथा दूसरे अभयचन्द्र भ० कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे अभयचन्द्र का पूर्व पृष्ठों में परिचय दिया जा चुका है किन्तु ब्रह्म धर्मरुचि प्रथम अभयचन्द्र के शिष्य थे। जिनका समय १६ वीं शताब्दि का दूसरा चरण था। इनकी अब तक ९ कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं जिनमें सुकुमालस्वामीनो रास''[1] सबसे बड़ी रचना है। इसमें विभिन्न छन्दों में सुकुमाल स्वामी का चरित्र वर्णित है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। यद्यपि काव्य सर्गों में विभक्त नही है लेकिन विभिन्न भास छन्दों में विभक्त होने के कारण सर्गों में विभक्त नहीं होना खटकता नहीं है। रास की भाषा एवं वर्णन शैली अच्छी है। भाषा की दृष्टि में रचना गुजराती प्रभावित राजस्थानी भाषा में निबद्ध है।

ते देखी भयभीत हवी, नागश्री कहे तात।
कवण पातिग एणे कीया, परिपरि पामइ छे घात।

---

१. रास की एक प्रति महावीर भवन जयपुर के संग्रह में है।

तब ब्राह्मण कहे सुन्दरी सुणो तह्मो एणी बात ।
जिम आनंद बहु उपजे जग मांहे छे विख्यात ॥२॥

रास की रचना घोघा नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में प्रारम्भ की गयी थी और उसी नगर के आदिनाथ चैत्यालय में पूर्ण हुई थी । कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

श्रीमूलसंघ महिमा निलो हो, सरस्वती गच्छ सणगार ।
बलात्कार गण निर्मलो हो, श्री पद्मनन्दि भवतार रे जी० ॥२३॥

तेह पाटि युक गुणनिलो हो, श्री देवेन्द्रकीर्त्ति दातार ।
श्री विद्यानन्दि विद्यानिलो हो, तस पट्टोहर सार रे जी०॥२४॥

श्री मल्लिभूषण महिमानिनो हो, तेह कुल कमल विकास ।
भास्कर समपट तेह तणो हो, श्री लक्ष्मीचंद्र रिछरु वासरे जी० ॥२५॥

तस गछपति जगि जाणियो हो, गौतम सम अवतार ।
श्री अभयचन्द्र वखाणीये हो, ज्ञान तणो भंडार रे जीवडा ॥२६॥

तास शिष्य भणि रुवडो हो, रास कियो मे सार ।
सुकुमाल नो भावइ जट्ठो हो, सुणता पुण्य अपार रे जी० ॥२७॥

ख्याति पूजानि नवि कीयु हो, नवि कीयु कविताभिमान ।
कर्मक्षय कारणइ कीयु हो, पांमवा वलि रूडू ज्ञान रे जी० ॥२८॥

स्वर पदाक्षर व्यंजन हीनो हो, मइ कीयु होयि परमादि ।
साधु तम्हो सोधि लेना हो, क्षमितवि कर जो आदि रे जी० ॥२९॥

श्री घोघा नगर सोहामणू हो, श्रीसंघव से दातार ।
चैत्यालां दोइ भामणां हो, महोत्सव दिन दिन सार रे जी० ॥३०॥

कवि की अन्य कृतियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पीहरसासडा गीत,
२. वणियडा गीत
३. मीणारे गीत
४. अरहंत गीत
५. जिनवर वीनती
६. आदिजिन विनती
७. पद एवं गीत

९. भट्टारक अभयनन्दि

भट्टारक अभयचन्द्र के पश्चात् अभयनन्दि भट्टारक पद पर अभिषिक्त हुए। ये भी अपने गुरु के समान ही लोकप्रिय भट्टारक थे, शास्त्रों के ज्ञाता थे, विद्वान् थे और उपदेष्टा थे। साहित्य के प्रेमी थे। यद्यपि अभी तक उनकी कोई महत्त्वपूर्ण रचना नहीं उपलब्ध हो सकी है लेकिन सागवाड़ा, सूरत एवं राजस्थान एवं गुजरात के अन्य शास्त्र भण्डारों में संभवतः इनकी अन्य रचना भी मिल सके। एक गीत में इन्होंने अपना परिचय निम्न प्रकार किया है—

अभयचन्द्र वादेन्द्र इह........अनंत गुण निधान।
तास पाट प्रयोज प्रकासन, अभयनन्दि सुरि भाण।

अभयनंदी व्याख्यान करंता, अभेमति ये थल पासु।
चरित्र श्री वाई तणे उपदेशे ज्ञान कल्याणक गाउ ॥

उनके एक शिष्य संयमसागर ने इनके सम्बन्ध में दो गीत लिखे हैं। गीतों के अनुसार जालणपुर के प्रसिद्ध बघेरवाल श्रावक संघवी आसवा एवं संघवी [illegible]राम ने संवत् १६३० में इनको भट्टारक पद पर अभिषिक्त किया। वे गौर वर्ण एवं शुभ देह वाले यति थे—

कनक कांति शोभित तस गात, मधुर समांन सुवांणि जी।
मदन मान मर्दन पंचानन, भारती गच्छ सन्मान जी।

श्री अभयनन्दिसूरी पट्ट धुरंधर, सकल संघ जयकार जी।
सुमतिसागर तस पाय प्रणमें, निर्मल संयम धारी जी ॥१॥

१०. ब्रह्म जयराज

ब्रह्म जयराज भ० सुमतिकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं भ० गुणकीर्त्ति के शिष्य थे। संवत् १६३२ में भ० गुणकीर्त्ति का पट्टाभिषेक डूंगरपुर नगर में बड़े उत्साह के साथ किया गया था। गुरु छन्द[1] में इसी का वर्णन किया गया है। पट्टाभिषेक में देश के सभी प्रान्तों से श्रावक गण सम्मिलित हुए थे क्योंकि उस समय भ० सुमतिकीर्त्ति का देश में अच्छा सम्मान था।

संवत् सोल बत्रीसमि, वैशाख कृष्णा सुपक्ष।
दशमी सुर गुरु जाणिय, लगन लक्ष सुभ दक्ष।

---

१. इसकी प्रति महावीर भवन जयपुर के रजिस्टर संख्या ५ पृष्ठ १४५ पर लिखी हुई है।

सिद्दांसणरूपा तणि, विसार्या गुरु संत ।
श्री सुमतिकीर्त्ति सूरि रिंग भरी, ढाल्या कुंभ महंत ।

× × × ×

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र चरण सेवि नर नारि,
श्री गुणकीर्त्ति यतीद्रं पाप तापादिक हारी ।

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र ज्ञानदानादिक दायक,
श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र, चार संघाष्टक नायक ।

सकल यतीश्वर मंडणो, श्रीसुमतिकीर्त्ति पट्टोधरण ।
जयराज ब्रह्म एवं वदति श्रीसकलसंघ मंगल करण ।।

इति गुरु छन्द

११. सुमतिसागर

सुमतिसागर भ० अभयनन्दि के शिष्य थे । ये ब्रह्मचारी थे तथा अपने गुरु के संघ में ही रहा करते थे । अभयनन्दि के स्वर्गवास के पश्चात् ये भ० रत्नकीर्त्ति के संघ में रहने लगे । इन्होंने अभयनन्दि एवं रत्नकीर्त्ति दोनों भट्टारकों के स्तवन में गीत लिखे हैं । इनके एक गीत के अनुसार अभयनन्दि सं० १६३० में भट्टारक गादी पर बैठे थे । ये आगम काव्य, पुराण, नाटक एवं छंद शास्त्र के वेत्ता थे ।

संवत् सोलसा त्रिस संवच्छर, वैशाख सुदी त्रीज सार जी ।
अभयनन्दि गोर पाट थाप्या, रोहिणी नक्षत्र शनिवार जी ।।६।।
आगम काव्य पुराण सुलक्षण, तर्क न्याय गुरु जाणे जी ।
छंद नाटिक पिंगल सिद्धान्त, पृथक पृथक बखाणे जी ।।७।।

सुमतिसागर अच्छे कवि थे । इनकी अब तक १० लघु रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. साधरमी गीत
२-३ हरियाल वेलि
४-५ रत्नकीर्त्ति गीत
६. अभयनन्दि गीत
७. गणधर वीनती
८. अझारा पार्श्वनाथ गीत
९. नेमिवंदना
१०. गीत

उक्त सभी रचनायें काव्य एवं भाषा की दृष्टि से अच्छी कृतियां हैं एक उदाहरण देखिये—

ऊजल पूनिम चंद्र सम, जस राजीमती जगि होई।
ऊजलु सोहइ अवला, रूप रामा जोइ।

ऊजल मुखवर भामिनी, खाय मुख तंवोल।
ऊजल केवल न्यान जानूं, जीव भव कलोल।

ऊजलु रुपानु भल्लु, कटि सूत्र राजुल धार।
ऊजल दर्शन पालती, दुख नास जय सुखकार।

नेमिवंदना

समय—सुमतिसागर ने अभयनन्दि एवं रत्नकीर्त्ति दोनों का शासन काल देखा था इसलिये इनका समय संभवत; १६०० से १६६५ तक होना चाहिए।

१२. ब्रह्म गणेश

गणेश ने तीन सन्तों का भ० रत्नकीर्त्ति, भ० कुमुदचन्द व भ० अभयचन्द का शासनकाल देखा था। ये तीनों ही भट्टारकों के प्रिय शिष्य थे इसलिये इन्होंने भी इन भट्टारकों के स्तवन के रूप में पर्याप्त गीत लिखे हैं। वास्तव में ब्रह्म गणेश जैसे साहित्यिकों ने इतिहास को नया मोड दिया और उनमें अपने गुरुजनों का परिचय प्रस्तुत करके एक बड़ी भारी कमी को पूरा किया। ब्र० गणेश के अब तक करीब २० गीत एवं पद प्राप्त हो चुके हैं और सभी पद एवं गीत इन्हीं सन्तों की प्रशंसा में लिखे गये हैं। दो पद 'तेजाबाई' की प्रशंसा में भी लिखे हैं। तेजाबाई उस समय की अच्छी श्राविका थी तथा इन सन्तों को संघ निकालने में विशेष सहायता देती थी।

१३. संयमसागर

ये भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु को साहित्य निर्माण में योग दिया करते थे। ये स्वयं भी कवि थे। इनके अब तक कितने ही पद एवं गीत उपलब्ध हो चुके हैं। इनमें नेमिगीत, शीतलनाथगीत, गुणावलि गीत के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। अपने अन्य साथियों के समान इन्होंने भी कुमुदचन्द्र के स्तवन एवं प्रशंसा के रूप में गीत एवं पद लिखे हैं। ये सभी गीत एवं पद इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

१. भ० कुमुदचन्द्र गीत
२. पद (आवो साहेलडीरे सहू मिलि संगे)
३. ,, (सकल जिन प्रणमी भारती समरी)

४. नेमिगीत
५. शीतलनाथ गीत
६. गीत।
७. गुरावली गीत

१४. त्रिभुवनकीर्त्ति

त्रिभुवनकीर्त्ति भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। उदयसेन रामसेनान्वय तथा सोमकीर्त्ति कमलकीर्त्ति तथा यशःकीर्त्ति की परम्परा में से थे। इनकी अब तक जीवंधररास एवं जम्बूस्वामीरास ये दो रचनायें मिली हैं। जीवंधररास को कवि ने कल्पवल्ली नगर में संवत् १६०६ में समाप्त किया था। इस सम्बन्ध में ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति देखिये—

नंदीयउ गछ मझार, राम सेनान्वयि हवा।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ ।।५०।।
तेह पाटि प्रसिद्ध, चारित्र भार धुरंधुरो।
वादीय भंजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ।।५१।।
प्रणमीय हो गुरु पाय, त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ।
देयो तह्म गुणग्राम, अनेरो कांई वांछा नहीं ।।५२।।
कल्पवल्ली मझार, संवत् सोल छहोत्तरि।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि हयो संघह घरि ।।५३।।

दुहा

जीवंधर मुनि तप करी, पुहुतु सिव पद ठाम।
त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ, देयो तह्म गुणग्राम ।।६४।।
।।व।।

उक्त रास की प्रति जयपुर के तेरहपंथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भंडार के एक गुटके में संग्रहीत है। रास गुटके के पत्र १२९ से १५१ तक संग्रहीत है। प्रत्येक पत्र में १९ पंक्तियां तथा प्रति पंक्ति में ३२ अक्षर हैं। प्रति संवत १६४३ पौष वदि ११ के दिन आसपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय में लिखी गयी थी। प्रति शुद्ध एवं स्पष्ट है।

विषय—

प्रस्तुत रास में जीवंधर का चरित वर्णित है। जो पूर्णतः रोमाञ्चक घटनाओं

से युक्त है। जीवन्धर अन्त में मुनि बनकर घोर तपस्या करते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं।

भाषा—

रचना की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। रास में दूहा, चौपई, वस्तुबन्ध, छंद ढाल एवं रागों का प्रयोग किया गया है।

जम्बूस्वामीरास त्रिभुवनकीर्ति की दूसरी रचना है। कवि ने इसे संवत् १६२५ में जवाछनगर के शान्तिनाथ चैत्यालय में पूर्ण किया था जैसा कि निम्न अन्तिम पद्य में दिया हुआ है—

संवत् सोल पंचवीसि जवाछ नयर मझार।
भुवन शांति जिनवर तरिण, रच्यु रास मनोहार ।।१६।।

प्रस्तुत रास भी उसी गुटके के १६२ से १९० तक पत्रों में लिपि वद्ध है।

विषय—

रास में जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है ये महावीर स्वामी के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली हैं। इनका पूरा जीवन आकर्षक है। ये श्रेष्ठि पुत्र थे अपार वैभव के स्वामी एवं चार सुन्दर स्त्रियों के पति थे। माता ने जितना अधिक संसार में इन्हें फंसाना चाहा उतना ही ये संसार से विरक्त होते गये और अन्त में एक दिन सबको छोड कर मुनि हो गये तथा घोर तपस्या करके निर्वाण लाभ लिया।

भाषा—

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। वर्णन शैली अच्छी एवं प्रभावक है। राजग्रही का वर्णन देखिये—

देश मध्य मनोहर ग्राम, नगर राजग्रह उत्तम ठाम।
गढ मढ मन्दिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नहि पार ।।१३।।

धनवंत लोक दीसि तिहां घणा, सज्जन लोक तणी नहीं मणा।
दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर उचट नहीं तिहां ताम ।।१४।।

घरि घरि वाजित वाजि भंग, धिर धिर नारी धरि मनि रंग।
घरि घरि उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ।।१५।।

१५. भट्टारक रत्नचन्द (प्रथम)

ये भ० सकलचन्द्र के शिष्य थे। इनकी अभी एक रचना 'चौबीसी' प्राप्त हुई है जो संवत् १६७६ की रचना है। इसमें २४ तीर्थंकर का गुणानुवाद है तथा अन्तिम २५ वें पद्य में अपना परिचय दिया हुआ है। रचना सामान्यतः अच्छी है—

अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है:—

संवत् सोल छोत्तरे कवित्त रच्या संघारे,
पंचमीशु शुक्रवारे ज्येष्ठ वदि जान रे।

मूलसंघ गुणचन्द्र जिनेंन्द्र सकलचन्द्र,
भट्टारक रत्नचन्द्र बुद्धि गछ भांणरे।

त्रिपुरो पुरो पि राज स्वतो ने तो अम्रराज,
भामोस्यो मोलखराज त्रिपुरो वखाणरे।

पीछो छाजु ताराचदं, छीतरवचंद,
ताउ खेतो देवचंद एहु की कल्याण रे ॥२५॥

१६. ब्रह्म अजित

ब्रह्म अजित संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ये गोलशृंगार जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह एवं माता का नाम पीथा था। ब्रह्म अजित भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे।[1] ये ब्रह्मचारी थे और इसी अवस्था में रहते हुए इन्होंने भृगुकच्छपुर (भडौच) के नेमिनाथ चैत्यालय में हनुमच्चरित की समाप्ति की थी। इस चरित की एक प्राचीन प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में संग्रहीत है। हनुमच्चरित में १२ सर्ग हैं और यह अपने समय का काफी लोक प्रिय काव्य रहा है।

ब्रह्म अजित एक हिन्दी रचना 'हंसागीत' भी प्राप्त हुई है। यह एक उपदेशात्मक अथवा शिक्षाप्रद कृति है जिसमें 'हंस' (आत्मा) को संबोधित करते हुए ३७ पद्य हैं। गीत की समाप्ति निम्न प्रकार की है—

---

१. सुरेंद्रकीर्त्तिशिष्यविद्यानंद्यनंगमदनैकपंडितः कलाधर।
स्तदीय देशनामवाप्यबोधमाश्रित्तो जितेंद्रियस्य भक्तितः ॥

रास हंस तिलक एह, जो भावइ दृढ चित्त रे हंसा ।
श्री विद्यानंदि उपदेसिउ, बोलि ब्रह्म अजित रे हंसा ॥३७॥

हंसा तू करि संयम, जम न पडि संसार रे हंसा ॥

ब्रह्म अजित १७ वीं शताब्दि के विद्वान् सन्त थे ।

१७. आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति

ये १७ वीं शताब्दि के सन्त थे । भ० वादिभूषण एवं भ० सकलभूषण दोनों ही सन्तों के ये शिष्य थे और दोनों की ही इन पर विशेष कृपा थी । एक बार वादिभूषण के प्रिय शिष्य ब्रह्म नेमिदास ने जब इनसे 'सगरप्रबन्ध' लिखने की प्रार्थना की तो इन्होंने उनकी इच्छानुसार 'सगर प्रबन्ध' कृति को निबद्ध किया । प्रबन्ध का रचनाकाल सं० १६४६ आसोज सुदी दशमी है । यह कवि की एक अच्छी रचना है । आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति की ही दूसरी रचना 'तीर्थंकर चौवीसना छप्पय' है । इसमें कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई परिचय नहीं दिया है । दोनों ही कृतियां उदयपुर के शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत है ।

गोलशृंगार वंशे नभसि दिनमणि र्वीरसिंहो विपश्चित् ।
भार्या पीथा प्रतीता तनुरुहविदितो ब्रह्म दीक्षाश्रितोऽभूत ॥

२. भट्टारक विद्यानन्दि बलात्कारगण—सूरत शाखा के भट्टारक थे ।

भट्टारक सम्प्रदाय पत्र सं० १९४

तेह भवन मांहि रह्या चोमास, महा महोत्सव पूगी आस ।
श्री वादिभूषण देशनां सुधा पांन, कीरति शुभमना ॥१९॥

शिष्य ब्रह्म नेमिदासज तणी, विनय प्रार्थना देखी घणी ।
सूरि नरेन्द्रकीरति शुभ रूप, सागर प्रबन्ध रचि रस कूप ॥२०॥

मूलसंघ मंडन मुनिराय, कलिकालि जे गणधर पाय ।
सुमतिकीरति गछपति अवदीत,, तस गुरू बोधव जग विख्यात ॥२१॥

सकलभूषण सूरीश्वर जेह, कलि मांहि जंगम तीरथ तेह ॥
ते दोए गुरु पद कंज मन धरि, नरेन्द्रकीरति शुभ रचना करी ॥२२॥

संवत सोलाछितालि सार, आसोज सुदि दशमी बुधवार ।
सगर प्रबन्ध रच्यो मनरंग, चिर नंदो जा सायर गंग ॥२३॥

१८. कल्याण कीर्त्ति

कल्याणकीर्त्ति १७ वीं शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त देवकीर्ति मुनि के शिष्य थे। कल्याणकीर्त्ति 'भीलोड़ा ग्राम' के निवासी थे। वहां एक विशाल जैन मन्दिर था। जिसके ५२ शिखर थे और उन पर स्वर्ण कलश सुशोभित थे। मन्दिर के प्रांगण में एक विशाल मानस्तंभ था। इसी मन्दिर में बैठकर कवि ने चारुदत्त प्रबन्ध की रचना की थी। रचना संवत् १६९२ आसोज शुक्ला पंचमी को समाप्त हुई थी। कवि ने उक्त वर्णन निम्न प्रकार किया है।

चारुदत्त राजानि पुन्यि भट्टारक सुखकर सुखकर सोभागि अति विचक्षण।
वादिवारण केशरी भट्टारक श्री पद्मनंदि चरण रज सेवि हारि ॥१०॥

ए सहु रे गछ नायक प्रणमि करि, देवकीरति मुनि निज गुरु मन्य धरी।
धरि चित्त चरणे नमि 'कल्याण कीरति' इम भणि।
चारुदत्त कुमर प्रवध रचना रचिमि आदर घणि ॥११॥

राय देश मध्यि रे भिलोडउ वंसि, निज रचनासि रे हरिपुरिनि हंसी।
हस अमर कुमारनि, तिहां धनपति वित्त विलसए।
प्राशाद प्रतिमा जिन मति करि सुकृत सांचए ॥१२॥

सुकृत संचिरे व्रत बहु आचरि, दान महोछव रे जिन पूजा करि।
करि उछव गांन गंध्रव चंद्र जिन प्रसादए।
वावन सिखर सोहामणां ध्वज कनक कलश विसालए ॥१३॥

मंडप मध्यि रे समवसरण सोहि, श्री जिनबिंब रे मनोहर मन मोहि।
मोहि जन मन अति उन्नत मानस्थंभ विसालए।
तिहां विजयभद्र विख्यात सुन्दर जिन सासन रक्ष पायलये ॥१४॥

तिहां चोमासि के रचना करि सोलवांगुणिरे :१६९२: आसो अनुसरि।
अनुसरि आसो शुक्ल पंचमी श्री गुरुचरण हृदयधरि।
कल्याणकीरति कहि सज्जन भणो सुणो आदर करि ॥१५॥

दूहा

आदर ब्रह्म संघजीतणि विनयसहित सुखकार।
ते देखि चारुदत्तनो प्रवंध रच्यो मनोहर ॥१॥

कवि ने रचना का नाम 'चारुदत्तरास' भी दिया है। इसकी एक प्रति

जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। प्रति संवत् १७३३ की लिखी हुई है।

कवि की एक और रचना 'लघु बाहुबलि वेल' तथा कुछ स्फुट पद भी मिले हैं। इसमें कवि ने अपने गुरु के रूप में शान्तिदास के नाम का उल्लेख किया है। यह रचना भी अच्छी है तथा इसमें त्रोटक छन्द का उपयोग हुआ है। रचना का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

भरतेस्वर आवीया नाम्युं निज वर शीस जी।
स्तवन करी इम जंपए, हूं किंकर तु ईस जी।

ईश तुमनि छोंडी राज मझनि आपींड।
इम कहीइ मदिर गया सुन्दर ज्ञान भुवने व्यापीउ।

श्री कल्याणकीरति सोममूरति चरण सेवक इम भणि।
शांतिदास स्वामी बाहुबलि सरण राखु मझ तह्म तणि ॥९॥

१९. भट्टारक महीचन्द्र

भट्टारक महीचन्द्र नाम के तीन भट्टारक हो चुके हैं। इनमें से प्रथम विशालकीर्त्ति के शिष्य थे जिनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती हैं। दूसरे महीचंद्र भट्टारक वादिचन्द्र के शिष्य थे तथा तीसरे भ० सहस्रकीर्त्ति के शिष्य थे। लवांकुश छप्पय के कवि भी संभवतः वादिचन्द्र के ही शिष्य थे। 'नेमिनाथ समवशरण विधि' उदयपुर के खन्डेलवाल मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है उसमें उन्होंने अपने को भ० वादिचन्द्र का शिष्य लिखा है।

श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छ जाणो,
बलातकार गण वखाणों।

श्री वादिचन्द्र मने आणों,
श्री नेमीश्वर चरण नमेसूं ॥३२॥

तस पाटे महीचन्द्र गुरु थाप्यो,
देश विदेश जग बहु व्याप्यो।
श्री नेमीश्वर चरण नमेसूं ॥३३॥

उक्त रचना के अतिरिक्त आपकी 'आदिनाथविनति' 'आदित्यव्रत कथा' आदि रचनायें और भी उपलब्ध होती हैं।

'लवांकुश छप्पय' कवि की सबसे बड़ी रचना है। इसमें छप्पय छन्द के ७० पद्य हैं। जिनमें राम के पुत्र लव एवं कुश की जीवन गाथा का वर्णन है। भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती एवं मराठी का प्रभाव है। रचना साहित्यिक है तथा उसमें घटनाओं का अच्छा वर्णन मिलता है। इसे हम खन्डकाव्य का रूप दे सकते हैं। कथा राम के लंका विजय एवं अयोध्या आगमन के वाद से प्रारम्भ होती है। प्रथम पद्य में कवि ने पूर्व कथा का सारांश निम्न प्रकार दिया है।

के अक्षौहनि कटक मेलि रघुपति रण चल्यो।
रावण रण भूमीय पड्यो, सायर जल छल्यो।

जय निसान बजाय जानकी निज घर आंणि।
दशरथ सुत कीरति भुवनत्रय मांहि बखानी।

राम लक्ष्मण एम जीतिने, नयरी अयोध्या आवया।
महीचन्द्र कहे फल पुन्य थिएडा, वहु परे वामया ॥१॥

एक दिन राम सीता बैठे हुए विनोद पूर्ण बातें कर रहे थे। इतने में सीता ने अपने स्वप्न का फल राम से पूछा। इसके उत्तर में राम ने उसके दो पुत्र होंगे, ऐसी भविष्यवाणी की। कुछ दिनों बाद सीता का दाहिना नेत्र फड़कने लगा। इससे उन्हें वहुत चिन्ता हुई क्योंकि यही नेत्र पहिले जब उन्हें राज्यभिषेक के स्थान पर बनवास मिला था तब भी फड़का था। एक दिन प्रजा के प्रतिनिधि ने आकर राम के सामने सीता के सम्वन्ध में नगर में जो चर्चा थी उसके विषय में निवेदन किया। इसको सुन कर लक्ष्मण को वड़ा क्रोध आया और उसने तलवार निकाल ली लेकिन राम ने बड़े ही धैर्य के साथ सारी बातों को सुनकर निम्न निर्णय किया।

रामें वार्यो सदा रहो भ्राता तह्मे में छाना।
केहनो नहि छे वांकलोक अपवाद जनाह्ला।

सावु हुवु लोक नहीं कोई निश्चय जांने।
यद्वा तद्वा कर्यु तेज खल जन सहु मानें।

एमविचार करी तदा निज अपवाद निवारवा।
सेनापति रथ जोड़िने लइ जावो वन घालवा ॥७॥

सीता घनघोर वन में अकेली छोड़ दी गई। वह रोई चिल्लाई लेकिन किसी ने कुछ न सुना। इतने में पुंडरीक युवराज 'वज्रसंघ' वहां आया। सीता ने अपना परिचय पूछने पर निम्न शब्दों में नम्र निवेदन किया।

सीता कहे सुन भ्रात तात तो जनकज हमारो।
भामंडल मुझ भ्रात दियर लक्ष्मण भट सारो।

तेह तणो वड भ्रात नाथ ते मुझनो जानो।
जगमां जे विख्यात तेहनो माननी मानो।

एहवु वचन सांभली कहे, वैहीन आव जु मुझ परे।
वहु महोत्सव आनंद करी सीता ने आने घरे ॥१०॥

कुछ दिनों के बाद सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम लव एवं कुश रखा गया। वे सूर्य एवं चन्द्रमा के समान थे। उन्होंने विद्याध्ययन एवं शास्त्र संचालन दोनों की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन वे बैठे हुए थे कि नारद ऋषि का वहां आगमन हुआ। लव कुश द्वारा राम लक्ष्मण का वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट करने पर नारद ने निम्न शब्दों में वर्णन किया।

कोण गांम कुण ठाम पूज्यते कहो मुझ आगल।
तेव रुपि कहें छे वात देश नामे छे कोशल।

नगर अयोध्या धनीवंश इश्वाक मनोहर।
राज्य करे दशरथ चार सुत तेहना सुन्दर।

राज्य आप्पु जव भरत ने वनवास जेथ पोरा मने।
सती सीतल लक्ष्मण समो सोल वरस दंडक वने ॥२५॥

तव दशवदनो हरी रांमनी रांणि सीता।
युद्ध करीस जथया राम लक्ष्मण दो भ्राता ॥

हणुमंत सुग्रीव घणा सहकारी कीधा।
के विद्याधर तना वनी ते साथे लीधा ॥

युद्ध करी रावण हणी सीता लई घर आवया।
महीचन्द्र कहे तेह पुन्य थी जगमांहि जस पामया ॥२६॥

सीता परवर रही तेह थी थयो अपवादह।
रामे मूकी वने कीवो ते महा प्रमादह ॥

रोदन करे विलाप एकली जंगल जेहवे।
वज्रजंघ नृप एह पुन्य थि आव्यो ते हवे ॥

भगनि करि घर लाव्यो तेहथि तुम्ह दो सुत थया।
भाग्ये एह पद पामया, वज्रजंघ पद प्रणमया ॥२७॥

बिना अपराध ही राम द्वारा सीता को छोड़ देने की बात सुनकर लव कुश बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने राम से युद्ध करने की घोषणा कर दी। सीता ने उन्हें बहुत समझाया कि राम लक्ष्मण बड़े भारी योद्धा हैं, उनके साथ हनुमान, सुग्रीव एवं विभीषण जैसे वीर हैं, उन्होंने रावण जैसे महापराक्रमी योद्धा को मार दिया है इसलिये उनसे युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन उन्होंने माता की एक बात न सुनी और युद्ध की तैयारी कर दी। लाखों सेना लेकर वे अयोध्या की ओर चले। साकेत नगरी के पास जाने पर पहिले उन्होंने राम के दरबार में अपने एक दूत को भेजा। लक्ष्मण और दूत में खूब वादविवाद हुआ। कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है। इसका एक वर्णन देखिये।

दूत बात सांभलि, कोपे कंप्यो ते लक्ष्मण,
एह बल आव्यो कोण, लेखवे नहिं हमने पण।
रावण मय मार्यो तेह थिये कुंण अधिको,
वज्रजंघते कोण कहे दूत ते छे को॥
दूत कहे रे सांभलो, लव कुश नो मातुलो,
जगमां जेहतो नाम छे जाने नहिं केम वातुलो॥३६॥

दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ लेकिन लक्ष्मण की सेना उन पर विजय प्राप्त न कर सकी। अन्त में लक्ष्मण ने चक्र आयुध चलाया लेकिन वह भी उनकी प्रदक्षिणा देकर वापिस लक्ष्मण के पास ही आ गया। इतने में ही वहां नारद ऋषि आ गये और उन्होंने आपसी गलत फहमी को दूर कर दिया। फिर तो लव कुश का अयोध्या में शानदार स्वागत हुआ और सीता के चरित्र की अपूर्व प्रशंसा होने लगी। विभीषण आदि सीता को लेने गये। सीता उन्हें देखकर पहिले तो बहुत क्रोधित हुई लेकिन क्षमा मांगने के पश्चात् उन्होंने उनके साथ अयोध्या लौटने की स्वीकृति दे दी। अयोध्या आने पर सीता को राम के आदेशानुसार फिर अग्नि परीक्षा देनी पड़ी जिसमें वह पूर्ण सफल हुई। आखिर राम ने सीता से क्षमा मांगी और उससे घर चलने के लिये कहा लेकिन सीता ने साध्वी बनने का अपना निश्चय प्रकट किया और सत्यभूषण केवली के समीप आर्यिका बन गई तथा तपस्या करके स्वर्ग में चली गई। राम ने भी निर्वाण प्राप्त किया तथा अन्त में लव और कुश ने भी मोक्ष लाभ किया।

भाषा

महावीरचरित्र की रचना को हम राजस्थानी [illegible] भाषा की एक कृति कह सकते हैं [illegible] की प्रमुख रचना [illegible] [illegible] की समान है-इसमें [illegible]

शब्दों का प्रयोग हुआ है। यद्यपि छप्पय का मुख्य रस शान्त रस है लेकिन आवे से अधिक छंद वीर रस प्रधान हैं। शब्दो को अधिक प्रभावशील बनाने के लिये चल्यो, छल्यो, पामया, लाज्या, आव्यो, पाव्यो, पाड्या, चल्यो, नम्यां, उपसम्यां, वोल्या आदि क्रियाओं का प्रयोग हुआ है। "तुम" "हम" के स्थान पर तुह्म, अह्म का प्रयोग करना कवि को प्रिय है। डिंगल शैली के कुछ पद्य निम्न प्रकार।

रण निसाण वजाय सकल सैन्या तव मेली।
चढ्यो दिवाजे करि कटक करि दश दिश भेजी॥
हस्ति तुरंग मसूर मार करि शेषज शंको।
खडगादिक हथियार देखि रवि शशि पण कंप्यो॥
पृथ्वी आंदोलित थई छत्र चमर रवि छादयो।
पृथु राजा ने चरे कह्यो, व्याघ्र राम तवे आवयो॥१५॥

× × × × ×

रूंध्या के असवार हणीगय वरनि घंटा।
रथ की वाच कूचर हणी वली हयनी थटा॥
लव अंकुश युद्ध देख दशों दिशि नाठा जावे।
पृथुराजा वहु वढ़े लोहि पण जुगति न पावे॥
वज्र जंघ नृप देखतों वल साये भागो यदा।
कुल सील हीन केतो जिते पृथु रा पगे पड्यो तदा॥२ ॥

२०. ब्रह्म कपूरचन्द

ब्रह्म कपूरचन्द मुनि गुणचन्द्र के शिष्य थे। ये १७ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण के विद्वान् थे। अब तक इनके पार्श्वनाथरास एवं कुछ हिंदी पद उपलब्ध हुये हैं। इन्होंने रास के अन्त में जो परिचय दिया है, उसमें अपनी गुरु-परम्परा के अतिरिक्त आनन्दपुर नगर का उल्लेख किया है, जिसके राजा जसवन्तसिंह थे तथा जो राठौड जाति के शिरोमणि थे। नगर में ३६ जातियां सुखपूर्वक निवास करतीं थी। उसी नगर में ऊंचे-ऊंचे जैन मन्दिर थे। उनमें एक पार्श्वनाथ का मन्दिर था। सम्भवतः उसी मन्दिर में बैठकर कवि ने अपने इस रास की रचना की थी।

पार्श्वनाथरास की हस्तलिखित प्रति मालपुरा, जिला टोंक (राजस्थान) के चौधरियों के दि० जैन मन्दिर के शास्त्र-भण्डार में उपलब्ध हुई है। यह रचना एक गुटके में लिखी हुई है, जो उसके पत्र १४ से ३२ तक पूर्ण होती है। रचना राजस्थानी-भाषा में निबद्ध है, जिसमें १६६ पद्य है। "रास" की प्रतिलिपि बाई

रत्नाई की शिष्या श्राविका पारवती गंगवाल ने संवत् १७२२ मिती जेठ बुदी ५ को समाप्त की थी।

श्रीमूल जी संघ बहु सरस्वती गछि।
भयौ जी मुनिवर बहु चारित स्वछ ॥

तहां श्री नेमचन्द गछपति भयो।
तास कै पाट जिम सौमे जी भाण ॥

श्री जसकीरति मुनिपति भयो।
जाणौ जी तर्क अति शास्त्र पुराण ॥श्री०॥१५९॥

तास को शिष्य मुनि अधिक (प्रवीन)।
पंच महाव्रत स्यो नित लीन ॥

तेरह विधि चारित धरै।
व्यंजन कमल विकासन चन्द ॥

ज्ञान गी इम जिसौ अवि............ले।
मुनिवर प्रगट सुमि श्री गुणचन्द ॥श्री०॥१६०॥

तासु तणु सिषि पंडित कपुर जी चन्द।
कीयो रास चिति धरिवि आनंद ॥

जिणगुण कहु मुझ अल्प जी मति।
जसि विधि देख्या जी शास्त्र-पुराण ॥

बुधजन देखि को मति हसै।
तैसी जी विधि में कीयौ जी वखाण ॥श्री॥ १६१॥

सोलासै सत्ताणवै मासि वैसाखि।
पंचमी तिथि सुभ उजल पाखि ॥

नाम नक्षत्र आद्रा भलो।
वार वृहस्पति अधिक प्रधान ॥

रास कीयो वामा सुत तणो।
स्वामी जी पारसनाथ के थान ॥श्री०॥१६२॥

अहो देस को राजा जी जाति राठोड।
सकल जी छत्री याके सिरिमोड ॥

नाम जसवंतसिंघ तसु तणो
तास आनंदपुर नगर प्रधान ।।

पोरिण छत्तीस लीला करै ।
सोभै जी जैसे हो इन्द्र विमान ।।श्री०।।१६३।।

सोभी जी तहां जीरण भवरण उत्तंग ।
मंडप वेदी जी अधिक अभंग ।।

जिण तणा विंव सोभै भला ।
जो नर वंदे मन वचकाइ ।।

दुख कलेस न संचरे ।
तीस घरा नव निवि थिति पाइ ।।श्री०।।१६४।।

इस रास की रचना संवत् १६६७, वैशाख सुदी ५ के दिन समाप्त हुई थी, जैसा कि १६२ वें पद्य में उल्लेख आया है।

रास में पार्श्वनाथ के जीवन का पद्य-कथा के रूप में वर्णन है। कमठ ने पार्श्वनाथ पर क्यों उपसर्ग किया था, इसका कारण बताने के लिए कवि ने कमठ के पूर्व-भव का भी वर्णन कर दिया है। कथा में कोई चमत्कार नहीं है। कवि को उसे अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना था सम्भवतः इसीलिए उसने किसी घटना का विशेष वर्णन नहीं किया।

पार्श्वनाथ के जन्म के समय माता-पिता द्वारा उत्सव किया गया। मनुष्यों ने ही नहीं स्वर्ग से आये हुये देवताओं ने भी जन्मोत्सव मनाया—

अहो नगर में लोक अति करे जी उछाह ।
खर्चे जी द्रव्य मनि अधिक उमाह ।।

घरि घरि मंगल अति घरणा,
घरि घरि गावे जी गीत सुचार ।।

सव जन अधिक आनंदिया ।
घनि जननी तसु जिरण अवतार ।।श्री०।।१२४।।

पार्श्वनाथ जब बालक ही थे। तभी एक दिन वन-क्रीडा के लिए अपने साथियों के साथ गये। वन में जाने पर देखा कि एक तपस्वी पंचाग्नि तप तप रहा है और अपनी देह को सुखा रहा है। बालक पार्श्व ने, जो मति, श्रुत एवं अवधि-ज्ञान के धारी थे, कहा यह तपस्वी मिथ्याज्ञान

के वशीभूत होकर तप कर रहा है। तपस्वी के पास जाकर कुमार ने कहा, तपस्वी महाराज आपने सम्यक्-तप एवं मिथ्या तप के भेद को जाने बिना ही तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया है। इस लकड़ी को आप जला तो रहे हैं लेकिन इसमें एक सर्प का जोड़ा अन्दर ही अन्दर जल रहा है। तपस्वी यह सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काट दी। लकड़ी काटने पर उसमें से आधे जले हुए एवं सिसकते हुए सर्प एवं सर्पिणी निकले। कवि ने इसका सरल भाषा में वर्णन किया है—

सुणि विरतांत बोलियो जी कुमार।
एहु तपयुगी नवि तारणहार।।
एहु अज्ञान तप निति करै।।
सुणि तहां तापसी बोलियो एम।।
चित में कोध्र उपनो घणो।।
कहो जी अज्ञान तप हम तणो केम ।।श्री०।।१३९।।
सुणि जिणवर तहां बोलियो जाणि।
लोक तिथि जाणों जी अवधि प्रमाणि ।।

सुणि रे अज्ञानी हो तापसी।
वलै छे जी काष्ट मांक सर्प्पणी सर्प।
ते तो जी भेद जाण्यो नहीं।
कर यो जी वृथा मन मैं तुम्ह दर्प ।।श्री०।।१४०।।
करि अति कोप करि ग्रहो जी कुठार।
काठ तहां छेदि कीयो त्रिणु चार।
सर्पणी सर्प तहां निसर्यो।
अर्ध जी दग्ध तहां भयो जी सरीर ।।
आकुला व्याकुला बहु करै।
करि कृपा भाव जीणवर वरवीर ।।श्री०।।१४१।।

पार्श्वकुमार के यौवन प्राप्त करने पर माता-पिता ने उनसे विवाह करने का आग्रह किया, लेकिन उन्हें तो आत्मकल्याण अभीष्ट था, इसलिए वे क्यों इस चक्कर में फंसते। आखिर उन्होंने जिन-दीक्षा ग्रहण करली और मुनि हो गये। एक दिन जब वे ध्यानमग्न थे, संयोगवश उधर से ही वह देव भी विमान से जा

रहा था। पार्श्व को तपस्या करते हुए देखकर उससे पूर्व-भव का वैर स्मरण हो आया और उसने बदला लेने की दृष्टि से मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ कर दी। वे सर्प-सर्पिणों, जिन्हें बाल्यावस्था में पार्श्वकुमार ने बचाने का प्रयत्न किया था, स्वर्ग में देव-देवी हो गये थे। उन्होंने जब पार्श्व पर उपसर्ग देखा, तब ध्यानस्थ पार्श्वनाथ पर सर्प का रूप धारण कर अपने फरण फैला दिये। कवि ने इसका संक्षिप्त वर्णन किया किया है—

वन में जी आइ धर्‌यो जिरण (ध्यान)।
थम्यौ जी गगनि सुर तरणो जी विमान॥

पूरव रिपु अधिक तहां कोपयो।
करे जी उपसर्ग जिरण नै बहु आइ॥

की वृष्टि तहां अति करै।
तहां कामनी सहित आयो अहिराइ॥श्री०॥१५३॥

वेगि टाल्या उपसर्ग अस (जान)।
जिरण जी ने उपनो केवलज्ञान॥

२१. हर्षकीर्ति

हर्षकीर्त्ति १७ वीं शताब्दि के कवि थे। राजस्थान इनका प्रमुख क्षेत्र था। इस प्रदेश में स्थान स्थान पर विहार करके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जाग्रति उत्पन्न किया करते थे। हिन्दी के ये अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी चतुर्गति वेलि, नेमिनाथ राजुल गीत, नेमीश्वरगीत, मोरडा, कर्महिंडोलना, की भाषा छहलेश्याकवित्त, आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। इन सभी कृतियों राजस्थानी है। इनमें काव्यगत सभी गुण विद्यमान है। ये कविवर बनारसीदास के समकालीन थे। चतुर्गति वेलि को इन्होंने संवत् १६८३ में समाप्त किया था। कवि की कृतियां राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में अच्छी संख्या में मिलती हैं जो इनकी लोकाप्रियता का द्योतक है।

२२. भ० सकलभूषण

सकलभूषण भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य थे तथा भट्टारक सुमतिकीर्त्ति के गुरु भ्राता थे। इन्होंने संवत् १६२७ में उपदेशरत्नमाला की रचना की थी जो संस्कृत की अच्छी रचना मानी जाती है। भट्टारक शुभचन्द्र को इन्होंने पान्डवपुराण एवं करकंडुचरित्र की रचना में पूर्ण सहयोग दिया था जिसका शुभचन्द्र ने उक्त,

ग्रन्थों में वर्णन किया है। अभी तक इन्होंने हिन्दी में क्या क्या रचनायें लिखी थी, इसका कोई उल्लेख नहीं मिला था, लेकिन आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर के एक गुटके में इनकी लघु रचना 'सुदर्शन गीत,' 'नारी गीत' एवं एक पद उपलब्ध हुये हैं। सुदर्शनगीत में सेठ सुदर्शन के चरित्र की प्रशंसा का गई है। नारी गीत में स्त्री जाति से संसार में विशेष अनुराग नहीं करने का परामर्श दिया गया है। सकलभूषण की भाषा पर गुजराती का प्रभाव है। रचनाएं अच्छी हैं एवं प्रथम बार हिन्दी जगत के सामने आ रही हैं।

२३. मुनि राजचन्द्र

राजचन्द्र मुनि थे लेकिन ये किसी भट्टारक के शिष्य थे अथवा स्वतन्त्र रूप से विहार करते थे इसकी अभी कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। ये १७वीं शताब्दि के विद्वान थे । इनकी अभी तक एक रचना 'चंपावती सील कल्याणक' ही उपलब्ध हुई है जो संवत् १६८४ में समाप्त हुई थी। इस कृति की एक प्रति दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। रचना में १३० पद्य हैं। इसके अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार है—

सुविचार धरी तप करि, ते संसार समुद्र उत्तरि।
नरनारी सांभलि जे रास, ते सुख पांमि स्वर्ग निवास ॥१२९॥

संवत सोल चुरासीयि एह, करो प्रबन्ध श्रावण वदि तेह।
तेरस दिन आदित्य सुद्ध वेलावही, मुनि राजचंद्र कहि हरखज लहि ॥१३०॥

इति चंपावती सील कल्याणक समाप्त ॥

२४. ब्र० धर्मसागर

ये भ० अभयचन्द्र (द्वितीय) के शिष्य थे तथा कवि के साथ साथ संगीतज्ञ भी थे। अपने गुरू के साथ रहते और विहार के अवसर पर उनका विभिन्न गीतों के द्वारा प्रशंसा एवं स्तवन किया करते। अब तक इनके ११ से अधिक गीत उपलब्ध हो चुके हैं। जो मुख्यतः नेमिनाथ एवं भ० अभयचन्द्र के स्तवन में लिखे गये हैं। नेमि एवं राजुल के गीतों में राजुल के विरह एवं सुन्दरता का अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिये—

दूखडा लोउ रे ताहरा नामनां; वलि वलि लागु छु पायनरे।
बोलडो घोरे मुझने नेमजी, निठुर न थइये यादव रायनरे ॥१॥

किम रे तोरण तम्हे आविया, करि अमस्यु घणो नेहन रे।
पशुअ देखी ने पाछा वल्या, स्युं दे विमास्यु मन रोहन रे ॥२॥

इम नहीं कीजे एहा न होला, तम्हे अति चतुर सुजांणन रे।
लोकहासा रा तन कीजीये, छेह न दीजिये निरवाणिन रे ॥३॥

नेमिगीत

कवि को अब तक जो ११ कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं उनमें से कुछ के नाम निम्न प्रकार है—

१. मरकलडागीत
२. नेमिगीत
३. नेमीश्वर गीत
४. लालपछेवडी गीत
५. गुरुगीत

२५. विद्यासागर

विद्यासागर भ० शुभचन्द्र के गुरु भ्राता थे जो भट्टारक अभयचन्द्र के शिष्य थे। ये बलात्कारगण एवं सरस्वती गच्छ के साधु थे। विद्यासागर हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। इनकी अब तक (१) सोलह स्वप्न, (२) जिन जन्म महोत्सव, (३) सप्तव्यसनसवैया, (४) दर्शनाष्टांग, (५) विषापहार स्तोत्र भाषा, (६) भूपाल स्तोत्र भाषा, (७) रविव्रतकथा (८) पद्मावतीनीवीनति एव (९) चन्द्रप्रभनीवीनती ये ९ रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इन्होंने कुछ पद भी मिले हैं जो भाव एवं भाषा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यहां दो रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है।

जिन जन्म महोत्सव पद पद में तीर्थंकर के जन्म पर होने वाले महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना में केवल ११ पद्य है जो सवैय्या छन्द में हैं। रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता। रचना का प्रथम पद निम्न प्रकार है—

श्री जिनराज नो जन्म जाणी सुरराज ज आवे।
वात वयरणे कीर सार श्वेत अैरावण ल्यावे॥

प्रति वयरा वसुदंत दंत दंत एक सरोवर।
सरोवर प्रति पच्चीस कमलिनि सोहे सुंदर

कमलनि कमलनि प्रति भला कवल सवासो जाणीये ।
प्रति कमले शुभ पाखड़ी वसुधिक सत वखाणीये ॥१॥

२६. भ० रत्नचन्द्र (द्वितीय)

भ० अभयचन्द्र की परम्परा में होने वाले भ० शुभचन्द्र के ये शिष्य थे तथा ये अपने पूर्व गुरुओं के समान हिन्दी प्रेमी सन्त थे। अब तक इनकी चार रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. आदिनाथगीत २. बलिभद्रनुगीत
३. चिंतामणिगीत ४. बावनगजागीत

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनके कुछ स्फुट गीत एवं पद भी उपलब्ध हुये हैं। 'बावनगजागीत' इनकी एक ऐतिहासिक कृति है जिसमें इनके द्वारा सम्पन्न चूलगिरि की संघ यात्रा का वर्णन किया गया है। यह यात्रा संवत् १७५७ पौष सुदि २ मंगलवार के दिन सम्पन्न हुई थी।

संवत् सतर सतवनो पोस सुदि बीज भौमवार रे।
सिद्ध क्षेत्र अति सोभतो तेनि महि मानो नहि पार रे ॥१४॥

श्री शुभचंद्र पट्टे हवी, परखा वादि मद भंजे रे '
रत्नचन्द्र सुरिवर कहें भव्य जीव मन रंजे रे ॥१५॥

चिंतामणि गीत में अंकलेश्वर के मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है।

रत्नचन्द्र साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। ये १८वीं शताब्दि के द्वितीय-तृतीय चरण के सन्त थे।

२७. विद्याभूषण

विद्याभूषण भ० विश्वसेन के शिष्य थे। ये संवत् १६०० के पूर्व ही भट्टारक बन गये थे। हिन्दी एवं संस्कृत दोनों के ही ये अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी भाषा में निबद्ध अब तक इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है—

	संस्कृत ग्रंथ
१. लक्षण चौबीसी पद[1]	१. बारहसैचौतीसो विधान

---

१. देखिये ग्रंथ सूची भाग—३ पृष्ठ संख्या २६४

२. द्वादशानुप्रेक्षा[२]

३. भविष्यदत्त रास

भविष्यदत्त रास इनकी सबसे अच्छी रचना है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

भविष्यदत्त के रोमाञ्चक जीवन पर जैन विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी राजस्थानी आदि सभी भाषाओं में पचासों कृतियां लिखी हैं। इसकी कथा जनप्रिय रही है और उसके पढने एवं लिखने में विद्वानों एवं जन साधारण ने विशेष रुचि ली है। रचना स्थान सोजंत्रा नगर में स्थित सुपार्श्वनाथ का मन्दिर था। रास का रचनाकाल संवत् १६०० श्रावण सुदी पञ्चमी है। कवि ने उक्त परिचय निम्न छन्दों में दिया है—

> काष्ठासंघ नंदी तट गच्छ, विद्या गुण विद्याइ स्वछ।
> रामसेन वंसि गुणनिला, धरम सनेहू आगुर भला ॥४६७॥
>
> विमलसेन तस पाटि जांणि, विशालकीर्त्ति हो आवुध जांण।
> तस पट्टोधर महा मुनीश, विश्वसेन सूरिवर जगदीस ॥४६८॥
>
> सकल शास्त्र तणु भंडार, सर्व दिगंवरनु शृंगार।
> विश्वसेन सूरीश्वर जांण, गछ जेहनो मांनि आंण ॥४६९॥
>
> तेह तणु दासानुदास, सूरि विद्याभूषण जिनदास।
> आणी मन मांहि उल्हास, रचीन्द्र रास शिरोमणिदास ॥४७०॥
>
> महानयर सोजंत्रा ठाम, त्यांह सुपास जिनवरनु धाम।
> भट्टेरा ज्ञाति अभिराम, नित नित करि धर्मना काम ॥४७१॥
>
> संवत सोलसि श्रावण मास, सुकल पंचमी दिन उल्हास।
> कहि विद्याभूषण सूरी सार, रास ए नंदु कोड वरीस ॥४७२॥

भाषा

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती भाषा का प्रभाव है।

छन्द

इसमें दूहा, चउपई, वस्तुवंध, एवं विभिन्न ढाल है।

२. भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या—२७१

प्राप्ति स्थान—रास की प्रति दि० जैन मन्दिर बडा तेरह पंथियों के शास्त्र भंडार के एक गुटके में संग्रहीत है। गुटका का लेखन काल सं० १६४३ से १६६१ तक है। रास का लेखनकाल सं० १६४३ है।

२८. ज्ञानकीर्ति

ये वादिभूषण के शिष्य थे। आमेर के महाराजा मानसिंह (प्रथम) के मंत्री नानू गोधा की प्रार्थना पर इन्होंने 'यशोधर चरित्र' काव्य की रचना की थी।[1] इस कृति का रचनाकाल संवत् १६५९ है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहीत है।

श्वेताम्बर जैन संत

अब तक जितने भी सन्तों की साहित्य-सेवाओं का परिचय दिया गया है, वे सब दिगम्बर सन्त थे, किन्तु राजस्थान में दिगम्बर सन्तों के समान श्वेताम्बर सन्त भी सैंकड़ों की संख्या में हुए हैं—जिन्होंने संस्कृत, हिन्दी एवं राजस्थानी कृतियों के माध्यम से साहित्य की महती सेवा की थी। श्वेताम्बर कवियों की साहित्य सेवा पर विस्तृत प्रकाश कितनी ही पुस्तकों में डाला जा चुका है। राजस्थान के इन सन्तों की साहित्य सेवाओं पर प्रकाश डालने का मुख्य श्रेय श्री अगरचन्द जी नाहटा, डा० हीरालाल जी माहेश्वरी प्रभृति विद्वानों को है जिन्होंने अपनी पुस्तकों एवं लेखों के माध्यम से उनकी विभिन्न कृतियों का परिचय दिया है। प्रस्तुत पृष्ठों में श्वेताम्बर समाज के कतिपय सन्तों का परिचय उपस्थित किया जा रहा है:—

२९. मुनि सुन्दरसूरि

ये तपागच्छीय साधु थे। संवत् १५०१ में इन्होंने 'सुदर्शनश्रेष्ठिरास' की रचना की थी। कवि की अब तक १८ से भी अधिक रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। जिनमें 'रोहिणीय प्रबन्धरास', जम्बूस्वामी चौपई', 'वज्रस्वामी चौपई', अभय-

---

[1] इति श्री यशोधरमहाराजचरित्रे भट्टारकश्रीवादिभूषण शिष्याचार्य श्री ज्ञानकीर्तिविरचिते राजाधिराज महाराज मानसिंह प्रधानसाह श्री नानूनामांकिते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादि दीक्षाग्रहण स्वर्गादि प्राप्त वर्णनो नाम नवमः सर्गः।

कुमार श्रेणिकरास' के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। श्री अगरचन्द जी नाहटा के अनुसार मुनि सुन्दर सूरि के स्थान पर मुनिचन्द्रप्रभ सूरि का नाम मिलता है।[1]

३०. महोपाध्याय जयसागर

जयसागर खरतरगच्छाचार्य मुनि राजसूरि के शिष्य थे। डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने इनका संवत् १४५० से १५१० तक का समय माना है[2] जब कि डा० प्रेमसागरजी ने इन्हें संवत् १४७८–१४९५ तक का विद्वान माना है।[3] ये अपने समय के अच्छे साहित्य निर्माता थे। राजस्थानी भाषा में निबद्ध कोई ३२ छोटी बड़ी कृतियां अब तक इनकी उपलब्ध हो चुकी हैं। जो प्राय: स्तवन, वीनती एवं स्तोत्र के रूप में हैं। संस्कृत एवं प्राकृत के भी ये प्रतिष्ठित विद्वान थे। 'सन्देह दोहावाली पर लघुवृत्ति', उपसर्गहरस्तोत्रवृत्ति, विज्ञप्ति त्रिवेणी, पर्वरत्नावलि कथा एवं पृथ्वीचन्दचरित्र इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

३१. वाचक मतिशेखर

१६वी शताब्दि के प्रथम चरण के श्वेताम्बर जैन सन्तों में मतिशेखर अपना विशेष स्थान रखते हैं।[4] ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी अब तक सात रचनायें खोजी जा चुकी है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. धन्नारास (सं० १५१४)
२. मयणरेहारास (सं० १५३७)
३. नेमिनाथ वसंत फुलडा
४. कुरगडु महर्षिरास
५. इलापुत्र चरित्र गाथा
६. नेमिगीत
७. बावनी

३२. हीरानन्दसूरि

ये पिप्पलगच्छ के श्री वीरप्रभसूरि के शिष्य थे।[5] हिन्दी के ये अच्छे कवि थे।

---

१. परम्परा–राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल–पृष्ठ संख्या ५६
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ संख्या २४८
३. हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि—पृष्ठ संख्या ५२
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ सं० २५१
५. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ संख्या ५४

अब तक इनकी वस्तुपाल तेजपाल रास (सं० १४८४) विद्याविलास पवाडो (वि०सं० १४८५) कलिकाल रास (वि० सं० १४८६) दशार्णभद्ररास, जंबूस्वामी वीवाहला (१४९५)और स्थूलिभद्र बारहमासा आदि महत्वपूर्ण रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। विद्याविलास का मंगलाचरण देखिये जिसमे ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर एवं देवी सरस्वती को नमस्कार किया गया है—

पहिलुं प्रणमीय पढम जिणेसर सत्तुंजय अवतार।
हथिणाउरि श्री शांति जिणेसर उज्जंति निमिकुमार।

जीराउलिपुरि पास जिणेसर, सांचउरे वर्द्धमान।
कासमीर पुरि सरसति सामिणि, दिउ मुझ नईं वरदान॥

३३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीयगच्छ वाचक हर्ष समुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल संवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी बीस रचनाओं की खोज की जा चुकी है। इनके नाम निम्न प्रकार है—

१	विक्रम पंचदंड चौपई	(सं० १५८३)	पद्य संख्या ५९३
२.	आराम शोभा चौपई	,,	पद्य संख्या २४८
३.	अम्बड चौपई	१५९९	
४.	मृगावती चौपई	१६०२	
५.	चित्रसेन पद्मावतीरास	१६०४	पद्य संख्या २४७
६.	पद्मचरित्र	१६०४	
७.	शीलरास	१६०४	पद्य संख्या ४४
८.	रोहिणीरास	१६०५	
९.	सिंहासनबत्तीसी	१६११	
१०.	पार्श्वनाथस्तवन	,,	पद्य संख्या ३९
११.	नलदमयन्तीरास	१६१४	,, ३०५
१२.	संग्राम सूरि चौपई	,,	
१३.	चन्दनबालारास	,,	
१४.	नमिराजर्षिसंधि	,,	पद्य संख्या ६९
१५.	साधु वन्दना	,,	,, १०२
१६.	ब्रह्मचरी गाथा	,,	५५

१. देखिये परम्परा—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ सं० ६६–७६

१७. सीमंधरस्तवन ,, ४१
१८. शत्रुंजय आदिश्वरस्तवन २७
१९. पार्श्वनाथरास ,,
२०. इलापुत्र रास ,,

३४. महोपाध्याय समयसुन्दर

'समयसुन्दर' का जन्म सांचोर में हुआ था। इनका जन्म संवत् १६१० के लगभग माना जाता है। डा० माहेश्वरी ने इसे सं० १६२० का माना है। इनकी माता का नाम लीलादे था। युवावस्था में इन्होंने दीक्षा ग्रहण करली और फिर काव्य, चरित, पुराण, व्याकरण छन्द, ज्योतिष आदि विषयक साहित्य का पहिले तो अध्ययन किया और फिर विविध विषयों पर रचनाएँ लिखीं। संवत् १६४१ से आपने लिखना आरम्भ किया और संवत् १७०० तक लिखते ही रहे। इस दीर्घकाल में इन्होंने छोटी-बड़ी सैंकड़ों ही कृतियां लिखी थीं। समय सुन्दर राजस्थानी साहित्य के अभूतपूर्व विद्वान् थे, जिनकी कहावतों में भी प्रशंसा वर्णित है।

उक्त कुछ सन्तों के अतिरिक्त संघकलश, ऋषिवर्द्धनसूरि, पुण्यनन्दि, कल्याणतिलक, क्षमा कलश, राजशील, वाचक धर्मसमुद्र, पार्श्वचन्द्र सूरि, वाचक विनयसमुद्र, पुण्य सागर, साधुकीर्त्ति, विमलकीर्त्ति, वाचक गुणरत्न, हेमनन्दि सूरि, उपाध्याय गुण विनय, सहजकीर्त्ति, जिनहर्ष, व जिन समुद्रसूरि प्रभृति पचासों विद्वान् हुए हैं जो महान् व्यक्तित्व के धनी थे, तथा अपनी विभिन्न कृतियों के माध्यम से जिन्होंने साहित्य की महती सेवा की थी। देश में साहित्यिक जागरूकता उत्पन्न करने में एवं विद्वानों को एक निश्चित दिशा पर चलने के लिए भी उन्होंने प्रशस्त मार्ग का निर्देश किया था।

कतिपय लघु कृतियां और उद्धरण

भट्टारक सकलकीर्ति (सं० १४४३-१४९९)

सार सीखामणि रास (पृष्ठ संख्या १-२१/१७)

प्रणमवि जिणवर वीर, सीखामणि कहिसु ।
समरवि गोतम धीर, जिणवाणी पभणेसु ।।१।।

लाख चुरासी मांहि फिरं तु, मानव भव लीधु कुलवतु ।
इन्द्री आयु निरामय देह, वुधि विना विफल सहु एह ।।२।।

एक मनां गुरु वाणि सुणीजि, बुद्धि विवेक सही पामीजि ।
पढउ पढावु आगम सार, सात तत्व सीखु सविचार ।।
पढउ कुशास्त्र म काने सुणु, नमोकार दिन रयणीय गुणु ।।३।।

एक मनां जिनवर आराधु, स्वर्ग मुगति जिन हेलां साधु ।
जाख सेष जे बीजा देव तिह तणी नवि कीजे सेव ।।४।।

गुरु निग्र थ एक प्रणमीजि, कुगुरु तणी नवि सेवा कीजि ।
धर्मवंत नी संगति करु, पापी संगति तम्हे परिहरु ।।५।।

जीव दया एक धर्म करीजि, तु निश्चि संसार तरीजि ।
श्रावक धर्म करु जगिसार, नहि भुल्यु तम्हे संयम भार ।।६।।

धर्म प्रपंच रहित तम्हे करु, कुधर्म सवे दूरि परिहरु ।
जीवत माइ बाप सु नेह, धर्म करावु रहित संदेह ।।७।।

मूयां पूठि जै कांई कीजि, ते सहूइ फोकि हारीजि ।
दृढ समकित पालु जगिसार, मूढ पणु मूकु सविचार ।।८।।

रोग क्लेश उप्पना जाणी, धर्म करावु शकति प्रमाणी ।
मंडल पूछ कहि नवि कीजि, करम तणां फल नवि छूटीजि ।।९।।

आव्यइ मरण तम्हे दृढ होज्यो, दीक्ष्या अणसण वन्हि लेयो ।
धर्म करी निफल मनमांगु, मारगि मुगति तणि तम्हे लागु ।।१०।।

कुलि आव्यइ मथ्यात न कींजइ संका सवि टाली घालीजि ।
जे समकित पालि नरनार, ते निश्चि तिरसि संसार ॥११॥
ये मिथ्यात घणेरु करेसि, ते संसार घणु बूडेसि ॥

--वस्तु--

जीव राखु जीव राखु काय छह भेद ।
असीय लक्ष चिहुं अगली एक चित्त परणाम आणीइ ।
चालत विसत सूयतां जीव जंतु संठाण जाणीय ॥
जे नर मन कोमल करी, पालि दया अपार ।
सार सौख सवि भोगवी, ते तिरसि संसार ॥

--ढाल बीजी--

जीव दया दृढ पालीइए, मन कोमल कीजि ।
आप सरीखा जीव सवे, मन मांहि धरीजइ ॥

नाहण धोयण काज सवे, पाणी गली करु ।
अणगल नीर न जडीलीइए दातण मन मोडु ॥

गाढि घाइ न मारीइए सवि चुपद जाणु ।
कणसल कण मन वणज करु, मन जिम वा आणु ॥

पसूय गाढू नवि वांधीइए, नवि छेदि करीजि ।
मानउ पहिरु लोभ करी, नवि भार करीजि ॥

लहिणि देवि काज करी, लांघणि म करावु ।
च्यार हाथ जोईय भूमि, तम्हे जाउ आवु ॥

फासू आहार जामिलु, मन आफणी रांधु ।
अंगीठु मन तम्हे करु मन आयुध सांधु ॥

लाकड न विकयावीइए नाह्लाम चडावु ।
संगा तणा वीवाह सही, म करु म करावु ॥

लोह मधु विष लाख ढोर विवसा छांडवु ।
मिण महूजां कंद मूल मांखण मत वावु ॥

कंटोल साबू पान धाहि धाणी नवि कीजइ ।
खटकसाल हथीयार आगि मांग्या नवि दीजि ॥

नारी बालक रीस करी कातर मन मारु ।
तिल विट जल नवि घालीइए मूयां मन सारु ॥

झूठा वचन न बोलीइए करकस परिहरु ।
मरम म बोलु किहि तणा ए चाडी मन करु ॥

धर्म करंता न वारीइए नवि पर नंदीजि ।
परगुण ढांकी आप तणा गुण नवि बोलीजइ ॥

नालजथाई न बोलीइए हासु मन करु ।
आलन दीजि काणी परि नवि दूषण धरु ॥

अप्रीछयं नवि बोलिइए नवि बात करीजइ ।
गाल न दीजि वचन सार मीठु बोलीजि ॥

परिधन सवि तम्हे परिहरु ए चोरी नावे कीजइ ।
चोरी आणी वस्तु सही मूलि नवि लीजि ।

अधिक लेई निकीणीय परि उछु मन आलु ।
सखर विसाणा माहि सही निखर मन घालु ॥

थांपणि मोसु परिहरुए पडीउ मन लेयो ।
कूडु लेखु मन करुए मन परत्यह कीयो ॥

धरनारी विण नारि सवे माता सभी जाणु ।
परनारी सोभाग रूप मन हीयडु आणु ॥

परनारी सु बात गोठि संगति मन करु ।
रूप नरीक्षण नारि तणु वेश्या परिहरू ॥

परिग्रह संख्या तम्हे करुए मन पसर निवारु ।
नाम विना नवि पुण्य हुइ हुइ पाप अपारु ।

—वस्तु—

तप तपीजइ तप तपीजइ भेद छि बार ।
करम रासि इंधण अग्नि स्वर्ग मुगति पग थीय जाणु ।
तप चिंतामणि कलपतरु वस्य पंच इंद्रीप आणु ।
जे मुनिवर सकति करी तप करेसि घोर ।
मुगति नारि वरसि सही करम हणीय कठोर ॥

--अथ ढाल त्रीजी--

देश दिशानी संख्या करु, दूर देश गमन परिहरु ।
जिणि नयर धर्म्म नवि कीजि, तिणि नयर वासु न वसीजि ।

देश वर्त्त तम्हे उठी लेयो, गमन तणी मरयाद करेयो ।
दूषण सहित भोग तम्हे टालु, कंदमूल अथाणां रालु ।।

सेलर फूल सवे वीली फल, पत्र साक विगण कालीगड ।।
वोर महूजां अण जाण्यां फल, नीम करेयो तम्हे जांवू फल ।

धानसाल नां घोल कहीजि, दिज विहु पूठि नीम करीजि ।
स्वाद चल्यां जे फूल्या धान, नाम नही ते माणस खान ।।

दीन सहित तम्हे व्यालू करु, राति आहार सवि परिहरु ।।
उपवास अधलु फल पामीजइ, आणु फल दांतेन वरीजि ।।

एक वार विवार जमीजइ, अरतां फिरतां नवि खाईजइ ।
वस्तु पाननी संख्या कीजि, फूल सचित्त टाली घालीजि ।।

त्रण काल सामायक लेयो, मन रुंधानि ध्यान करेयो ।
आठमि चौदिश पोसु धरु, घरह तणा पातिक परिहरु ।।

उत्तम पात्र मुनीश्वर जाणु, श्रावक मध्यम पात्र वखाणु ।।
आहार ऊषध पोथी दीजइ, अभयदान जिन पूजा कीजइ ।।

थोडु दान सुपात्रां दीजि, परिमवि फल अनंत लहीजइ ।
दान कुपात्रां फल नवि पावि, ऊसर भूमि बीज व आवि ।

दया दान तम्हे देयोसार, जिणवर विवं करु उद्धार ।।
जिणवर भवननी सार करेज्यो, लक्ष्मीनु फल तम्हे लेज्यो ।।

--वस्तु--

दमु इन्द्री दमु इन्द्री पंच छि चोर
धर्म रत्न चोरी करीय नरग मांहि लेईय मूकि।
सवहु दुःखनी खाण जीय रोग सोक भंडार ढूकि ।
जे तप खड्ग धरीय पुरुष इन्द्री करि संघार ।
देवलोक सुख भोगवी ते तिरसि संसार ।।

—अथ ढाल चुथी—

योवन रे कुटंब हरिधि लक्ष्मीय चंचल जाणीइए ।
जीव हरे सरण न कोई धर्म विना सोई आणीइए ।।

संसार रे काल अनादि जीव आगि घणु फिर्यु ए ।
एकलु रे आवि जाइ कर्म आठे गलि धर्युए ।

काय धीरे जू जूउ होइ कुटंब परिवारि वेगलुए ।
शरीर रे नरग भंडार मूकीय जासि एकलु ए ।

खिमा रे खडग धरेवि क्रोध विरी संघारीइए ।
माद्दंव रे पालीइ सार मान पापी परुं टालीइए ।

सरलुं रे चित्तकरेवि माया सवि दूरि करुए ।
संतोप रे आयुध लेवि लोभविरी संघारीइए ।

वेराग रे पालीइ सार, राग टालु सकलकीर्त्ति कहिए ।
जे भणिए रास ज "सार सीखा मणि" पढते लहिए ।

इति सीखामणिरास समाप्तः

ब्रह्म जिनदास (समय १४४५-१५१५)

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वरास[1]

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

[१]

ढाल वीनतीनी

सरसति स्वामिणि वीनवउ मांगू एक पसाउ ।
तम्ह परसादेइ गाइस्यु, रुवडो जिणवर राउ ॥१॥

सहीए समाणीए तम्हे सुणो सुणउ अम्हारीए वात ।
जिण चैत्यालइ जाइस्यु छांडि घरकीय तात ॥२॥

अ ंग पखालीसु आपणो, पहिरीसु निरमल चीर ।
जिन चैत्यालेइ पैसतां निरमल होइ सरीर ॥३॥

जिणवर स्वामिइ पूजीए वांदीए सहगुरु पाय ।
तत्व पदारथ सांभलि निरमल कीजिए काय ॥४॥

सहगुरु स्वामि तम्हे कहु, श्रावक धर्म वीचार ।
उतीम धरम जगि जाणिए उतीम कुलि अवतार ॥५॥

सहगुरु स्वामिय वोलीया मधुरीय सुललीत वाणि ।
श्रावक धरम सुणो निरमलो जीम होइ सुखनीय खाणि ॥६॥

समिकित निरमल पालीए, टालि मिथातह कंद ।
जिणवर स्वामिय ध्याइए, जैसो पूनिम चंद ॥७॥

वस्त्राभरण थाए वेगला जयमालि करी नवि होइ ।
नारी आयुध थका वेगला, जिन तोलैं अवर न वोइ ॥८॥

सोम मूरति रलीयावणा वीकार एक न अंगि ।
दीसंता सोहावणा, ते पूजो मनरंगि ॥९॥

इन्द्र नरेन्द्रइ पुजीया न जिणवर मुगति दातार ।
निरदोप देव एह्वा ध्याइये, जीम णमो भवपार ॥१०॥

अवर देव नवी मानीइ दूखण सहीन वीचार ।
मोहि करमि जे मोहीया ते अजू भमिसी संसारि ॥११॥

---

१. ब्रह्म जिनदास कृत-विशेष परिचय देखिये पृष्ठ संख्या ३८-३९ तक

वस्त्राभरणइं मंडीया, सरसीय दीसे ए नारी ।
आयुध हाथि दीहावणो, अजीय नमु कीय मारी ॥१२॥

जे आगलि जीव मारेए ते, कीम कहीय ए देव ।
युजें वरमत पामीइ, इणी करो तेहनीय सेव ॥१३॥

दीसंता वीहावणा देवदेवी तेह जाणो ।
रौद्रध्यान दीठें उपजे इणीकरो तेह....... ॥१४॥

वडपीपल नवि पुजीए, तुलसी मरीय उवारि ।
द्रोव छाड नवि पूजिए, एह वीचारउ नारि ॥१५॥

उंवर थांभन पूजीए, काजिणी चूल्हउ आगि ।
घागरि मडका पूजी करी, ते कान्हं फल मन मागि ॥१६॥

सागर नदीयन पुजीए, वावि कूवा अडसोइ ।
जलवा एन जुहारीय ए, सवे देव न होइ ॥१७॥

गजघोडा नवि पुजीए, पसुव गाइ सवे मोर ।
काग वास जे नाखि से, माणस नहीं ते ढोर ॥१८॥

खीचड पीतर न पुजीए, एकल लिंडम घालो ।
मूआं पुठे नवि कलपीए, कुदान की हानम आलो ॥१९॥

उकरडी नवि पुजीए, होलीय तम्हे म जुहारो ।
गणागउरि नवि मानीइं, भवा मिथ्यात नी वारो ॥२०॥

[२]

ढाल बीजी

मिथ्यात सयल नीवारीए, जाग म रोपउ नारि ।
माटी कोराउतु करीए, पछे किम मोडीए गंवारि ॥१॥

तामटे धान बोवावीए कहीए रना देवि तेह ।
सात दीवस लागें पूजीए, पछे किम बोलीए तेह ॥२॥

जोरनादेवि पुत्र देइ, तो कोई वांझीयो न होइ ।
पुत्र धरम फलं पामीइं, एह वीचार नु जोइ ॥३॥

धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमइ लाछि भण्डार ।
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रूप अपार ॥४॥

इम जाणी तम्हें धरम करो, जीवदया जगि सार ।
जीम एहां फल पामीइ, वली तरीए संसारि ॥५॥

सीलि सातमि श्रोव ग्राठमि, नवलि नेमि दुखखाणि ।
जीवरती सयल निवारीइ, जीम पामो सुखखाणि ॥६॥

आदित रोट तम्हे अणी करो, माहा माइ पुज निवारि ।
कलप्प कहो किम खाइए, श्रावक धरम मझारि ॥७॥

गुरुणा रोट तम्हे भणी करो, नारीय सयल सुजाणि ।
रोट दीठें नवि मुझीए, ग्रझीए पापें वखाणि ॥८॥

रोट तुठें नवि सोभाग रुठें दोमागजि होइ ।
धरमें सोमाग पामीऐं, पापें दो भाग जिहोइ ॥९॥

रोट वरत जे नारि करे, मनि धरि अति वहुभाउ ।
घीय गुल दहि कार्कडि, ए खवा को उपाय ॥१०॥

जाग भोग उतारणा, मंडल सयल मिथ्यात ।
संका सवल निवारीए, वाडीएं मूढ तणी वात ॥११॥

नव राव मोडण न पुजीए, एह मिथ्यातजी होइ ।
नवराति जीवा मेरे घणा, एह वीचार तु जोइ ॥११॥

कुल देवता नवि मानइं, दीराडी मिथ्यातजी होइ ।
जिण सासण ध्याउ निरमलौ, एह वीचार तुं जोइ ॥१३॥

[३]

ढाल सहेलडी की

मूंवा वारसी म करो हो, सराधि मिथ्यातजि होइ ।
परोलोकी जीव किम पामिसि हो, एह वीचारतु जोइ साहेलडी ॥१॥

जिन धरम अराधि सुचंदो, छेदि मिथ्यातहं कंदो ।

पीतर पाटा तम्हे मलीखोहो, एह मीथ्या तजिहोइ ।
मूंवो जीव कीम पाछो आवे, एह वीचार तुं जोइ सहेलडी ॥२॥

ग्रहणममानो राहतणी हो, एह मिथ्यात जी होइ ।
चांद सूरिज इंद्र निरमला हो, एह ने ग्रहण न होइ सलेलडी ॥३॥

माहमना हो सुंदरि हो, एह, मिथ्यात जी होइ ।
ग्रनगलि नीर जीव मरे घणाहो, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥४॥

इग्यारसि सोमवार दितवार हो,ए लोकीक धरम होइ ।
सांच्यो दितवार म करो हो, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥५॥

डावें हाथि तम्हे म जीमो हो, नवसीइं फलनवि होइ ।
अपवित्र हाथ ए जाणीइं हो, ए वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥६॥

कष्ट भक्षण तम्हे म करोहो, एह मिथ्यातजि होइ ।
आतमा हत्याय नीय जो हो, एह वीचार तुंजोइ ॥ सहे० ॥७॥

सीता मंदोवरि द्रौपदी हो, अंजना सुंदरी सती होइ ।
कष्ट भक्षण इणें नवी कीयाए, एह वीचार तुं जोई ॥ सहे० ॥८॥

तारा सुलोचना राजमती हो, चंदन बाला सती होइ ।
कष्ट भक्षण नवि इणी कीया, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥९॥

नीलीय चेलणा प्रभावती हो, अनंतमती सती होइ ।
कष्ट भक्षण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥१०॥

ब्राह्मिय सुंदरि अहिल्यामती हो, मदनमंजूषा सती होइ ।
कष्ट भक्षण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥११॥

रुकुमीणि जांबुवती सतीभामाहो, लक्षमीमती सती होइ ।
कष्ट भक्षण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तुं जोइ ॥ सहे० ॥१२॥

एह्वी मरण न वांछीए हो, कुमरणें सुगति न होइ ।
समाधि मरण मीत वांछीए हो, जीम परमापद होइ ॥ सहे० ॥१३॥

तप जप ध्यान पुजा कीधें हो, सीयल पालें सती होई ।
सीयली आगि तम्हे अनदिनसाधो, जीम परमापद होइ ॥ सहे० ॥१४॥

इम जाणि निश्च्यो करिहो, मिथ्यात भणी करो कोइ ।
समिकीत पालो निरमलो हो, जीम परमापद होइ ॥ सहे० ॥१५॥

पाणि मथिइं जीम घी नही हो, तुष माहि चोउल न होइ ।
तीम मिथ्या धर्म सर्म बहु कीधे, श्रावक फल नवि होइ ॥ सहे० ॥१६॥

[४]

भास रासनी

पंचम कालि अज्ञान जीव मिथ्यात प्रगट्यो अपारतो ।
मूढें लोकें वहु आदर्‌योए, कोण जाणे एह पारतो ॥१॥

केवली भास्यु धरम करोए, श्रावक तुम्हे इसु जाणतो ।
निर्ग्रंथगुरु उपदेसीयाए तेहनी करउ वखाणतो ॥२॥

जीव दया व्रत पालीयए, सत्य वयण बोलो सारतो ।
परधन सयल निवारीयए, जीम पामो भवपारतो ॥३॥

शीयल वरत प्रतिपालीयए, त्रिभुवन माहि जे सारतो ।
परनारी सवे परहरोए, जीम पामो भव ए पारतो ॥४॥

परिग्रह संक्षा (ख्या) तम्हे करो ए, मन पसरंनो निवारितो ।
नीम घणा प्रतिपालीयए, जीम पामो भव पारतो ॥५॥

दान पुजा नित निरमलए, माहा मंत्र गणों णवकारतो ।
जिणवर भुवन करावीयए, जीम पामो भव पारतो ॥६॥

चरम पात्र घृत उदकए, छोंती सयल नीवारि तो ।
आचार पालो निरमलोए, जीम पामो भव पारतो ॥७॥

सोलकारण व्रत तम्हें करोए, दश लक्षण भव पारतो ।
पुष्पांजलि रत्नत्रयह, जीम पामो भव पारतो ॥८॥

अक्षयनिधि व्रत तम्हे करो, सुगंध दशमि भव पारतो ।
आकासपांचमि निझरपांचमीय, जीय जीम पामो भवपारतो ॥९॥

चांदन छठी व्रत तम्हे करो ए; अनंतवरत भव तारतो ।
निर्दोप सातमि मोड सातमिह; जीम पामो भव पारतो ॥१०॥

मुगतावलि व्रत तम्हें करोए, रतनावलि भव तारतो ।
कनकावलि एकावलिए; जीम पामो भवपारतो ॥११॥

लवधवीधान व्रत तम्हें करोए, श्रुतकंद भव तारतो ।
नक्षत्रमाला कर्म्म निर्जणीयं, जीम पामों भव पारतो ॥१२॥

नंदीस्वर पंगति तम्हे करोए, मेर पंगति भव तारतो ।
विमान पंगति लक्षण पंगतीय, जीम पामो भवपारतो ॥१३॥

शीलकल्याण व्रत तम्हे करोए, पांच ज्ञान भव तारतो ।
सुख संपति जिणगुण संपतीयं,जीम पामो भव पारतो ॥१४॥

चोवीस तीर्थंकर तम्हे करोए, भावना चौवीसी भव तारतो ।
पल्योपम कल्याणक तम्हे करोए; जीम पामो भव पारतो ॥१५॥

चारित्र सुधि तप तम्हे करोए, धरम चक्र भव तारतो ।
जतिय वरत सवे निरमलाए, जीम पामो भवपारतो ॥१६॥

दीवाली अब तम्हे करोए, आखातीज भव तारतो ।
बीजय दशमि बलि राखीडी ए, जीम पामो भव पारतो ॥१७॥

आठमि चोदसि परब तीथि, उजालि पांचमि भव तारतो ।
पुरंदरविधान तम्हे करोए,जीम पामो भव पारतो ॥१८॥

जीण सासण अनंत गुण कहो, कीम लाभ ए पारतो ।
केवल भाखो (ख्यो) धर्म करोए, जीम पामो भव पारतो ॥१६॥

समिकित रासो निरमलो ए, मिथ्यातमोड एकंदतो ।
गावो भवीयण रुवडोए, जीम सुख होइ अनंदतो ॥२०॥

श्री सकलकीर्ति गुरु प्रणमीनए, श्री भवनकीर्ति भवतारतो ।
ब्रह्म जिणदास भणे ध्याइए, गाइए सरस अपारतो ॥२१॥

॥ इति समिकितरासनु मीथ्यात मोड समाप्तः ॥

आमेर शास्त्र भंडार जयपुर

गुर्वावलि[1] (रचनाकाल सं० १५१८)

बोली

तेह श्री पद्मसेन पट्टोधरण संसारसमुद्र तारणतरण सन्मार्ग्रचरण पंचेन्द्रिय विसिकरण एकासोमइ पाटि श्री भुवनकीर्ति राउलजपन्ना पुण जिणि श्री भुवनकीर्तिइ ढीली नयर मध्य शुलतान श्री वडा महिमुंदसाह सभातरि आपणी विद्यानि प्रमाणि निराधार पालखी चलावी। सुलताण महिमुंदसाह सह थइ मान दीधुं। तेह नयर मध्य पत्रालवन बांधी पंच मिथ्यात्व वादी वृंदराज सभांइ समस्त लोक विद्यमान जीता। जिनधर्म प्रगट कीधुं। अमर जस इणी परि लीधु। अनि तेह श्री गुरु तणि पाटि श्री भावसेन अनि श्री वासवसेन हूया। जे श्री वासवसेन मलमलिन गात्र चारित्रपात्र नित्य पक्षोपवास अनि अंतराइ निसंयोग मासोपवास इसा तपस्वी इणि कालि हूया न कोहसि। अनि तेहनि नामि तथा पीछीनि स्पर्शि समस्त कुष्टादिक व्याधि जाति। तेह गुरुंना गुण केतला एक बोलीइ॥ हवि श्री भावसेन देव तणि पाटि श्री रत्नकीर्ति उपन्ना।

छंद त्रिवलय

श्रीनंदीतटगच्छे पट्टे श्रीभावसेनस्य।
नयसाखाश्रृंगारी उपन्नो रयणकीत्तियां॥१॥

उपनु रयणकीत्ति सोहि निम्मल चित्त।
हूउ विख्यात क्षिति यतिपवरो॥

जीतु जीतु रे मदन वलि संक्यु न वाही—
छलि जिनवर धम्म वली धुरा-धरो॥

जाणि जाणि रे गोयम स्वामि तम नासि जेह नामि।
रह्युं उत्तम ठामि मंडीयरण॥

छांड्यु छांड्यु रे दुर्जय क्रोध अभिनवु एह योध।
पंचेइंद्री कीधु रोव एकक्षणं॥२॥

उद्धरण तेह पाट नरयनी भांजी वाट
मांडीला नवा अघाट विवह पार॥

---

१. आचार्य सोमकीर्त्ति की इस कृति का परिचय देखिये पृष्ठ संख्या—४३ पर देखिये।

आणि आणि रे जेन माण सर्वविद्या तणु जाण ।
नरवरहि आण रंग भार ॥
दीसि दीसि रे अति झूझार हेलामाटि जीतु मार ।
घडीयन लागी वार वरह गुरो ॥
इणी परि अति सोहि भवीयण मन मोहि ।
ध्यानहय आरोहि श्रीलक्ष्मसेन आणंद करो ॥३॥

कहि कहि रे संसार सार म जाणु तम्हे असार ।
अत्थि अति असार भेद करी ॥
पूजु पूजु रे अरिहंत देव सुरनर करि सेव
हवि मलाउ खेव भाव धरी ॥
पालु पालु रे अहंसा धम्म मणूयनु लाधु जम्म ।
म करु कुत्सित कम्म भव हवणे ॥
तरु तरु रे उत्तम जन अवर म आणु मनि ।
ध्याउ सर्वज्ञ घन लखमसेन गुरु एम भणैं ॥४॥

दीठि दीठि रे अति आणंद मिथ्यातना टालि कंद ।
गयण विहूणउ चंद कुलहितिलु ।
जोइ जोइ रे रयणी दीसि तत्वपद लही कीशि ।
धरि आदेश शीशि तेह भलुं ॥
तरि तरि रे संसार कर तिजगुरु मूकिइए ।
मोकलु कर दान भणी ॥
छंडि छंडि रे रठडी वाल लेइ बुद्धि विशाल ।
वाणीय अति रसाल लखमसेन मुनिराउ तणी ॥५॥

श्री रयणकीर्ति गुरु पट्टि तरणि सा उज्जल तपै ।
छंडावी पाखंड धम्मि मारगि आरोपै ॥
पाप ताप संताप मयण मछर भय टाले ।
क्षमा युक्त गुणराशि लोभ लीला करि राले ॥
वोल्जि वाणि अम्मी अग्गली सावयजन घन चित्त हर ।
श्री लखमसेन मुनिवर सुगुरु सयल संघ कल्याण कर ॥६॥

सगुण जगुण भंडार गुणह करि जण मण रंजै ।
उवसम हय वर चडवि मयण भडइ वांइ भंजै ॥

रयणायर गंभीर धीर मंदिर जिम सोहै ।
लख्म सेन गुरु पाटि एह भवीयण मन मोहै ।
दीपंति तेज दणीयर सिसुमच्छत्ती मणमाणहर ।
जयवंता चउ वय संघसु श्रीधर्मसेन मुनिवर पवर ॥१॥

पहिरवि सील सनाह तवह चरणु कडि कछीय ।
क्षमा खडग करि धरवि गहीय भुज बलि जय लछी ॥
काम कोह मद मोह लोह आवंतु टालि ।
कट्ठ संघ मुनिराउ गछ इणी परि अजूयालि ॥
श्री लख्मसेन पट्टोवरण पाव पंक छिप्पि नहीं ।
जे नरह नरिंदे वंदीइ श्री भीमसेन मुनिवर सही ॥२॥

सुरगिरि सिरि को चडै पाउ करि अति बलवंतौ ।
केवि रणायर नीर तीर पुहुतउय तरंतौ ॥
कोई आयासय माण हत्थ करि गहि कमंतौ ॥
कट्ठ संघ गुण परिलहिउ विह कोइ लहंतौ ॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुल तिलौ ।
जाणंति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलौ ॥३॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु ।
अक्कवार पंचमी बहुल पष्यह वखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझीत्रिपुर वरि ।
सत्यासीवर पाट तणु प्रवंध जिणि परि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ श्री सोमकीर्त्ति बहु भाव धीर ।
जयवंतउ रवि तलि विस्तरु श्री शांतिनाथ सुपसाउ करि ॥४॥

गुटका दि० जैन मन्दिर बघेरवाल—नैणवां

आदीश्वरफाग[1]

(जन्म कल्याणक वर्णन)

आहे चैत्र तणी वदि नवमीय सुन्दर वार अपार ।
रवि जनमी तइं जनमीया करइ जय जय कार ।।७३।।

आहे लगनादि कर्‌यू वरणवूं जेणइ जनम्या देव ।
बाल पणइ जस सुरनर आव्या करवा सेव ।।७४।।

आहे घंटा रव तव वाजीउ गाजीउ अम्बरि नाद ।
जिनवर जनम सु सीधउ दीधउ सघलइ साद ।।७५।।

आहे एरावण गज सज कर्‌यु सज कर्‌या वाहन सर्व ।
निज निज घरि थका नीकल्या कुणइ न कीधउ गर्व ।।७६।।

आहे नाभि नरेसर अंगण नइ गगणांगण देश ।
देवीय देवइ पूरीयु नहींय किहींय प्रवेश ।।७७।।

आहे माहिमई इन्द्राणीय आणीय शप्पउ वाल ।
इन्द्र तणइ करि सुन्दरी गावइ गीत विशाल ।।७८।।

आहे छत्र चमर करि धरता करता जय जय कार ।
गिरिवर शिखिर पहूत बहूत न लागीय वार ।।७९।।

आहे दीठउं पंडुक कानन वर पंचानन पीठ ।
तिहां जिन थापीय आखलि पाखलि इन्द्र वईठ ।।८०।।

आहे रतन जड़ित अति मोटाउ मोटाउ लीधउ कुम्भ ।
क्षीर समुद्र थकूं पूरीय पूटीय आणीयूं अम्भ ।।८१।।

आहे कुम्भ अदम्भ पणइ लेई ढाल्या सहस नइ आठ ।
कंकण करि रणझणतइं भणतइं जय जय पाठ ।।८२।।

आहे दुमि दुमि तवलीय वज्जइ धुमि धुमि मद्दल नाद ।
टणण टणण टंकारव भिणिभिणि झल्लर साद ।।८३।।

---

१. भ० ज्ञानभूषण एवं उनकी कृतियों का विशेष परिचय पृष्ठ संख्या ४९–९३ पर देखिये ।

आहे अभिषव पूरउ सीधउ कीधउ अंगि विलेप ।
आंगीय अंगिकारवाउ कीवउ वहू आक्षेप ॥८४॥

आहे आणीय वहुत विभूषण दूषण रहीत अभंग ।
पहिराव्या ते मनि रली वली वली जोअइ अंग ॥८५॥

आहे नाम वृषभ जिन दीधउ कीधउ नाटक चंग ।
रूप निरूपम देखीय हरिखइं भरियां अंग ॥८६॥

आहे आगलि पाछलि केईय केईय जमला देव ।
लेईय जिनपति सुरपति चालीउ करतउ सेव ॥८७॥

आहे अवीया गगन गमनि नवि लागीय वार लगार ।
नाभि धरगणि देवीय देव न लामइ पार ॥८८॥

आहे नाभि पिता सखि वइठउ वइठीय मरुदेवी मात ।
खोलइं मूंकीय वाल विशाल कही सहू वात ॥८९॥

आहे आपीय साटक हाटक नाटक नाचइ इन्द ।
नरखइ पागति परखइ हरखइ नाभि नरिन्द ॥९०॥

आहे जनम महोत्सव कीधउ दीधउ भोग कदम्ब ।
देव गया नृप प्रणमीय प्रणमीय जिनवर अंब ॥९१॥

आहे दिनि २ बालक वाधइ वीज तणु जिम चन्द ।
रिद्धि विबुद्धि विशुद्धि समाधि लता कुल कंद ॥९२॥

आहे देवकुमार रमाडइ मात जमाडइ क्षीर ।
एक धरइ मुख आगलि आणीय निरमल नीर ॥९३॥

आहे एक हसावइ ल्यावइ कइडि चडावीय बाल ।
नीति नहीय नहीय सलेखन नइ मुखिलाल ॥९४॥

आहे आंगीय अंगि अनोपम उपम रहित शरीर ।
टोपीय उपीय मस्तकि बालक छइ पण वीर ॥९५॥

आहे कानेय कुण्डल झलकइ खलकइ नेउर पाइ ।
जिम जिम निरखइ हरखइ हियडइ तिमतिम माइ ॥९६॥

आहे सोहइ हाटकनूं शुभ घाटि ललाटि ललाम ।
सहूअ वधावा नइ सिसि जोवा आवइ गाम ॥९७॥

आहे कोटइ मोटा मोतीयनु पहिराव्यु हार ।
पहिरीयां भूषण रंगि न अंगि लगा रज भार ॥९८॥

आहे करि पहिरावइ सांकली सांकली आपइ हाथि ।
रीखतु रीखुत चालइ चालइ जननी साथि ॥९९॥

आहे कटि कटि मेखल बांधइ बांधइ अंगद एक ।
कटक मुकट पहिरावइ जाणइ बहुत विवेक ॥१००॥

आहे घण घण घूघरी वाजइ हेम तणी विहु पाइ ।
तिमतिम नरपति हरखइ हरखइ मरुदेवी माइ ॥१०१॥

आहे वगनाउ वगनाउ मगनाउ लाडूआ मूंकइ आणि ।
थाल भरी नइ गमताउ गमताउ लिइ निजपाणि ॥१०२॥

आहे क्षिणि जोवइ क्षिणि सोवइ रोवइ लहीअ लगार ।
आलि करइ कर मोडइ त्रोडइ नवसर हार ॥१०३॥

आहे आपइ एक अकाल रसाल तणी करि साख ।
एक खवारइ खारिकि खरमाउ दाडिम द्राख ॥१०४॥

आहे आगलि मूंकइ एक अनेक अखोड वदाम ।
लेईय आवइ ठाकर साकर नांवहु ठाम ॥१०५॥

ओह आवइं जे नर तेवर घेवर आपिइ हाथि ।
जिम जिम वालक बांधइ तिम तिम बाधइ आथि ॥१०६॥

आहे अवर वतूं सहू छांडीय मांडीय मरकीय लेवि ।
आपइ थापइ आगलि रमति वहू मरूदेवि ॥१०७॥

आहे खांड मिलीय गलीय तलीय खवारइ सेव ।
सरगि थका नित सेवाउ जोवाउ आवउ देव ॥१०८॥

खांड मिली हरखिइं तली गली खवारइ सेव ।
कइ आवइं सेविवा केई जोवा देव ॥१०९॥

आहे आपइ एक अहीणीय फीणीय झीणीय रेख ।
अविय देवीय देव तणी देखाडइ देख ॥११०॥

आपइ फीणी मनिरली माहइ झीणी रेख ।
देवी आवइ सरगिथीं देखाडइ ते देख ॥१११॥

आहे कोइ न आणइ अमरख कमरख मूंकइ पासि ।
वेलांइ वेलांइ सूनेला केलानी वहु रासि ॥११२॥

सूनेलां केलां भला काठेलांनी रासि ।
केइ ल्यावइं कूकणां कमरख मूंकइ पासि ॥११३॥

आहे एक वजावइ वाजाउ निवजांउ आपइ एक ।
गावइ गायण रायण आपइ एक अनेक ॥११४॥

वाजइं बाजां अति घणां निवजा एक अनेक ।
आपइ रायण कोकडी पाकां रायण एक ॥११५॥

आहे गूंद तल्यउ गुरु गूंद वडां वर गूंद विपाक ।
आपइ कूलिरि चोलीय चोलीय आणीय वाक ॥११६॥

आणइं गूंद वडां वडां सरिस्यु गूंद विपाक ।
गूंद तलिउ कूलेरि तणउ चोली आणइ वाक ॥११७॥

आहे एक आणइ वर सोलाउं कोहलां केरउ पाक ।
अंगिण आणीय बांवइं एक अनेक पताक ॥११८॥

आहे आणइ साकर दूध विसूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जणी घणी खांडतणी वर चाक ॥११९॥

साकर दूध कचोलडी सूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जणी घणीं खांडतणी वर चाक ॥१२०॥

आहे कोमल कोमल कमल तणां फल आपइ सार ।
नहींय दहीय दहीयथरांनउ घोक लगार ॥१२१॥

कमल तणां फल टोपरा पस्तां आपइ सार ।
दहीय दहीयथ रांतणु वांक नहीय जगार ॥१२२॥

आहे वूरइं पूरइ पस तस खस खस आपइ एक ।
उन्हऊं पाणीय आणीय अंगिकरइ नित सेक ॥१२३॥

आपइ वूरूं खाडनूं खसखस आपइ एक ।
चांपेल वडइ चोपडी अंगि करइ जल सेक ॥१२४॥

आहे कोठइं मोटां मोतीय मोतीय लाडू हाथि ।
जोवाउ नित नित आवइ इन्द्र इन्द्राणी साथि ॥१२५॥

कोटइं मोती अति भलां मोती लाडू हाथि ।
जोवानइ आवइ वली इन्द्र सची बहु साथि ॥१२६॥

आहे चारउ लीनी वाचकी साकची आपइ एक ।
एक आपइ गुड बीजीय वीजीय फणस अनेक ॥१२७॥

आहे माथइ कूंचीय ढीलीय नीलीय आपइ द्राख ।
नित नित लूंण ऊतारइ जे मन लागइ चाख ॥१२८॥

चार तणा फल साकची सूकां केला एक ।
पहूं आगुड़ बीजी धणी आपइ फनस अनेक ॥१२९॥

सिरि कूंची मोती भरी हाथिइ नीली द्राख ।
लूंण उतारइ माडली जे मन लागइ चाख ॥१३०॥

आहे मान तणीया साहेलड़ी सेलड़ी आपइ नारि ।
छोलीय छोलीय आपइ वइठीय रहइ घर वारि ॥१३१॥

आहे जादरीया काकरीया घरीया लाडूआ हाथि ।
सेवईया मेवईया आपइ तिलवट साथि ॥१३२॥

सेव तणा आदिइं करी लाडू मूंकइ हाथि ।
आणइ गुलभेला करी आपइ तिलवट साथि ॥१३३॥

आहे तींगण काईय आईय आणीय आपइ हाथि ।
तेवड़ा तेवड़ा चालक जमला चालइ साथि ॥१३४॥

नालिकेर नीला भलां माडी आपइ हाथि ।
जमला तेवड तेवडा वालक चालइ साथि ॥१३५॥

आहे आपइ लीवुअ वीजांउ वीजउरा जंबीर ।
जोईय जोईय मूंकइ जिनवर बावन वीर ॥१३६॥

आपइ लीवू अतिभला वीजुरा जंबीर ।
हाथि लेई जो अइ रयइ जिनवर बावन वीर ॥१३७॥

आहे साजाउ साजाउ करेउ कीधउ चूर खजूर ।
आपइ केईय जोअइ गाअइ वाअइ तूर ॥१३८॥

आपइ फलद खजूर शुं केई खाजां चूर ।
केई गावइ गीतड़ा एक वजाउइ तूर ॥१३९॥

आहे श्रीयुत नित नित आवइ देव तणउ संघात ।
अमिरिन आपइ आणीय क्षाणीयनी कुणवात ॥१४०॥

सन्तोस जय तिलक[1]

(संवत् १५९१)

साटिक

जा अज्ञान अवार फेडि करणं, सन्यान दी वंद्यठे ।
जा दुःखं वहु कम्म एग हरणं, दाइक सुग्गैसुहं ।।
जादे वंमगुणा तियंच रमणी, भविक्ख तारणी :
साजं जै जिणवीर वयण सरियं वाणी अते निम्मलं ।।१।।

रड

विमल उज्जल सुर सुर सरोहि,
सुविमल उज्जल सुर सुर सरोहि ।
सुण भवियण गह गहहि, मन सु सरि जंगु कवल खिल्लहि ।
कल केवल पयडि यहि, पाप-पटल मिथ्यात पिल्लहि ।।
कोटि दिवाकर तेउ तपि, निधि गुण रतनकरडु ।
सो ब्रवमानु प्रसंनु नितु तारण तरणु तरंडु ।।२।।

भविय चित्त वहु विधि उल्हासणु ।
अठ कम्मह खिउ करणु सुद्ध धम्मु दह दिसि पयासणु ।।
पावापुरि श्री वीर जिणु जने सु पहुत्तइ आइ ।
तव देविहि मिलि संठयउ समोसरणु वहु भाइ ।।३।।

जव सुदेखइ इंद्र धरि ध्यानु नहु वाणी होइ जिण ।
तव सुर (क) पट मन महि उपायउ,
हुइ वंभणु डोकरउ मच्च लोइ सुरपत्ति आयउ ।।
गोतमु नोतमु जह वसैं अवरु सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि भववैं गुणिहि गहीरु ।।४।।

थिवरु वोलइ सुगाहु हो विप्प तुम्ह दीसरं विमलमति ।
इकु सन्देहु हम मनिहि थक्कइ,

---

१. ब्रह्म बूचराज एवं उनकी कृतियों का परिचय पृष्ठ ७० पर देखियें ।

नहुतैं साके मिलइ जासु हुत यह गांठि चुक्कइ ।
वीरु हुता मुझ गुरु मोनि रह्या लो सोइ ।
हउस लोकु लीए फिरउ अत्यु न कहइ कोइ ॥५॥

गाथा

हो कह हुथि वर बंमण को अछै तुम्ह चित्ति संदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरुल्लु बुद्धि पंडितु ॥६॥

षटपदु

तीन काल षटु दव्वि नव सु पद जीय खट्टुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पंचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ॥
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहु वण महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रुत्तिहि ॥
यहु मूलु भेदु निज जाणि यहु सुद्ध भाइ जे के. गहहि ।
समक्कत्त दिहि मति मान ते सिव पद सुख वंछित लहहि ॥७॥

एय वयण सवणि संभलि चयकिउ चितपुरइ न अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु, चल्लिउ पुणि तत्थ जथ जिणणाहु ॥८॥

रड

तव सुगोइमु चाल्लिउ गजंतु, जणु सिघरू मत्तमय ।
तरक छंद व्याकरण अत्थह ।
खट्टु अगहु वेय धुनि, जोति वक़लंकार सत्थह ॥
तुलइ सु विद्या अवुल वलु चडिउ तेजि अति वंभु ।
मान गल्या तिसु मन तणा देखत मानथंभु ॥९॥

गाथा

देखत मान थंभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझम्मे ।
हूवउ सरल पणामो, पूछ गोइमु चित्ति संदेहो ॥१०॥

दोहा

गोइमु पूछइ जोडि कर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभ वियाये जीय सहि लूरिहि केउ संसारि ॥११॥

रड

लोभ लग्गउ पाण वुध करइ ।

अलि जंपइ लोभिरतु, ले अदतु जब लोभी आनइ ।
लोभि पसरि परगहु वधावइ ॥

पंचइ वरतह खिउ करइ देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रगटु विथारु ॥१२॥

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु ।
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इंदिय मूल मनु नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ॥
जगु विस्वासे कपट मति पर जिय वंछइ दोहु ।
सुण गोइम परमारथु यहु पापह मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमियउ अनादि काले, चहुंगति मझंम्मि जीउ वहु जोनी ।
वसि करि न तेनिसक्कियउ, यहु दारुण लोभ प्रचंडु ॥१४॥

दोहडा

दारुण लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइं, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छंद

यह व्यापि रह्या सहि जीय जंत ।
करि विकट बुद्धि परमन हडंत ॥
करि छलु पपसै घू रत्त जेंव ।
परपंचु करिवि जगु मुसइर एव ॥१६॥

संकुडइ मुडइ वठलु कराइ ।
वग जेंउ रहइ लिव ध्यान लाइ ॥
वग जेंउ गगौ लिय सीसि पाइ ।
पर चित्त विस्वासै विविह भाइ ॥१७॥

मंजार जेउ आसण वहुत्त ।
सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ॥
जे वेस जेंव करि विविह ताल ।
मतियावइ सुख दे वृद्ध वाल ॥१८॥

आपणै न औसरि जाइ चुक्कि ।
तम जेउ रहइ तलि दीव लुक्कि ॥
जव देखइ डिगतह जोति तासु ।
तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ॥१९॥

जो करइ कुमति तव अरण विचार ।
जिसु सागर जिउ लहरी अपार ॥
इकि चडहि एक उत्तरि विजाहि ।
वहु घाट घणइ नित होयँ मांहि ॥२०॥

परपंचु करैंइ जहरैं जगत्तु ।
पर अस्थुन देखइ सत्तु मित्तु ॥
खिण ही अयासि खिण ही पयालि ।
खिण ही म्रित मंडलि रंग तालि ॥२१॥

जिव तेल वुंद जल महि पडाइ ।
सा पसरि रहै भाजनह छाइ ॥
तिव लोभु करइ राई स चारु ।
प्रगटावै जगि में रह विथारु ॥२२॥

जो अघट घाट दुघट फिराइ ।
जो लगउ जेंव लग्गत घाइ ॥
इकि सवणि लोभि लग्गिय कुरंग ।
देह जीउ आइ पारधि निसंग ॥२३॥

पत्तंग नयण लोभिहि भुलाहि ।
कंचण रसि दीपग महि पडाहि ॥
इक घाणि लोभि मधकर भमंति ।
तनु केवइ कंटइ वेधि यंति ॥२४॥

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि ।
ते लग्गि पप्पच अप्पणु गमाहि ॥
रसि काम लोभि गयवर भमंति ।
मद अंधसि वध वंधन सहंति ॥२५॥

एक इक्कइ इंदिय तणे सुःख ।
तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ॥
पंच इंदिय लोभहि तिन रखुत्त ।
करि जनम मरण ते नर विगुत्त ॥२६॥

जंगमसि तपी जोगी प्रचंड ।
ते लोभी भमाए भमहि खंड ॥
इंद्राधि देव वहु लोभ मत्ति ।
ते वंछहि मन महि मण॰ वगत्ति ॥२७॥

चक्कवै महिम्य हुइ इक्क छत्ति ।
सुर पदइं वंछई सदा चित्ति ॥
राइ राणो रावत मंडलीय ।
इनि लोभि वसी के कें न कीय ॥२८॥

वण मंझि मुनीसर जे वसहि ।
सिव रमणि लोभु तिन हियइ मांहि ॥
इकि लोभि लग्गि पर भूम जाहि ।
पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ॥२६॥

सकुलीणो निकुलीणहे दुवरि (दुवारि)
लेहि लोम डिगाए करु पसारि ॥
वसि लोभि न सुण ही ध्रम्मु कानि ।
निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ॥३०॥

कीट पडे लोभिहि भमाहि ।
सचहि सु अंनु ले धरणि मांहि ॥
ले वनरसु हेठैं लोभि रत्तु ।
मखिका सुमधु संचइ वहुत्त ॥३१॥

ते किपन (कृपण) पडिय लोभह मझारि ।
धनु संचहि ले धरणी भडार ॥
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि ।
देखतन उठि हाथ झाडि जाहि ॥३२॥

गाथा

जहि हथ अडिक वरणं धनु संचहि सुलह करिवि भंडारे ।
तरहि केंव संसारे, मनु वुद्धि ऐ रसी जांह ॥३३॥

रड

वसइ जिन्ह मनिइ सिय नित वुद्धि ।
धनु विटवहि डहकि जगु सुगुर वचन चितिहि न भावइ ।
में में में करइ सुणत ढस्मु सिरि सूलु आवइ ।
अप्पणु चित्तु न रंजही जणु रंजावहि लोइ ।
लोभि वियाये जेइ नर तिन्ह मति ऐसी होइ ॥३४॥

गाथा

तिन होइ इसिय मत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि वाणी ।
विदहि पुन न पावो, वस किया लोभि ते पुरिष ॥३५॥

मडिल

इसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि ।
करइ ढीवु अप्पण वलु मंडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खंडइ ॥३६॥

रड

कोहु माया मानु परचंड ।
तिन्ह मझिहि राउ यहु, इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ उइ तेय वलु अधिकु सज्जहि ॥
यहु चहु महि कारणु अव घट घाट फिरंतु ।
एक लोभ विणु वसि किए चौगय जीउ भमंतु ॥३७॥

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति
ते जग महि जाणि यह, जणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोप हुव, दहू कलाय परगट पसारि ॥
अंज्ञा फेरी आपणी घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि नां सकै ता जीउ नरकिहि जाइ ॥३८॥

दोहा

सप्पउ रहु जैसे गरल उपने विप संजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभ के राग दोष दइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जापहि प्रगट संसारि धुत्त ॥
जह मित्त तरण तहं राग रंगु ।
जह सत्त तहां दोपह प्रसंगु ॥४०॥

जह रागु तहां तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोष तहां तह छिद्र चित्ति ॥
जह रागु तहां तह यति पत्तिट्ठु ।
जह दोष तहां तह काल दिट्ठु ॥४१॥

जह रागु तहां सरलउ सहाउ ।
जह दोषु तहां किछु वक्र भाउ ॥
जह रागु तह मनह प्रवारिण ।
जह दोषु तहां अपमानु जारिण ॥४२॥

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाभुन दीसइ महिय कोइ ॥
नत हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट वाडे दारण मग्गह मोख ॥४३॥

रड

पुत्त श्रीसिय लोभ धरि दोइ।
वलु मंडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इंद जाल दिखाइ करि, वसी भूत सहु लोगु कीयउ ॥
जोगी जंगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गइ धाइ ॥४४॥

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लख महि जथ जोड पुणि तत्थ सोईय ।
जे देखउ सोचि करि तासु वाभु नहु अत्थि कोइय ॥
विकट बुद्धि जिनि सहिमु सिय घाले कंम्मह फंध ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय दीसहि ते नर अंध ॥४५॥

दोहा

मणु व तिजंचह नर सुरह हीडावै गति चारि।
वीरु भणइ गोइम निसुणि लोभु बुरा संसारि ।।४६।।

रड

कहिउ स्वामी लोभु बलिवंडु।

तव पूछिउ गोइमिहि इसु समत्त गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिइ तउ वलु, को समत्थु कहुइ सु विदारइ ।।
कवण वुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाय।
किस पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाउ ।।४७।।

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु।

यहु सासण विम्मलइ सुणत ध्रम्मु भव बंध तुट्टहि ।
अति सूषिम भेद सुणि मनि संदेह खिण माहि मिट्टहि ।।
काल अनंतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोभु दुसहु इव ज्जित्तयइ संतोषह परसादि ।।४८।।

कहहु उपजइ कह संतोषु।

कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलुइ तउ मंडइ।
क्या पौरिपु सैनु तिसु, कास वुद्धि लोभह विहंडइ ।।
जोरु सखाई भविय हुइ पयडावै पहु मोखु।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सभद्रु संतोषु ।।४९।।

सहजि उपज्जइ चिति संतोषु।

सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाइ वलु करइ इत्तउ।
गुण पौरिषु सैन धम्मु, ज्ञान बुधि लोभह जित्तइ ।।
होति सखाई भवियहइ, टालइ दुरगति दोषु।
सुणि गोइम सरवनि कहउ इसउ सूरु संतोषु ।।५०।।

रासा छंद

इसउ सूरु संतोषु जिनिहि घट महि कियउ।
सकयत्थउ तिन पुरिसह संसारिहि जियउ ।।
संतोषिहि जे तिय ते ते चिरु नंदियहि।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ।।५१।।

जग महि तिन्ह कीनीह जि संतोपिहि रम्मियं ।
पाप पटल अंधारसि अन्तर गति दंम्मिय ।।
राग दोप मन मलिन खिरणु इकु जाणियइ ।
सत्तु मित्तु चितंतरि सम करि जाणियइ ।।५२।।

जिन्ह संतोपु सरवाई नित चडइ कला ।
नाद कालि संतोप करइ जीयह कुसला ।।
दिनकरु यहु संतोपु विगासइ ह्रिद कमला ।
सुर तरु यहु संतोपु कि वंछित देइफला ।।५३।।

रयणायरु संतोपु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ संडहि मनोरथ सकल विधि ।।
.... ।
जे सतोपि संमाणे तिन्हभउ सभु गयउ ।।५४।।

जिन्हहि राउ संतोपु सु तुट्ठउ भाउ धरि ।
परखडी पर दव्वि न छीपहि तेइ हरि ।।
कूडु कपटु परपंचु सुचित्ति न लेखिहहि ।
तिणु कंचणु मणि लुद्धसि सम करि देखिहहि ।।५५।।

पियउ अमिय संतोपु तिन्हहि नित महासुखु ।
लहिउ अमर पद ठाणु गया पर भमण दुखु ।।
राइहंस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्मह परिख तेव हीयै करइ ।।५६।।

आवै सुहमति ध्यानु सुवुद्धि हीयै भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुव्यानु कुवुधि हियै तजइ ।।
लेइ न किसही दोसु कि गुण सव्वह गहइ ।
पडइ न आरति जीउ सदा चेतन रहइ ।।५७।।

जाहि व्वक्क परणाम होहि तिसु सरल गति ।
छप्प जिउ निम्मलउ न लग्गाहिं मलण चित्ति ।।
ससि जिव जिन्ह पर कीर्त्ति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कंधु गरुव भारह सहइ ।।५८।।

सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु वलु ।
पुड यणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ॥

इसउ अहै संतोषु गुणिहि वनियै जिवा ।
सो लोभहं खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ॥५९॥

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति दिढु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ॥

जिसु ते कल वडिम चडइ होइ सकल जगिप्रीय ।
जिन्ह घटि यहु भव दीपिय पुन्न प्रिकिति जे जीय ॥६०॥

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि ॥

गोइम सिउ परवीणु पयंपिउ ।
इसउ संतोषु भवप्पति जंपिउ ॥६१॥

चंदाइणु छंदु

जंपियै एहु संतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अछौ थिते ॥

जे ससा सुंदरी चित्ति हे आवए ।
जीउ तत्त खिणे वंछिय पावए ॥६२॥

संवरो पुत्तु सो पयडु जाणिज्जए ।
जासु औलंवि संसारु तारिज्जए ॥

छेदि सौ आसरै दूरि नैं वारए ।
मुत्ति मझ मिले हेल संचारए ॥६३॥

खतियं तासु को लंगणा वन्नियं ।
दुज्जणं तेउ भंजेइ पास नियं ॥

कोह अगे गाह दझंति जे नरा ।
ताह संतोस ए सोम सीयंकरा ॥६४॥

एहु कोटंवु संतोष राजा तणो ।
जासु पसाइ व झांति दंती मणो ॥
तासु नै रिहि को दुद्धना आवए ।
सो भडो लोभ हषो जुग वावए ॥६५॥

दोहा

खो जुग वावइ लोभ कउ, ए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो संतोषु मनि संगहहु, कहियउ तिहुँ वणाणाहि ॥६६॥

गाथा

कहियउ तिहु वण णाहो, जाणहु संतोषु एहु परमाणो ।
गोइम चिति दिढुकरु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ॥६७॥

सुणि वीर वयण गोइमि आणिउ, संतोषु सूरु घटमझे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि मेले चउरंगु सयनु अप्पणु ॥६८॥

रड

चित्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसा इणु तम कियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलइ ।
रोमावलि उद्धसिय, काल रूइ हुइ भुवह तोलइ ॥
दावानल जिउ पज्जलिउ नयणनि लाडियं चांडि ।
आज संतोषह खिउ करउ जड मूलहु उप्पाडि ॥६९॥

दोहा

लोभिहि कीयउ सोचणउ हूवउ आरति ध्यानु ।
आइ मिल्या सिरु नाइ करि, झूठु सवलु परधानु ॥७०॥

पटपदु

आयउ झूठु पधानु मंतु तंत्त खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक यद्धउ थीयउ ॥
माया कलहि कलेसु थापु संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आद अद्धाम्मि कियउ पख ॥
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ, रागि दोषि आइरू लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वलु देखि करि, लोहुराउ तव गहगहिउ ॥७१॥

मडल्लि

गह गहियउ तव लोहु चितंतरि ।
वज्जिय कपट निसाय गहिर सरि ॥
विषय तुरंगिहि दियउ पलाणउ ।
संतोषह दिसि कियउ पयाणउ ॥७३॥

आवत सुणिउ संतोष तत्त क्षिणि ।
मनि आनंदु कीयउ सु विचक्षिणि ॥
तह ठइ सयनह पति सतु आयउ ।
तिनि दलु अप्पणु वेगि वुलायउ ॥७४॥

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरपिउ संतोपु सुरु वहु भाए ।
जिस ढार सहस अंग सो मिलियइ सीलु भडु आइ ॥७५॥

गीतिका छंदु

आईयौ सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारित संवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरू ॥
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु संतोप राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७६॥

सासणिहि जय जय कारू हूवउभग्गि मिथ्याती दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कि दूर लडेखडे ॥
केसरिय जीव गज्जंत वलु करि चित्ति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दल संतोपु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७७॥

गज ढल्ल जोग अचल गुढियं तत्तह यही सार हे ।
वड फरसि पंचिउ सुमति जुट्टहि विनि धान पचार हे ॥
अति सवल सर आगम छुट्टहि असणि जगु पावस घणो ।
इव मेलि दलु संतोपु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७८॥

पट पदु

मंडिउ रणु लिनि सुभटि सैनु सभु अप्पण सज्जिउ ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगम विज्जउ ॥

पव्वान्यौ ध्यातमु पयउ अप्पणु दल अंतरि ।
सूर हियै गह गहहि धसहि काइर चित्तंतरि ।।

उतु दिसि सुलोभु छलु तक्क वैवलु पवरिय णिय तणि तुलइ ।।
संतोषु गरुव मे रह,सरि सुर सुकिय वण भय णिणु खलइ ।।८०।।

गाथा

किं खलि है भय पवणं, गरुवउ संतोषु मेर सरि अटलं ।
चवरंगु सयनु गज्जिवि रणि अंगणि सूर वहु जुडियं ।।८१।।

तोटक छंदु

रण अंगणि जुट्टय सूर नरा ।
तहि वज्जहि भेरि गहीर सरा ।
तह वोलउ लोभु प्रचंड भडो ।
हुणि जाइ संतोष पयालि दडो ।।८२।।

फिटु लोभ न वोलहु गव्व करे ।
हुण कालु चड्या है तुम्ह सिरे ।।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो ।
जह जाहिन छोडउ तथ खिणो ।।८३।।

जह लोभु तहां थिरु लछि वहो ।
दरि सेवइ उभउ लोउ सहो ।।
जिव इद्रिय चित्ति संतोषु करि ।
ते दीसहि भिख्य भयंति परे ।।८४।।

जह लोभु तहां कहु कत्थ सुखो ।
निसि वासुरि जीउ सहंत दुखो ।
सयतोषु जहां तह जोति उसो ।
पय वंदहि इंद नरिंद तिसो ।।८५।।

सयतोप निवारहु गव्वु चित्ते ।
हउ व्यापि रह्या जगु मंझि तिसो ।।
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे ।
सहि जीय सि जीयहि मुह्यु लगे ।।८६।।

सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी ।
सव थित्ति उपाडउ तुम्ह तणी ॥
हउ तुझ विदारउ न्यानि खगे ।
सहि जीय पठावउ मुत्ति मगे ॥८७॥

हउ लोभु अचलु महा सुभटो ।
जगु मैं सहु जितिउ वंध पटो ॥
सभि सूर निवारउ तेज मले ।
महु जित्तइ कौणु समत्थु कले ॥८८॥

तइ अत्थि सतायउ लोगु घणा ।
इव देखहु पौरिषु मुझ तणा ॥
करि राडउ खंड विहंड घणा ।
तर जेवउ पाडउ मूढ जडा ॥८९॥

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने ।
तव झूठु उठायउ वेरिण तिने ॥
साइ आपउ सूरु उठाइ करो ।
सतिरा इहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तव वीडउ लीयउ भानि भडे ।
उठि चल्लिउ संमुह गज्जि गुडे ॥
वलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणा ।
पुरषो जुग वायउ तासु तणा ॥९१॥

इव दुक्क उछोहु सुजोडि अणी ।
मनि संक न मानइ और तणी ॥
तव उट्ठि महाव्रत लग्गु वले ।
खिण मझि सुधाल्यौ छोहु दले ॥९२॥

भडु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे ।
वलु पौरिष अप्पय सैन सजे ॥
तव देखि ववेक चड्या अटलं ।
दह वट्ट किया सुइ मज्जि वलं ॥९३॥

वहु माय महा करि रूप चली।
महु अग्गइ सूरउ कवगु वली ॥
दुक्कि पौरपु अज्ज विचीरि किया।
तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जव माय पडी रण मझ खले।
तव आइय कंक गजंति वले ॥
तव उट्ठि खिमा जव घाउ दिया।
तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

अयन्नानु चल्या उठि घोर मते।
तिसु सोचन आईया कंपि चिते ॥
उहु आवत हाक्या ज्ञानि जवं।
गय प्राण पड्या धरि भूमि तवं ॥९६॥

मथ्यातु सदा सहि जीय रिपो।
रूद रूपि चड्या सुइ सज्जि अपो ॥
समक्कतु डह्या उठि जोणि अणी।
धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठसि सज्ज चडे विषमं।
जणु छायउ अंवरु रेणु भमं ॥
तपु मानु प्रगासिउ जाम दिसे।
गय पाटि दिगंतरि मझि धुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सवु आसरयं।
तिनि पौरिषु वठिइ ता करयं ॥
जव संवरू गज्जिउ घोरि घटं।
उहु झाडि पिछोडि कियाद वटं ॥९९॥

स रागिहि धुत्तउ लोउसहो।
रण अंगणि लग्गउ मंझि गहो ॥
वयरागु सुधायउ सज्जि करे।
इव जुझि विताड्यौ दुट्ठ अरे ॥१००॥

यहु दोपु जु छिद गहंति परं।
रण अंगणि उडाहि सिरं ॥

उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घणं ।
खिण मज्झ जलायउ दोषु तिणं ॥१०१॥

कुमतिहि कुमारगि सयनु नड्या ।
गय जेउ गजंतउ आइ जुड्या ॥

खिण मत्तु परक्कम सिंघ परे ।
तिसु हांक सुणं तप यहु धरे ॥१०२॥

पर जीय कुसील जु वट्ठ करै ।
रण मज्झि भिडंनु न संक धरै ॥

वभवत्तु समीरणु धाइ लगं ।
कुर विदजि वागय पाटि दिगं ॥१०३॥

दुखहुं तजिदु गय दण सलो ।
साइज दिउ आइ निसंक मलो ॥

परमा सुखु आयउ पूरि घट ।
उहु आडि पिछोडि कियाद वटं ॥१०४॥

वहु जुझिय सूर पचारि घणे ।
उइ दीसहि जुटत मज्झि रणे ॥

किय दिन्नु रसातलि वीर वरा ।
किय तज्जित गए वलु मुक्कि घरा ॥१०५॥

अन दंसण कंद रहुंत जहां ।
इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहां ॥

यहु पैतु संतोषह राइ चड्या ।
दलु दिट्ठउ लोभिहि सैनु पड्या ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठउ पडिउ दलु जाम ।
तव धुणियउ सीस कर अन्ध जेउ सुझिउ न अग्गउ ।
जणु घेरिउ लहरि विषु कच कचाइउ विधाइ लगउ ॥

करइ सुअकरणु आकतउ किपिन वुझइ पट्ठु ।
जेरु चराउ अति छलइ तकि मउ भंनइ भट्ठु ॥१०७॥

गाथा

रोसाइणु थरहरियं धरियं मन मझि रुद्द तिनि व्यानो ।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रंगिक्का छन्दु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मंडिउ वलु नि लाजि ।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे ॥

सिरि ताणिउ कपटु छतु, विषय खडगु कितु ।
छदमु फरियलितु संमुह धरे ॥

गुण दसमेइ ठाणै लगु, जाइ रोक्यौ सूर मगु ।
देइ वहु उपसग्गु जगत अरे ॥

असे चडिउ लोभ विकटु, घूतइ घूरत नटु ।
संतवइ प्राणह पटु पौरिपु करै ॥ ०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि खिणिहि चालइ मुडि ।
खिणु गयजे व गुडि पिणिहि चालइ मुडि ॥

खिणु रहइ गगनु छाइ, खिणिह पयालि जाइ ।
खिणि मचलोइ आइ ।

चउइहठे वाकै चरत न जाणै कोइ, व्यापैइ सकल लोइ ।
अवेक रुपिहि होइ जाइ संचरै ।

असे चडिउ लोभ विकटु, घूतइ घूरत नटु ।
संतवइ प्राणह षटु पौरिपु करै ॥११०॥

जिनि समि जिय लिखलइ, मालै तत बुधि छाइ ।
राखे ए वडह काइ देखत पडे ।

यह दीसइज परवथु, देस सैनु राजु गथु ।
जाण्या करि आप तथु, लाल चिर्पडे ॥

जांकी लहरि अनंत परि, घोरहैं सागर सरि ।
सकर कवणु तरि हिय अन्व ॥

असे चडिउ लोभ विकटु, घूतइ घूरत नटु ।
संतवइ प्राणह पटु पौरिपु करि ॥१११॥

जैसी करिणय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ।
पडि तिण संगि होइ, कि कि न करै।

तिसु तणि यवि विहि रंग, कौणु जाणँ के ते ढंग।
आगम लंग विलंग, खिणिहि फिरै ॥

उहु अनतप सारै जाल, करइक लोल पलाल।
मूल पेड पत्त डाल देइ उदरै ॥

अँसे चडिव लोभ विकट्ठु, धूतइ धूरत नट्टु।
संतवैइ प्राणह पट्ठु पौरिषु करि ॥११२॥

षटपदु

लोभ विकट्ठु करि कपट्ठु अमिट्ठु रोसाइणु चडियउ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इवजगु नडियउ

धरणि खंडि ब्रह्मंडि गगनि पयालिहि धावइ।
मीन कुरंग पतंग भ्रिग मातंग सतावइ ॥

जो इंद मुणिंद फणिंद सुरचंद सूर संमुह अडइ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ खिण सुउट्ठि संमुह जुडइ ॥११३॥

मडिल्ल

जव सुलोभि इतउ वलु कीयउ।
अविक कण्टु तिन्हें जीयंह दीयउ ॥

तव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ।
राउ संतोषु इनह परि सज्जिउ ॥

रंगिका छन्दु

इव साजिउ संतोप राउ, हुवउ धम्म सहाउ।
उठिउ मनिहि भाउ आनदु भयं ॥

गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हूवउ जोग पहाणु।
आयउ सुक्ल झाणु तिमरु गयं ॥

जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल।
हृदय कवल दल खिडि पतदे ॥

यैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति।
छेदिय लोभह थिति चडिउ पदे ॥११५॥

तनिक पच्चु संजमु धारि, सत दह परकारि ।
तेरह विधि सहारि, चारितु लियं ।।

तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अंगिहि आणि ।
वैठउ गुणह ठाणि उदोत कियं ।।

तम कुमतु गइय घुसि, धौलिउ जगतु जसि ।
जैसेउ पुंनिउ ससि, निसि सरदे ।।

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ।।११६।।

जिन वंधिय सकल दुट्ठु, परम पाय निघट्ठु ।
करत जीयह कठ, रयणि दिणो ।।

जगि हो तिय जिन्हहि प्राण, देतिय नमुति जाण ।
नरय तणिय वाण भोगत घणो ।।

उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुह लेइ ।
सुपनि न दीसे तेइ अवरु कंदे ।।

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ।।११७।।

देव दुंदही वाजिय घण सुर मुनि गह गण ।
मिलिय भविक जण, हुंवर लियं ।।

अंग ग्यारह चौदह पूव्व, दियारे प्रगट सव्व ।
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि गलियं ।।

जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरषु किय ।
संतोष उतिम जिय, धरमु वंदे ।।

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि किय ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ।।११८।।

षटपदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि अति गज्जिउ ।
उदउहु वउ सासणिहि सयनु आगमु मनु सज्जिउ ।।

हिंसा रहि हय वर तुं सुभदु चारितु वलि जुट्ठिउ ।
हाकि विमलमति वाणि कुमतिदल दरडि वट्ठिउ ।।

वंधिउ प्रचंडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ घुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ संतोष कहु लोभहु सहु इव जित्तियउ ॥११९॥

गाथा

जव जित्तु दुसहु लोहु, कीयउ तव चित्त मझि आनंदे ।
हूव निकट रजो गह गहियउ राउ संतोषु ॥१२०॥

संतोषुहु जय तिलउ जंपिउ, हिसार नयर मंझ में ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वंछिय सुक्ख ॥१२१॥

संवति पनरइ इक्याण भद्दवि, सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्क वारि स्वाति वृखे, लेउ तह जाणि वंमना मेण ॥१२२॥

रड

पढहि जे. के. सुद्ध भाएहि ।
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु वरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि वहुघरि ।

यहु संतोषहु जंय तिलय जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मंगल चौविह संघ कहु करीइ वीरु जिणराइ ॥१२३॥

इति संतोष जय तिलकु समाप्ता

[दि० जैन मंदिर नागदा, बून्दी ।]

बलिभद्र चौपई[1]

(रचनाकाल सं० १५८५)

चुपई

एक दिवस माली वनी गउ, अचरित देखी उभु रहथु ।
फल्या वृक्ष सवि एकि काल, जीवे वैर तज्यां दुःख जाल ।।४७।।

फरी २ जो वाला गुवन्न, समोसरणि जिन दीठा वन्नि ।
आव्या जाणी नेमिकुमार, मनस्करी जंपि जयकार ।।४८।।

लेई भेट भेट्यु भूपाल, कर जोड़ी इम भणि रसाल ।
रेविगिरि जगगुरु आवीया, सभा सहित मिव द्वावियां ।।४६।।

कृष्ण राय तस वाणी सुणी, हरष वदन हूउ त्रिकु खंड धणी ।
आलितोष पंचाग पसाउ, दिशि सनमुख थाई समीउराउ ।।५०।।

राई आदेश भेरी ख कीया, छपन कोडि हीयडि हरषीया ।
भव्य जीव दर्वाई समसि, करि ध्वीत एक मन माहि हसि ।।५१।।

पट हस्ती पाखरि परिगरयु, जाणे ऐरावण अवतरयु ।
घंटा रखना वण वणकार, विचि २ घुघर घम घम सार ।।५२।।

मस्तकि सोहि कुंकम पुंज, झरिदान ते मधुकर गुंज ।
वांसि ढाल नेजा फरिहरि, सिणगारी राइ आगिल धरि ।।५३।।

चड्यु भूप मेगलनी पूठि, देर दान मागल जन मूठ ।
नयर लोक अंतेउर साथि; धर्म तणि धुरि दीधु हाथ ।।५४।।

ढाल—सहीकी

समहर सज करी कृष्ण सांवरीया ।
छपन कोडि परिवरीया ।

छत्र त्रण शिर उपरि धरीया ।
राही रूखमणि सम सरीया ।।

साहेलडी जिणवर वंदण जाइ, नेमि तणा गुण गाइ ।
साहेलडी रे जग गुरु वंदण जाई ।।५५।।

---

१. ब्रह्म यशोधर कृत इस कृति एवं कवि की अन्य रचनाओं का परिचय पृष्ठ ८३ पर देखिये ।

ढोल तिवल घणु वाजां वाजि
ससर सबद सवि छाजि ।

गुहिर नाद नीसाणज गाजि
वेणा वंसवि राजि ॥सा०॥५६॥

आगलि अपछर नाचि सुरंगा, चामर ढालि चंगा ।
देइय दान ए ध्वार जिम गंगा; हीयडलि हरष अभंगा ॥
साहेलडी० ॥५७॥

मेगल उपरि चडाउ हो राजा, धरइ मान मन माहि ।
अवर राय मुझ सम उन कोई, नयणडे निम जिन चाहि ॥
साहेलडी० ॥५८॥

मान थंभ दीठि मद भाजि, लहलहि धजायए रूडी ।
परिहरी कुंजर पालु चालि, धरउ मान मति थोडी ॥
साहेलडी० ॥५९॥

समोसरण माहि कृष्णु पधारया साथि संपरिवार ।
रयण सिंघासण बिठादीठा, सिवादेवी तणउ मल्हार ॥
साहलडी० ॥६०॥

समुद्र विजय ए अवर बहू राजा वसुदेव वलिभद्र हरषि ।
करीय प्रदक्षण कुष्ण सु नमीया, नयडे नेम जिननरषि ॥
साहेलडी० ॥६१॥

वस्तु

हरषीया यादव २ मनह आणंदि ।
पुरुषोतम पूजा रचि नेमिनाथ चलणे निरोपम ।
जल चंदन अक्षत करि सार पुष्प वल चरू अनोपम ॥
दीप धूप सविफल धणा रचीय पूज वन हांथ ।
कर जोडी करि वीनती तु बलिभद्र वंधव साथी ॥६२॥

चुपई

स्तवन करि बंधवसार, जेठउ वमिलभद्र अनुज मोरार ।
कर संपुट जोडी अंजुली, नेमिनाथ सनमुख संमली ॥६३॥

भवीयण हृदय कमल तू सूर,जाई दुःख तुझ नामि दूर ।
धर्म्मसागर तु सोहि चंद, ज्ञान कण्णं इव वरसि इंदु ॥६४॥

तुझ स्वामी सेवि एक घडी, नरग पंथि तस भोगल जड़ी ।
वाइ वागि जिम वादल जाइ, तिम तुझ नामि पाप पुलाइ ॥६५॥

तोरा गुण नाथ अनंता कह्या, त्रिभुवन माहि घणा गहि गह्या ।
ते सुर गुरु वान्या नवि जाइ, अल्प बुधिमि किम कहाइ ॥६५॥

नेमनाथ नी अनुमति लही, वल केशव वे विठासही ।
धर्म्मदिश कह्या जिन तणां, खचर अमर नर हरख्या घणा ॥६६॥

एके दीक्षा निरमल धरी, एके राग रोष परिहरी ।
एके व्रत वारि सम चरी, भव सायर इम एके तरी ॥६८॥

दुहा

प्रस्नावलही जिणवर प्रति पूछि हलधर वात ।
देवे वासी द्वारिकां ते तु अतिहि विख्यात ॥६९॥

त्रिहुं खंड केरु राजीउ सुरनर सेवि जास ।
सोइ नगरी नि कृष्णनु कीणी परि होसि नास ॥७०॥

सीरी वाणी संभली बोलि नेमि रसाल ।
पूरव भवि अक्षर लिखा ते किम थाइ आल ॥७१॥

चुपई

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संधार ।
मद्य भांड जे नामि कही, तेह थकी बली वलसि सही ॥७२॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, बे बंधव निकलसुतिसि ।
तह्मह सहोदर जराकुमार, तेहनि हाथि मरि मोरार ॥७३॥

बार वरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि ।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुमार तव चाल्यु रानि ॥७४॥

कृष्ण द्वीपायन जे रपिराय, मुकलावी नियर खंड जाइ ।
बार संवछर पूरा थाइ, नगर द्वारिका आ चुराइ ॥७५॥

ए संसार असार ज कही, धन योवन ते थिरता नहीं ।
कुटंव सरीर सहू पंपाल, ममता छोड़ी धर्म्म संभाल ॥७६॥

पजून संबुनि भानकुमार, ते यादव कुल कहीइ सार ।
तीणे छोड्यु सवि परिवार, पंच महाव्रय लीधु भार ।।७७।।

कृष्ण नारि जे आठि कही, सजन राइ मोकलावि सही ।
अह्मु आदेश देउ हवि नाथ, राजमति नू लीधु साथ ।।७८।।

वसु देव नंदन विलखु थइ, नमीय नेमि निज मंदिरगउ ।
बार वसनी अवधि ज कही, दिन सवे पूगे आवी सही ।।७९।।

तिणि अवसरि आव्यु रषिराय, लेईय ध्यान ते रंहयु वनमांहि ।
अनेक कुंमर ते यादव तरणा, धनुष धरी इमवाग्या घणा ।।८०।।

वन खंड परवत हीडिमाल, वाजिलूय तप्पा ततकाल ।
जोता नीर न लाभि किहा, अपेय थान दीठा ते तिहां ।।८१।।

[गुटका नैणवा पत्र–१२१–१२३]

———— ——

महावीर छंद[1]

प्रणमीय वीर विबुह जण रंजण, मदमइ मान महा भय भंजण।
गुण गण वर्णन करीय वखाणु, यती जण योगीय जीवन जाणु ।।

नेह गेह शुह देश विदेहह, कुंडलपुर वर पुह विसुदेहह।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ ।।१।।

सरस सुदरि सुगुण मंदर पीयु तसु प्रयकारिणी।
आगि रंग अनंग सगति सयल काल सुवारिणी ।।

वर अमर अमरीय छपन कुमरीय माय सेवा सारती।
स्नान मान सुदांन भोजन पक्ष वार सुकारती ।।२।।

धनद यक्ष सुपक्ष पूरीय रयण अंगणि वरषतो।
तव धम्म रम्म महप्प देखीय सयल लोकने हरुसतो ।।३।।

मृगयनयणी पछिम रयणी सयन सोल सुमाणइ।
विपुल फल जस सकल सुरकुल तित्थ जन्म वखाणइ ।।४।।

दीठो मद मातंग मणोहर, गौहरि हरि प्रीउदाम शसी।
पूषण जझस युग्म सरोवर सागर सिंहासन सुवसी ।।
देव विमान असुर घर मणिकइ निरगत धूम कृशानुचयं।
पेखीय जागीय पूछीय तस फल पति पासि संतोष भयं ।।५।।

पुण्पका मति अवतरीयो जिनपति।
इंद्र नरेंद्र कराव्या वहु नति ।।
जात महोछव सुरवरिं कीधो।
दान मान दंपतिनि दीधो ।।६।।

वाधिइ गरभ मार नाहि त्रिवलीहार करिइ सुख विहार शोक हरि।
वरसि रयण रंगि, धणह धनद धनद चंगि छपन कुमारी संग सेव करि ।।

पूरीय पूरा रे मास, पूरवि सयल आस, हवोउ जनम तास मासि भलो।
जाणी सयल इंद्र-भावि विगद तंद्र, आवीय सुमति मंद्रणाण निलो ।।७।।

---

१. भट्टारक शुभचन्द्र एवं उनकी कृतियों का परिचय पृष्ठ ९३ पर देखिये।

सुहम आपणि हाथि थापीय मंदर माथि अमरनि कर साखिणहन कीयो ।
देइय सन्मति नाम सारी जनम काम, पामीय परम धाम माहन दीयो ॥

बाचीय नाटक इंद, भरीय भोगनुकंद नमिय मह जिणंद इंद गया ।
वाधिइ विवुध स्वामी धरि अवधि भामी, थयासुभगगामीणाण मयरा ॥८॥

जुगि जोवन अंगि धरिए रंगि त्रीस वरस विभुभयो ।
एक निमित देखीय धरम पेखी निगंथ मारगि तेगयो ॥

चउ अधिक बीसह मूंकी परीसह णाण रूप मुनीश्वरो ।
.... ॥

श्री वीरस्वामी मुगति गामी गर्भहरण ते किम हुउयो ।
ते कवयानंदन जगतिवंदन जनक नाम ते कुण भये ॥९॥

रयण वृष्टि छमास श्री दिस दनि तैं कहिनि करी ।
स्वप्न सोल सुरीय सेवा गर्भ शुद्धि सु संचरी ॥

ऋषभदत्त विशाल शुक्रि देवनंदा शोणितं ।
वपु पिंड पुहुवि तेणि वाद्यो वृद्धि वाधि उन्नतं ॥१०॥

त्र्यासी दिवस रमसि वीसरीया ।
इन्द्र ज्ञान तिहां नवि संचरीया ॥

जाणी भक्षुक कुलि अवतरीया ।
गर्भ कल्याण किहां करीया ॥११॥

तिहां सयल सुरपति वीर जिनपति गर्भ कर्म ने जाणीयं ।
कुल कमल भूषण विगतदूषण नीच कुल ते आणीयं ॥

तस हरण खरखि हरण कश्यप पुहवि पटणि पाठव्यो ।
ते सुणउ लोका विगत शोका कर्मफल किम नाटव्यो ॥१२॥

जे जिन नाथि नही निषेध्यो ।
ते हर वा मघवा किम वेध्यो ॥
मरती सावी सवीय न राखी ।
ए चिन्ता तेणि किम भाखी ॥१३॥

गर्भ हर्‌यो ते केहु द्वार ।
जनमि मार्ग तैं सुणौउ प्रकार ।

जनम महोछव वली तिहां जोईइ ।
भमि गर्भ कल्याणक खोइई ॥१४॥

विचारि विचारि वीजि वारि किम नीकलतेगर्भभलो ।
उदारि उन्नत स्थूलत परिणत अवर कहुं एक कलितफलो ।

नर नरकावासी कम्महपासीकां नवि काडि देवगणा ।
शीता सुरपति लक्ष्मण नरपति नवि काढ्या द्रष्टांतल घणा ॥१५॥

वली नाल त्रूटि आयु खूटि किमहं जीविते वली ।
जे सुफल आंबू सरस लांबु अनेथि चहुटि किम भली ।

उदर कमलि गरभ ज मलि नाल माग्रं सहु लहि ।
पाप पाकि नाल वा (स) किं गर्भ पातकह सहुकहि ॥१६॥

रोपि रोपी रोपडनि अप्पि आणी वद्धइ ।
अन्येथि थी अन्यत्र लेता गरभ कुण निषेघए ॥

भ्रष्ट नष्ट द्रष्टांत दाखी लोकनि थिर कारइ ।
वर वीरवाणी विचार करतां तेहनि वली वारइ ॥१७॥

रोप सम सहु माय जाणु गर्भ फल सम साभलो ।
अनेथि थी अन्वेथि धरती कोंण कहितो नीमलो ॥

दोइ तात दूपण पाप लक्षण जिननि संभारिइ ।
अस्यु भाखि पाप दाखि शास्त्र ते किम तारइ ॥१८॥

जिननाथ सवसि करण उपरि खील खोसि गोवालीया ।
असम साहस साम्य मुंकी जिनह छूत्र वंगालीया ॥

वज्र रूप सरीर भेदी खीला खन किम खूचचइ ।
दोइ वीस परीसह अतिहि दुसह जिन्न कहो किम मुंचइ ॥१९॥

राज मूंकी मुगती शंकी देव दूख्यते किम धरिइ ।
इन्द्र आपि थिह थापि गुरु होइ ते इम करइ ॥

मूंकइ समता वरइ ममता वस्त्र वीटि सहु सुणिइ ।
हारि नामा अचेलभामा परिसह किम जिन भणइ ॥२०॥

जे भाषि अथी निलिलि,
मारग सुगति तणि मनरंगि ।
ते नवि जाइ सत्तम पुढवी,
अल्प पापि अथी माहव्वी ॥२१॥

माघवी पुढवी नहीं जावा यस्स पाप न संचउ ।
ते सुगति माग्र किम माणइ एह महिमा खंचउ ॥
सइ वरि अजी करि क ज्जानत्तक्षणनु दीक्षीउ ।
वंदण नमंसण तेह नेह्नि काइ तह्यो लक्षीउ ॥२२॥

स्त्री रूप पडिमा काइ न मानु जो उपामि शिवपुरं ।
नाम अवला कर्म सवला जीयवा किय आदरं ॥
कवल केवली करि आहार अणंतु सुहते किहां घरे ।
वेदणीय सत्ता आहार करतां रोग सघला संचरि ॥२३॥

नरकादि पीड़ा मरत कीडा देखिनि किम भुंजइ ।
णाण झाण विनाश वेदन क्षुधा की सहु सीझइ ॥
सर सरस वर्ली आहार करता वेदना वहु वुझइ ।
एक्क घरि अनेक आहार घरि घरि भम्मतां किम सुझइ ॥२४॥

एक घरि वर आहार जाणी जायतां जीह लोलता ।
आहार कारणि गेह गेहि हींडता अणाणता ॥
समोसरणि जा करइ भोजन तोहि मोटी मम्मता ।
भूख लागि अवरनीपरि आहार ले जिन गम्मता ॥२५॥

अठार दूषण रहित वीरि केवलणाण सुपामीउ ।
जन नयन मन तन सुघट हरण हर करण वर भरमामीउ ।
इंद मंद्र खगेंद्र शुभचंद नाथ परपति ईश्वरो ।
सयल संघ कल्या (ण) कारक धर्म वैश यतीश्वरो ॥२६॥

सिद्धारथ सुत सिद्धि वृद्धि वांछित वर दायकं ।
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायकं ॥
द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिंहांक सुमंडित ।
चामीकर वर वर्ण शरण गोतम यती पंडित ॥

गर्भ दोष दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण ।
शुभचंद्र सूरि सेवित सदा पुहवि पाप पंकह हरण ॥२७॥

इति श्री महावीर छन्द समाप्त

[दि० जैन मंदिर पाटोदी, जयपुर]

श्री विजयकीर्त्ति छन्द

अविरल गुण गंभीरं वीरं देवेन्द्र वंदितं वंदे,
श्री गौतम सु जंवु भद्र माघनंदि गुरुं ॥१॥

जिनचंद कुंदकुंद मृन्तत्वार्थप्ररूपकं सारं ।
वंदे समंतभद्रं पूज्यपादं जिनसेनमुनिं ॥२॥

अकलंकममलंमखिलं मुनिवृंदपद्मनंदि ।
यतिसारं सकलादिकीर्त्ति मीडे वोधभरं ज्ञानभूषणकं ॥३॥

वक्ष्ये विचित्र मदनैर्यति राजत विजयकीर्त्ति विज्ञानं ।
चंद्रामरेंद्रनरवरविस्मपदं जगति विख्यातं ॥४॥

विख्यात मदनपति रति प्रीति रंगि ।
खेल्लइ खड खड हसाइ सुचंगि ॥

तव सुण्योउ ददमट्ट द्रम छद्दामह ।
जय जय नादि घूजइ निज धामह ॥५॥

सुणि सुणि प्रीयि कस्यो रे ददामो,
कोण महिपति मभ आव्यो सामो ।
रंगि रमनि रीति सुण्यो निजादह ।
नाह नाह तुम घरि विसादह ॥६॥

नाद एह वैरि वग्गि रंगि कोइ नावीयो ।
मूलसंघ पट्ट बंध विविह भावि भावीयो ॥

तसट भेरी ढोल नाद वाद तेह उपन्नो ।
भणि मार तेह नारि कवण आज नीपन्नो ॥७॥

महा मइ मूलसंघ गरिद्ध, सुबह्यी गछ सुवछ वरिट्ठ ।
गुणह बलात्कार सीझइ काम, नंदि विभूषण मुतीयदाम ॥८॥

जण घण वंदि पुहुवि नंदीय जनीय वरो ।
सुज्ञानभूषण दुमद दूसण विहवंधरो ॥

तस पट्ट सुमुत्ती विजयहं कीर्त्ति एह थिरो ।
गुणनाथ सुछंदि यतिवर वृंदि पट्टि करो ॥९॥

पिये नरो मुनसरो सुमझ आण ।
दुघरो समाण ए नहीं कयं ।
अवुद्ध युद्ध द्यु भयं ॥१०॥

नाह बोल संमली रीति वाच उजोली बोल्लइ विचक्खणा ।
आलि मूंकि भोजणा ॥११॥

तव आणि न माणि वुद्धि पमाणि सत्थ सुजाणि वुद्धि घलं ।
सुणि काम सकोदह नाना दोहह टालि मोहह दूरि मलं ॥

सुणि कामह कोप्यो वयण विलोप्यो जुखह अप्यो मयण मणि ।
बोलावु से नार हीया केह्ला वेरीय तेहना विये सुणि ॥१२॥

वयण सुणि नव कामिणी दुख धरिइ महंत ।
कही विभासण मझहवी नवि वासो रहि कंत ॥१३॥

रे रे कामणि म करि तु दुखह ।
इंद्र नरेन्द्र मंगाव्या भिखह ॥

हरि हर वंभमि कीया रंकह ।
लोय सव्व मम वसीहु निसंकह । १४॥

इम कही इक टक में लावीउ ।
तत खणह तिहां सहु आवीयो ॥
मद मान क्रोध विभीसणा ।
तिहां चालइ मिथ्या दी जणा ॥१५॥

करि कामिणी गल्ल भल्ला मयंका ।
थण भारउडी यांण चाल्या मयंका ।

कोकिल न्नाद भम्यर झंकारा।
भेरि भंभां वाजि चित्त हारा ॥१६॥

वोल्लंत खेलंत चालंत धावंत धूरांत।
धूजंत हाक्कंत पूरंत मोडंत ॥
तुदंत भंजंत खंजंत मुक्कंत मारंत रंगेण।
फाडंत जाणंत घालंत फेडंत खग्गेण ॥१७॥

जाणीय मार गमणं रमणं यती सो।
वोल्यावइ निज वलं सकलं सुधी सो ॥
सन्नाह बाहु बहु टोप तुषार दंती।
रायं गणंयता गयो वहु युद्ध कंती ॥१८॥

तिहां मल्या रे कटक वहु वाजइ ददामा दहु नाचइ नरा।
मुकि मुंकइ रे मोटा रे बाण आपणु बल प्रमाण कंपइधरा ॥
धूजइ धूजि रे धनुषधारी मुंकइ अगल्यामारी आपणिवलि।
फेडि फेडि रे वैरी नाना म सारइ स्वामीनुं काम माहिमलि ॥१९॥

जंपइ जंपि रे कठोरनाद करि विषम वाद वेरीय जणा।
काढि काढि रे खडग खंड करिइ अनेक रंड मारिइ घणा ॥
वलगि वलगि रे वीर नि वीर पडि तुरंग तीर अस्यू भणि।
मुक्यो मुक्यो रे जाहि न जाहि मारुं अनही वोसाहीवयण सुणि ॥२०॥

तव नम्मुय देख्यु रे वल करि न आपणो।
बल मिथ्यात महामल उट्ठीय वड्यो।
वोरु समकित महा नाणउ ग्योठ उत्तम।
भाण करिय घणु करिय घणु पराणभलुंय भड्यो।
सहिं रे झूंटा नइ झूंटि मुकइ मोट रे।
मुंठि करइ कपट गूंढि वीर वरा।
उद्यौ रे कुबोध बोध भूंझइयों धनि।
योध करीय विषम क्रोध धरि धरा ॥२१॥

वली भणइ मयण राय उठुतु कुमत भाइ।
छंडाव्यो सयल ठाय सुणीय अस्यो।
तव देखीय यतीय जंपइ हवि आपनी सेना रे।
कंपइ उठो रे तरिक्षन अप्पिइ कुमइ हण्यो ॥२२॥

तव खंङ्ग खङ्गि भल्लभल्लि वाण वाणि मोकला ।
खर जुष्ट यष्टि मुष्ट मुष्टि दुष्ट दुष्टि फोकला ॥

एक नाथ नाथि हाथ हाथि माथ माथि कुट्टइ ।
वली रूंड रूंडि मुंड मुंडि तुंड तुंडि तुट्टइ ॥२३॥

इंद्रिय ग्रामह फीट उठामह मोहनो नामह टलीय गयो ।
निज कटक सुभग्गो नासण लग्गो चिंता मग्गो तवहं भयो ॥

महा मयण महीयर चड़ीयों गयवर कम्मह परिकर साथ कियो ।
मछर मद माया व्यसन विकाया पाखंड राया साथि लियो ॥२४॥

विजयकीर्त्ति यति मति अतिरंगह ।
भावना भांण कीया वली चंगह ॥

शम दम यम अगलि वल्लावि ।
मार कटक भंजी वोलावि ॥२५॥

तिहां तवलि दंदामा ढोल ध्रस्त कइ ।
भेरी भंभा भुगल फुंकइ ॥

विरद वोलइ जाचक जन साथि ।
वीर वढिव छुटि माथि ॥२६॥

भूंढा भूट करीय तिहां लग्गा ।
मयणराय तिहाँ ततक्षण भग्गा ॥

आगलि को मयणाधिप नासइ ।
ज्ञाम खंङ्ग मुनि अतिहं प्रकासइ ॥२७॥

भागो रे मयण जाइ अनंग वेगि रे ।
काइ पिसि रे मन रे मांहि मुंकरे ठाम ।

रीति रे पाप रि लागी मुनि कहिन वर ।
मागी दुखि रे काढि, रे जांगी जंपइ नाम ॥
मयण नाम रे फेडी आपणी सेना रे ।
तेडी आपइ ध्यान नी रेडी यतीय वरो ।
श्री विजय मनावीयु यति अभिनवो ।
गछपति पूरव प्रकट रीति मुगति वरो ॥२८॥

मयण मनावीयु आण जाण जण जुगति चलावि ।
वादीय वृंद विवंध नंद निरमल महलावि ॥

लब्धि सु गुम्मटसार सार त्रैलोक्य मनोहर ।
कर्क शतर्क वितर्क काव्य कमला कर दिरणयर ॥

श्री मूल संघि विख्यात नर विजयकीर्त्ति वांछित करण ।
जा चांद सूर ता लगि तपो जपइ सूरि शुभचंद्र सरण ॥२६॥

इति श्री विजयकीर्त्ति छंद समाप्ता

[दि० जैन मन्दिर पाटोदी]

वीर विलास फाग [1]

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ श्री भ० श्री महिचंद्र गुरुभ्यो नमः ॥

अकल अनंत लादीश्वर इश्वर आदि अनादि ।
जयकार जिनवर जग गुरु जोगीश्वर जेगादि ॥१॥

कवि जननी जग जीवनी मझनी आयी करि संभाल ।
अपितु शुभमती भगवती भारती देवी दयाल ॥२॥

.... ।
सिहि गुरु सुखकर मुनीवर गणधर गौतम स्वामि ॥३॥[2]

श्री नमि जिन गुण गाय सु पाय सु पुण्य प्रकार ।
समुद्र विजय नृप नंदन पावन विश्वाधार ॥४॥

शिवा देवी कुमर कोडामणो सोहामणो सोहायसु प्रधान ।
सकल कला गुण सोहण मोहण वलि समान ॥५॥

सहि जीसो भागि समावडो सुलूणू हरो कुलचन्द ।
निरुपमरूप रसालूणडो जादूयडो जगदानंद ॥६॥

---

१. वीरचन्द्र एवं उनकी कृतियों का वर्णन पृष्ठ १०६ पर देखिये।
२. मूल पाठ में मात्र एक ही पंक्ति दी गई है।

केलि कमल दल कोमल सामल वरण शरीर ।
त्रिभुवनपति त्रिभुवन तिलो नुणनीलो गुण गंभीर ॥७॥

माननी मोहन जिनवर दिन दिन देह दिपंत ।
प्रलंव प्रताप प्रभाकर भवहर श्री भगवंत ॥८॥

लीला ललित नेमीश्वर अलवश्वर उदार ।
प्रहसित पंकज पखंडी अंखडी उपि अपार ॥९॥

अति कोमल गल कंदल, प्रविमल वाणी विलाश ।
अंगि अनोपम निरुपम''' मदन निवास ॥१०॥

भराया वन प्रभु घर वस्यो संचर्यो सभा मझारि ।
अमर खेचर नर हरषीया नरखीया नेमि कुंमार ॥११॥

देव दानव समान सहू बहू मल्या यादव कोडि ।
फणी पति महीपति सुरपती वीनती करु कर जोडि ॥१२॥

सुंणि सुंणि स्वामीउं सामला सवलातूं साह सुतंग ।
प्रथम तंवहु सुख सम्पदा सुप्रदा भाग विचंग ॥१३॥

पीछ परमारथ मंनि धंरि आचरि चारिव चंग ।
आपि अप आराधज्यो साधज्यो शिव सुख संग ॥१४॥

उग्रसेन रायां केरी कुंमरी मनोहरी मनमथ रेह ।
साव सलूणा गोरड़ी, उरडी गुण तणी रेह ॥१५॥

मेगल ती अतिमलयती चालती चउरसु चंग ।
कटि तटि लंक लवूतर उदर त्रिवली भंग ॥२६॥

कठिन सुपीन पयोधर मनोहर अति उतंग ।
चंपकवनी चंद्राननी माननी सोहि सुरंग ॥२७॥

हरणी हरावी निज नयणडि वयणड़ि साह सुरंग ।
दंत सुपंती दीपंती सोहती सिर वेणी वंध ॥१८॥

कनक केरी जसी पूतली पातली पदमनी नारि ।
सतीय शिरोमणि सुंदरी अवतरी अवनि मझारि ॥१९॥

ज्ञान विज्ञान विचक्षणी सुलक्षणी कोमल काय ।
दान सुपात्रह पोखती पुजती श्री जिन पाय ॥२०॥

राज्यमती रलीयामणी सोहामणी सुमधुरीय वाणि ।
भंभर तोली भामिनी स्वामिनी सोहि सुराणी ॥२१॥

रूपि रंभा सु तिलोत्तमा उत्तम अंगि आचार ।
परिणऊं पुण्यवंती तेहनि नेह करि नेमि कुंमार ॥२२॥

तव चिंतवि सुख दायक जग नायक जिनराय ।
चारित्र वरणीय कर्म मर्महजीमंज आज ॥२३॥

जव जिन पाणी ग्रहण तणी हमणीं हइडि विचारि ।
सुर नर तव आनंदीया वंदीया जय जयकार ॥२४॥

तव बलदेव गोविंद नरिंद सुरिंद समान ।
रथि विठ जगपती जव तव सहु चालिजान ॥२५॥

घंटा टंकार वयमटम कथा चमकथा चतुर सुजाण ।
देवद दामाद्रकथा उमकथाढोल नीसाण ॥२६॥

भेरी न भेरी मह अरि झल्लरि झं झंकार ।
वीणा वंश वर चंग मृदंग सु दोंदों कार ॥२७॥

करडका हाल कंसाल सूताल विशाल विचित्र ।
सांगां सरण इव संख प्रमुख बहु वाजित्र ॥२८॥

पाखरा तार तो खार ईसार ता तेजीऊरंग ।
मद भरि मेगल मलपता मलकता चाला सुचंग ॥२९॥

सबल संग्रामि सवूझजे झूझ झालिक झूझार ।
धाया धार घसंता हसंता हाथि हथीयार ॥३०॥

समरथ रथ सेजवाला पालां नर पुहु विन माय ।
वाहाण विमाण सुजाण सुखासन संख्यन थाइ ॥३१॥

उर्द्ध ध्वज नेजाराजे स खिरि सीस करि सोह समान ।
विचित्र सुछत्र चामर भरि अंवरी छाह्यो माण ॥३२॥

सुगंध विविध पकवांन भोजन पान अमीय समान ।
जमण जमंती जाय जान सुवान वावंती विधान ॥३३॥

मृग मद चंदन वोलत बोल सुरोल अपार ।
सुर तर अंवर भरा केसर कपूर सार ॥३४॥

केतकी मालती माल गोजाल सु चंपक चंग ।
बोलसरी वेल्य पाडल परिमल मलया भृंग ॥३५॥

वहु विध भोग पुरंदर सुन्दर सहिजि स्वरूप ।
चतुर पणि चालि जान सुभान मली वहु भूप ॥३६॥

दुख दालिद्र दूरि गया आपयाँ दान उदार ।
सजन सहु संतोपीया पोखीया वहु परिवार ॥३७॥

वंदी जन वरद बोलि धणा जिव तथा विविध विसाल ।
वरवाजाय वाय लगाय ण गाय गुण माल ॥३८॥

इन्द्र इन्द्राणी उवारणा जु छणां करि धरणेस ।
नव रसि नाचि विलासणी सुहासणि भरे सेस ॥३९॥

धवल मंगल सोहांमणां भामणा लेव नर नारि ।
लूणा उतारे कुंमारी स मारी सहु सार सणिगार ॥४०॥

जयतूं जीवितूं नन्द जिणंद जगंद जगीस ।
युवती जगती यम जंपती कुलवती दिय आशीश ॥४१॥

इम प्रभु परणे वासांत तोरणि जाइ जान ।
जान जाणी जव आवती नरपती उग्रसेन ताम ॥४२॥

संचरी साहामो संभ्रमकरी आणंद भरी अणमेवि ।
मलया महा जनमन रंगे अंगे आलिंगन लेवि ॥४३॥

युगति जोइ जानीवासि उल्लासि उतारी जान ।
आसन सयन भोजन विधि मन सिद्धिदीधांयान ॥४४॥

नयरि मझारि सिणगारी सूनारी ताहि सुविचार ।
तहांतव हासव मांडीया छड़ीया अवर व्यापार ॥४५॥

ध्वजि तोरणि सोहि घरि घरि घरि धरिवानरवाल ।
फूल पगर भरलां घरि घरि घरि घरि झाकझमाल ॥४६॥

घरि घरि कुंकुम चंदन तणां छाटणाँ छड़ा देवरायि ।
घरि घरि मणि मुगता फल चाउल चाक पुराय ॥४७॥

नव नवां नाटिक घरि घरि घरि घरि हरष न मायि ।
गिरिनारिपूरि केरी सुन्दरी रंग भरि मंगल गाइ ॥४८॥

चोवटां चहूटां सणगारीयां मारी वाध्यां पटकुल ।
पंच शवद वाजि घरि घरि घरि घरि दंत तंबोल ॥४६॥

घरि घरि गाय वधामणां रलीयां मणा मन मिली ।
घरि घरि अंग उल्लास सुरासुर मिरलि ॥५०॥

भट्टारक रत्नकीर्त्ति के कुछ पद

[१] राग–नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि ।
कैसे विराग धरयो मन मोहन, प्रीत विसारि हमारी ॥१॥

सारंग देखि सिधारे सारंगु, सारंग नयनि निहारी ।
उनपे तंत मंत मोहन हे, वेसो नेम हमारी ॥नेम०॥२॥

करो रे संभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि ।
'रतनकीरति' प्रभु तुम बिन राजुल विरहानलहु जारी ॥नेम०॥३॥

[२] राग–कन्नडो

कारण कोउ पिया को न जाने ।
मन मोहन मंडप ते वोहरे, पसु पोकार वहाने ॥कारण०॥१॥

मो थे चूक पडी नहिं पलरति, भ्रात तात के ताने ॥
अपने उर की आली वरजी, सजन रहे सव छाने ॥कारण०॥२॥

आये वहोत दिवाजे राजे, सारंग मय धूनी ताने ।
'रतनकीरति' प्रभु छोरी राजुल, मुगति वधू विरमाने ॥३॥

[३] राग–देशाख

सखी री नेम न जानी पीर ।
वहोत दिवाजे आये मेरे घरि, संग लेर हलधर वीर ॥स०१॥

नेम मुख निरखी हरषीयन सूं; अब तो होइ मन धीर ।
तामें पशुय पुकार सुनि करि, गयो गिरिवर के तीर ॥सखी०॥२॥

चंद्रवदनी पोकारती डारती, मंडन हार उरचीर ।
'रतनकीरति' प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो थीर ॥सखी०॥३॥

[४] राग—देशाख

सखि को मिलावो नेम नरिंदा ।
ता बिन तन मन योवन रजत हे, चारु चंदन अरु चंदा ॥सखि०। १॥
कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुःसह मदन को फंदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दुख को कंदा ॥सखि०॥२॥
तुम तो शंकर सुख के दाता, करम काट किये मंदा ।
'रतनकीरति' प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ॥सखि०॥३॥

[५] राग—मल्हार

सखी री सावनि घटाई सतावे ।
रिमि झिमि वून्द वदरिया वरसत, नेम नेरे नहि आवे ॥सखी०॥१॥
कूंजत कीर कोकिला वोलत, पपीया वचन न भावे ।
दादुर मोर घोर घन गरजत, इन्द्र धनुष डरावे ॥सखी०॥२॥
लेख लिखू री गुपति वचन को, जदुपति कु जु सुनावे ।
'रतनकीरति' प्रभु अव निठोर भयो, अपनो वचन विसरावे ॥सखी०॥३॥

[६] राग—केदार

कहां थे मंडन करूं कजरा नैन भरुं, होऊं रे वैरागन नेम की चेरी ।
शीश न मंजन देउं मांग मोती न लेउं, अव पोरहुं तेरे गुननी वेरी ॥१॥
काहू सूं वोल्यो न भावे, जीया में जु ऐसी आवे ।
नहीं गये तात मात न मेरी ॥
आली को कह्यों न करे, वावरी सी होइ फिरे ।
चकित कुरंगिनी युं सर घेरी ॥२॥
निठुर न होइ ए लाल, वलिहुं नैन विशाल ।
कैसे री तस दयाल भले भलेरी ॥
'रतनकीरति' प्रभु तुम विना राजुल ।
यों उदास गृहे क्युं रहेरी ॥३॥

भट्टारक कुमुदचन्द्र के कुछ पद

[१] राग–नट नारायण

आजु मैं देखे पास जिनेंदा ।

सांवरे गात सोहामनि मूरति,

शोभित शीस फर्णेदा ॥आजु०॥१॥

कमठ महामद भंजन रंजन ।

भविक चकोर सुचंदा ।

पाप तमोपह भुवन प्रकाशक ।

उदित अनूप दिनेंदा ॥आजु०॥२॥

भुविज–दिविज पति दिनुज दिनेसर ।

सेवित पद अरविंदा ।

कहत कुमुदचन्द्र होत सबे सुख ।

देखित वामा नंदा ॥आजु०॥३॥

[२] राग–सारंग

जो तुम दीन दयाल कहावत ।

हमसे अनाथनि हीन दीन कूं काहे नाथ निवाजत ॥ जो तुम०॥१॥

सुर नर किन्नर असुर विद्याधर सब मुनि जन जस गावत ।

देव महीरुह कामधेनु ते अधिक जपत सच पावत ॥ जो तुम०॥२॥

चंद चकोर जलद ज्युं सारंग, मीन सलिल ज्युं ध्यावत ।

कहत कुमुद पति पावन तुंहि, तुंहि हिरदे मोहिभावत ॥ जो तुम०॥३॥

[३] राग धन्यासी

मैं तो नरभव वाधि गमायो ।

न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर ।

काम भलो न कमायो ॥ मैं तो० ॥१॥

विकट लोभ तें कपट कूट करी ।

निपट विषै लपटायो ॥मैं तो०॥

विटल कुटिल शठ संगति वैठो ।

साधु निकट विघटायो ॥मैं तो०॥२॥

कृपण भयो कछु दान न दीनों ।
दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोवन जंजाल पड्यो तब ।
परत्रिया तनुचित लायो ॥मैं तो०॥३॥
अंत समै कोउ संग न आवत ।
झूठहि पाप लगायो ॥
'कुमुदचन्द्र' कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नहीं गायो ॥मैं तो०॥४॥

[४] राग–सारंग

नाथ अनाथनि कूं कछु दीजे ।
विरद संभारी धारी हठ मन तें, काहे न जग जस लीजे ॥
नाथ०॥१॥
तुही निवाज कियो हूं मानप, गुण अवगुण न गणीजे ।
व्याल बाल प्रतिपाल सविपतरु, सो नहीं आप हणीजे ॥
नाथ०॥२॥
में तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूईजे ।
जो तुम जानत और भयो है, वाधि बाजार बेचीजे ॥
नाथ०॥३॥
मेरे तो जीवन धन वस, तमहि नाथ तिहारे जीजे ।
कहत 'कुमुदचंद्र' चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ॥
नाथ० ॥४॥

[५] राग–सारंग

सखी री अबतो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत ।
छण छण छीजत गात ॥सखी०॥१॥
नहि न भूख नहीं तिसु लागत ।
घरहि घरहि मुरझात ॥
मन तो उरभी रह्यो मोहन सुं ।
सेवन ही सुरझात ॥सखी०॥२॥

नाहि ने नीद परती नितिवासर ।
होत विसुरत प्रात ॥

चन्दन चन्द्र सजल नलिनीदल ।
मन्द मरुद न सुहात ॥सखी०॥३॥

गृह आंगनु देख्यो नहीं भावत ।
दीन भई विललात ।

विरही वाउरी, फिरत गिरि गिरि ।
लोकन ते न लजात ॥सखी०॥४॥

पीउ विन पलक कल नहीं जीउ को ।
न रूचित रसिक गु वात ॥

'कुमुदचन्द्र' प्रभु दरस सरस कूं ।
नयन चपल ललचात ॥सखी०॥५॥

* चन्दा गीत *

(भ० अभयचन्द)

विनय करी रायुल कहे चन्दा वीनतडी अब धारो रे ।
उज्जलगिरि जई वीनवो, चन्दा जिहां छे प्राण आधार रे ॥१॥

गगने गमन ताहरु रुवडू, चंदा अमीय वरषे अनन्त रे ।
पर उपगारी तू भलो, चंदा वलि वलि वीनवु संत रे ॥२॥

तोरण आवी पाछा चल्या, चंदा कवण कारण मुझ नाथ रे ।
अम्ह तणो जीवन नेम जी, चंदा खिण खिण जोऊं छूं पंथ रे ॥३॥

विरह तणा दुख दोहिला, चंदा ते किम में सहे वाप रे ।
जल विना जेम माछली, चंदा ते दुख में न कहे वाप रे ॥४॥

में जाण्युं पीउ आवस्ये, चंदा करस्ये हाल विलास रे ।
सप्त भूमि ने उरदे चंदा भोगवस्यु सुख राशी रे ॥५॥

सुन्दर मंदिर जालीया चंदा झल के छे रत्नती जालि रे ।
रत्न खचित रूडी सेजडी, चंदा मगमगे धूप रसाल रे ॥६॥

छत्र सुखासन पालखी चंदा गज रथ तुरंग अपार रे ।
वस्त्र विभूषण नित नवा चंदा अंग विलेपन सार रे ॥७॥

षट रस भोजन नव नवां, चंदा सूखडी नो नही पार रे ।
राज ऋधि सहू परहरी चन्दा जई चढ्यो गिरि मझारि रे ॥८॥

भूषण भार करे घणू, चन्दा पग में नेउर झमकार रे ।
कटि तटि रसनानडे धनि चन्दा न सहे मोती नो हार रे ॥९॥

झलकति झालि हू अब हू चन्दा नाह बिना किम रहीये रे ।
खीटलीखंति करे मुझने चन्दा नागला नाग सम कहीये रे ॥१०॥

टिली मोरु नल वट दहे चन्दा नाक फूली नडे नाकि रे ।
फोकट फरर के गोफणो, चन्दा चाटलस्यु कीजे चाक रे ॥११॥

सेस फूल सीसें नविघरु, चन्दा लटकती लन म सोहीव रे ।
छम छम करता घूघरा चन्दा वींछीया विछि सम भावरे ॥१२॥

* चुनड़ी गीत *

ब्रह्म जयसागर

राग—

नेमि जिनवर नमीयाची, चारित्र चुनड़ी मागेंराजी।
गिरिनार विभुषण नेम, गोरी गज गति कहे जिनदेव॥
राजिमति राजीव नयणी, कहे नेम प्रति पीक वयणी।
घम घमति घुवरी चंगी, आपो चारित्र चुनड़ी नवरङ्गी॥राजी०॥१॥
वर भव्य जीव शुभ वास, समकीन द्दरडांनो पास।
पीलो पीलो परम रङ्ग सोह्यो, देखी अमरनि कर मन मोह्यो॥राजी०२॥
मुल गुण रङ्ग फटको कीच, जिनवाणी अमीरस दीव।
तप तेजे हे जे सुके, चटको रङ्ग नो नवि मुके॥राजी०॥३॥
एइ आव्य करि अज रुड़ो, टाले मिथ्या मत रङ्ग कुड़ो।
पंच परम मुनी ग्रह्यो छायो, मागत मीरी मली आसायो॥राजी०॥४॥
खाजखी खरी च्यार नियंग, पांच माहाव्रत कमल ने संग।
पंच सुमति फूल बणांग, निरुपम नीलवरण सुरङ्ग॥राजी०॥५॥
उत्तर गुण लक्ष चौरासी, टबकती टबको शुभ भासी।
क्रीया कर को संभे पासी, चढ को चढयो रङ्ग खासी॥राजी०॥६॥
नीला पीला रङ्ग पालव सोहे, गुप्ति भयना मन मोहे।
शिल सहस्त्र या यांच्य हो पासे, भजया भ""परव्रत सारे॥राजी०॥७॥
रंगे रागे बहु माहे रेख, नीलीकाली नवलड़ी शुभ वेख।
भवभृंग मंगननी देख, कानी करुण नी रेख॥राजी०॥८॥
मुख मंडण फूलड़ी फरति, मनोहर मुनि जन मन हरति।
शुभ ज्ञान रङ्ग बहु चरति, वर सीव तणां सुख करति॥राजी०॥९॥
कपटादिक रहीत सुवेली, सुखकरी करुणा तणी केली।
मोती चोक चुनी पर खेली च्यारदान चोकड़ी भली मेहेली॥राजी०॥१०॥
प्रतिमा द्वादश वर फूली, राजीमती मुख तेज अमूली।
देखी भ्रमरी चमरी बहु भूली, मेरु गिरि जदे तसु कूली॥राजी०॥११॥

द्वादस अंग घूघरी भूर, तेह सुणी नाचे देव मयूर।
पंच ज्ञान वरणं हीर करता, दीव्य ध्वनि फूमना फरना ॥राजी०॥१२॥

एंह चुनडी उढी मनोहारि, गई राजुल स्वर्ग दूआरि।
वसे अमर पुरि सुखकारी, सुख भोगवे राजुल नारी ॥राजी०॥१३॥

भावी भव वंघन छोड़े, पुत्रादिक यामें कोडे।
घन वन योवन नर कोडे, गजरथ अनुचर सँ [illegible] ॥[illegible]०॥१४॥

चित चुनड़ी ए जे घरसे, मनवांछित नेम सुख करसे।
संसार सागर ते तरसे, पुन्य रत्न नो भंडार भर से ॥राजी०॥१५॥

सुरि रत्नकीरति जसकारी, शुभ धर्म शशि गुण धारी।
नर नारि चुनड़ी गावे, ब्रह्म जय सागर कहे भावे ॥राजी०॥१६॥

—इति चुनड़ी गीत—

हंस तिलक रास

※ हंसा गीत ※

"राग देशीय"

णविवि जिणिंदह पय कमलु, पढइ जु एक मणेण रे हंसा।
पापविनाशने धर्म कर बारह भावना एह रे हंसा।
हंसा तु करि संवलउ जि मन पडइ संसार रे॥ हंसा॥१॥

धन जोवन पुर नगर घर, बंधव पुत्र कलत्र रे। हंसा।
जिम आकासि वीजलीय, दिट्ठ पणट्ठा सव्व रे॥ हंसा॥२॥

रिसह जिणेसुर भुवन-गुरु, जुगि धुरि टपना सोजि रे। हंसा।
भूमि विलासिणि तिणि तिजिय नीलंजसा विनासि रे॥हंसा॥३॥

नंदा नंदन चक्कवइ भरह भरह पति राउ रे। हंसा।
जिण साधीय षट खंड धरा सो नवि जाउ रे॥ हंसा॥४॥

सगर सरोवर गुण तणुउ सुर नर सेवइ जास रे। हंसा।
नंदण साठि कहस्स तस विहडिय एकइ सासि रे॥ हंसा॥५॥

करयल जिम जिम जलु गलइ तिम तिम खूठइ आउ रे। हंसा।
नंद्र धनुप सर देह इह काचा घट जिम जाइ रे॥ हंसा॥६॥

नर नारायण राम नृप पंडव कूरव राउ रे। हंसा।
रूंखह मूकां पान जिम छड्डिया जिह वाय रे॥ हंसा॥७॥

सुरनर किंनर असुर गण तिह सरण न कोइ रे। हंसा।
यम किंकर बलि लितयह कोइन आड्डु थाइ रे॥ हंसा॥८॥

मद मछर जोवन नडीय कुमर ललित घट राउ रे। हंसा।
भव दुह वीहियुत पलीयु ए तिनि कोइ सरण न जाउ रे॥ हंसा॥९॥

जल थल नह पर जोणीवहि भमि भमि छेहन पत्त रे। हंसा।
विषया सत्तउ जीवडउ पुदगल लीया अनंत रे॥ हंसा॥१०॥

ब्रह्म अजित कृत इस कृति का परिचय पृष्ठ १९५ पर देखिये। इसका दूसरा नाम हंसा गीत भी मिलता है।

बंधइ पड़िउ सयल जगु मे मे करइ अयाणु रे । हंसा ।
इंदिय संवर संवा विउए वूडतां लागि माफेन रे ।। हंसा ।।११।।

बीहजइ चउगइ गमणतउ जगि होहि कयच्छ रे । हंसा ।
जिम भरहेसर नंदणइ णामीय सिवपुरि पंथि रे ।। हंसा ।।१२।।

एक सरगि सुख भोगवइ एक नरग दुःख खाणि रे । हंसा ।
एकु महीपति छत्र धर एकु मुकति पुरडाणि रे ।। हंसा ।।१३।।

बंधव पुत्र कलत्र जीया माया पियर कुडंब रे । हंसा ।
रात्रि रूखह पंखि जिम जाइवि दह दिसि सव्व रे ।। हंसा ।।१४।।

अन्नु कलेवर अन्नु जिउ अनु प्रकृति विवहार रे । हंसा ।
अन्नु अन्नेक जाणीय इम जाणी करि सार रे ।। हंसा ।।१५।।

रस वस श्रोणित संजडिउ रोम चर्म नइ हड्ड रे । हंसा ।
तनि उत्तिम किम रमइ रोगह तणीय जपड्ड रे ।। हंसा ।।१६।।

आश्रव संवर निर्जरा ए चिंतनु करि द्रढ चित्त रे । हंसा ।
जिम देवइ द्वारावतीय चिंतिवि हुईय पवित रे ।। हंसा ।।१७।।

लोकु वि त्रिहु विधि भावीयइ अध ऊरध नइ मध्य रे । हंसा ।
जिम पावइ उत्तिम गति ए निर्मलु होहि पवित्त रे ।। हंसा ।।१८।।

परजापति इन्द्रिय कुलइ देस धरम्म कुल भाउ रे । हंसा ।
दुलहउ इक्कइ इक्कु परा मनुयत्तणु वइ राउ रे ।।हंसा ।।१९।।

कुगुरु कुदेवइ रणझणिउ खलस्यू कहइ सुवण्ण रे । हंसा ।
बोधि समाधि व्राहिरउ कूडे धम्मंइरनित्त रे ।। हंसा ।।२०।।

अंग्य रे अंग श्रुत पारगउ मुनिवर सेन अभव्य रे । हंसा ।
बोधि समाधि बाहि रुए पड़िउ नरक असभ्य रे ।। हंसा ।।२१।।

मसगर पूरण मुनि पवरु नित्य निगोद पहूतु रे । हंसा ।
भाव चरण विण वापडउ उत्तिम बोधन पत्त रे ।। हंसा ।।२२।।

तष मासइ घोखंत यहं सिव भूषण मुनि राउ रे । हंसा ।
केवल णाणु उपाइ करि मुकति नगरि थिउ राउ रे ।। हंसा ।।२३।।

तीर्थंकर चउवीस यह ध्याईनि ग्या मोक्ष रे । हंसा ।
सो ध्यायि जीव एकु सिउ जिम पामइ बहु सौख्य रे ।। हंसा ।।२४।।

सिद्ध निरंजन परम सिउ सुद्ध वुद्ध गुण पहू रे । हंसा ।
वरिसइ कोडी कोडि जस गुण हण लाभइ छेहु रे ।। हंसा ।।२५।।

एहा वोधि समाधि लीया अवरु सहू ककयत्यु रे । हंसा ।
मनसा वाचा करणीयह व्याईयएहु पसत्थु रे ।। हंसा ।।२६।।

इम जाणी मण क्रोधु करि क्रोधई धर्म्मह नासु रे । हंसा ।
दीपाइन मुनि हुयि गयु एनि द्वारावती नास रे ।। हंसा ।।२७।।

चित्त सरलूं जीव तूं करहिं कोमल करि परिणामु रे । हंसा ।
कोमल वासुगि विप टलइ कम्मह केहउ ठामु रे ।। हंसा ।।२८।।

माया म करिसि जीव तहु माया धम्मह हाणी रे । हंसा ।
माया तापस क्षयि गयू ए सिवभूती जगि जाणि रे ।। हंसा ।।२९।।

सत्य वचन जीव तूं करहिं सत्ति सुरन गमन रे । हंसा ।
सत्य विहुणउ राउ वसु गयु रे सातलिट्ठामि रे ।। हंसा ।।३०।।

न्निर्लोहि तणु गुण धरिहिं प्रक्षालहिं मन सोसु रे । हंसा ।
अति लाभइ पुण नरि गयु सरि अति गिद्ध नरेस रे ।। हंसा ।।३१।।

पालहिं संयम जीवन कू श्री जिन शासन सार रे । हंसा ।
पालिसखीथ्यु चक्कवइ जोइन सनत कुमार रे ।। हंसा ।।३२।।

वारह विधि तप वेलडीया धार तणइ जलि संचि रे । हंसा ।
सौख्य अनंता फलि फूलइ जातु मन जिय खंचि रे ।। हंसा ।।३३।।

त्याग धरमु जीव आपरहिं आकिंचन गुण पाल रे । हंसा ।
धर्म्म सरोवरु शील गुणु तिणि सरि करि आलि रे ।। हंसा ।।३४।।

श्रेठि सिरोमणि शीलगुण नाम सुदर्शन जाउ रे । हंसा ।
ब्रह्म चरिज दृढ पालि करि मुगति नगरि थु राउ रे ।। हंसा ।।३५।।

ए वारइ विहि भावणइ जो भावइ दृढ चित्त रे । हंसा ।
श्री मूल संघि गछि देसीउए वोलइ ब्रह्म अजित्त रे ।। हंसा ।।३६।।

❀ इति श्री हंसतिलक रास समाप्त: ❀

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथकारानुक्रमणिका

(ग्रन्थकार, सन्त, श्रावक, लिपिकार आदि)

ग्राम-नगर-प्रदेशानुक्रमणिका

शुद्धा-शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	सं०	पंक्ति
ग्रंथ निर्माणही किया गया	ग्रंथ का निर्माण किया	१४	१७
सुरक्षित	सुसंस्कृत	१४	१८
नागौर प्राप्ति	नागौर गादी	४९	१६
तलव	मालव	५०	३
जोहारपुरकर	जोहरापुरकर	५०	२४
और क्रोधित	और उसने क्रोधित	६४	२८
लोडे	डोले	८१	२२
तूरख	मूरख	८६	१५
ब्रह्मबूचराज	भ० शुभचन्द्र	१०३	१
,,	,,	१०५	१
अपनी	अपने	१०७	८
रत्नाकीर्त्ति	रत्नकीर्त्ति	१३१	१
धन्य	धान्य	१३९	२५
रति	गति	१४५	१७
३३९	३१	१४६	१४
वीं	की	१४६	१५
पुष्य	पुण्य	१४७	२
सगति	संगति	१४७	७
वाडोरली	बारडोली	१५९	१७
ग्रहस्थ	गृहस्थ	१८३	२५
महिमानिनो	महिमानिलो	१८६	१०
धर्मसामर	धर्मसागर	२०७	२०
११२	२१२	२१२	—
जयगसागर	जयसागर	२१२	३
११६	२१६	२१६	—